ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क—५८

नये चित्र

[१९४८ से १९५२ तककी प्रतिनिधि हिन्दी कहानियाँ]

सम्पादक
सत्येन्द्र शरत्
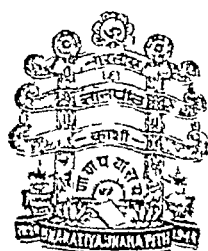
भारतीय ज्ञानपीठ • काशी

ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला-सम्पादक और नियामक
श्रीलक्ष्मीचन्द्र जैन एम० ए०

प्रकाशक
मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

प्रथम संस्करण
१९५७ ई०
मूल्य तीन रुपये

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
सन्मति मुद्रणालय
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

'नये चित्र' के कथाकारोंका

यह

सम्मिलित प्रयास

महान् कथाकार स्वर्गीय श्रीप्रेमचंद

की

पुण्य स्मृतिको

सादर समर्पित

है

आमुख

सन् १६४८ से १६५२ तककी बारह प्रतिनिधि कहानियोंका यह संग्रह प्रस्तुत करते हुए, इस संकलनकी योजनाके सम्बन्धमे मैं कुछ कहना चाहता हूँ।

आधुनिक हिंदी कहानीका प्रारम्भ 'सरस्वती' मासिक-पत्रके प्रकाशन (१६०० ई०) से माना गया है। हिंदीके सुप्रसिद्ध कथा-सग्रह 'इक्कीस कहानियाँ' के सम्पादक राय कृष्णदास द्वारा किये काल-विभाजनको स्वीकार करें तो आधुनिक हिन्दी कहानीके विकासका सुविधाके साथ अध्ययन करने के लिए, उसे निम्न चरणोंके अन्तर्गत विभाजित किया जा सकता है।

प्रथम चरण: १६०० से १६१० ई० तक। ये काल आधुनिक हिंदी कहानीका प्रयोग-काल था। इसमे प्रायः अग्रेजी और बगला भाषासे प्रभावित या अनुवादित कहानियाँ मिलती है। मौलिक कहानियोंमें 'सरस्वती' में प्रकाशित बंग महिलाकी 'दुलाईवाली' और श्री वृन्दावनलाल वर्माकी 'राखीबद् भाई' कहानियाँ उल्लेखनीय है।

द्वितीय चरण: १६११ से १६२० ई० तक। १६११ ई० से 'इंदु' मासिक-पत्रके प्रकाशनके साथ हिदी कहानीका दूसरा उत्थान प्रारम्भ होता है। इस कालमें हिदी कहानी आश्चर्यजनक रूपसे आगे बढ़ी। श्रीजयशंकर 'प्रसाद', जी० पी० श्रीवास्तव, गुलेरीजी, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह, चतुरसेन शास्त्री, प्रेमचंद, राय कृष्णदास, चंडीप्रसाद 'हृदयेश', गोविदवल्लभ पंत और सुदर्शन इस दशक के महत्त्वपूर्ण कहानीकार है।

तृतीय चरण : १९२१ से १९३० ई० तकका समय हिंदी कहानीका समृद्धि काल था। प्रेमचंद और 'प्रसाद' की अनेक सुन्दर कहानियाँ इसी दशकमे लिखी गई। इनके अतिरिक्त पाडेय वेचन शर्मा 'उग्र', सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला', भगवतीप्रसाद वाजपेई, विनोदशंकर व्यास, वाचस्पति पाठक, जैनेन्द्रकुमार, चद्रगुप्त विद्यालकार, इलाचद्र जोशी, आचार्य जहूरबख्श, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज', डॉ. धनीराम 'प्रेम' ने भी अपनी सुन्दर रचनाओसे हिंदी कथा-साहित्यकी कोष-वृद्धि की।

चतुर्थ चरण : १९३१ ई० से हिंदी कहानीको एक नया ही मोड मिला। कहानीकारोने कथा-वस्तुके अतिरिक्त शिल्पकी ओर भी ध्यान देना प्रारम्भ किया। मनोविज्ञानने भी कहानी में प्रवेश किया। हिंदीकी अनेक महत्त्वपूर्ण कहानियाँ इस कालके कथाकारोकी देन है। श्री भगवतीचरण वर्मा, महादेवी वर्मा, सियारामशरण गुप्त, राधाकृष्ण, 'अज्ञेय', उपेन्द्रनाथ अश्क आदि कहानीकार १९३५ ई० तक सुप्रसिद्ध हो चुके थे। 'इक्कीस कहानियाँ' संकलन इन्ही नामोके साथ समाप्त होता है। कदाचित् यही कारण है कि 'इक्कीस कहानियाँ' मे १९३६ से १९४० ई० के बीच लिखने वाले कहानीकारोंका समावेश न किया जा सका।

'इक्कीस कहानियाँ' सकलनके पूरकके रूप मे श्री राय कृष्णदासने १९४२ ई० मे अपने सम्पादनमे एक दूसरा महत्त्वपूर्ण कथा-संकलन 'नई कहानियाँ' तैयार किया[1]। 'नई कहानियाँ' सग्रहका अधिक प्रचार न हो सका, यह सत्य है, किंतु इससे उस संकलनका महत्त्व कम नही होता। इस संग्रह में १९३६ से १९३९ ई० तककी बारह प्रतिनिधि कहानियाँ समयानुक्रमसे दी गई है। कथाकार हैं—श्रीमती माधवी, सत्यवती

१. नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित।

मलिक, सुधाकर दीक्षित, यमुनादत्त वैष्णव, हरदयाल 'मौजी', रामकृष्णदत्त गर्ग, बलराज साहनी, कमलाकांत वर्मा, शांतिप्रसाद वर्मा, विष्णु प्रभाकर, वीरेश्वर सिंह और यशपाल। ये सब कहानियाँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंसे एकत्र की गईं थीं।

मैं समझता हूँ, इन नामोंको जोड़ देने पर हिंदी कहानीके चौथे दशकके कहानीकारोंकी सूची पूर्ण हो जाती है। यह सूची श्री भगवती-चरण वर्माके नामसे प्रारम्भ होती है और श्री यशपालके नामसे समाप्त होती है।

पाँचवाँ चरण : १९४१ ई० के बाद कहानियाँ लिखीं तो बहुत गईं; किंतु हिंदी कहानीपर काम लगभग नहींके बराबर ही हुआ। काम करता भी कौन? इस बीच कई कथा-संग्रह प्रकाशित हुए जो मुख्यतः कोर्स में लगानेके लिए तैयार किये गये थे और जिनमें घुमा-फिराकर एक ही नाम और एक ही कहानियाँ थीं। ये संग्रह कोर्समें लगे भी, किंतु किसी भी सम्पादकने कथाकार-सूचीको दोहराने, उसमें सुधार करने और उसे अपटुडेट बनानेकी लेश-मात्र भी कोशिश नहीं की। ठीक भी था। कोर्स में लग जानेके बाद तो पुस्तकको मोक्ष प्राप्त हो जाता है, फिर उसमें सुधार की कोई आवश्यकता कदाचित् रहती भी नहीं। अन्य प्रकाशक बड़े नाम देखकर उपन्यास और कहानी-संग्रह छापते रहे। परिणाम यह हुआ कि जो लेखक प्रबंध कर सके वे ही अपने कहानी-संग्रह छपा पाये। बाक़ी रह गये। हाँ, पत्र-पत्रिकाओंमें धडल्लेसे कहानियाँ छपती रहीं। यह स्थिति अभी तक लगभग ऐसी ही चल रही है।

पाँचवें दशक (१९४१ से '५०) में इतने अधिक कहानीकार कथा-क्षेत्र में आये हैं और इतनी अधिक संख्यामें अच्छी व सुन्दर कहानियाँ लिखी गई हैं कि दस वर्षके लम्बे कालमें केवल बीस कहानी-कारोंकी सूची बनानेसे कदाचित् सब कहानीकारों और उनकी रचनाओंके

प्रति समुचित न्याय नही हो सकेगा। मेरे विचारसे यदि दसकी अपेक्षा पाँच वर्षकी अवधि मे हिंदी कहानीकी प्रगतिका अध्ययन किया जाय तो कदाचित् अधिक सुविधा होगी।

पुरानी पत्र-पत्रिकाओकी फाइले देखनेपर पता चलता है कि १९४० ई० से १९४४ ई० के बीच हिंदी कहानीको कहानीकारोकी एक बिल्कुल नई ही सूची मिली। इन कहानीकारोने हिंदीको ढेर सारी 'प्यारी' कहानियाँ भेट की। यह हमारा दुर्भाग्य है कि प्रचारसे दूर रहनेके कारण ये कथाकार और इनकी कहानियाँ हिन्दी साहित्यमे शीर्ष स्थान न पा सकी, जिनकी वह अधिकारिणी थी और श्री चद्रगुप्त विद्यालकार जैसे प्रतिष्ठित कथाकार एव कथा-आलोचकको अपने सद्य-प्रकाशित कहानी-सग्रह 'तीन दिन'की भूमिकामे लिखना पडा कि "पिछला दशक (१९४१ से १९५०) तो नये कहानी-लेखकोकी दृष्टिसे जैसे एकदम वीराना-सा रहा।" हो सकता है चंद्रगुप्त जीके सामने स्पष्ट चित्र न रहा हो किन्तु जिन असंख्य पाठकोंने ये कहानियाँ पढी है वे आज तक इन कहानियोकी मधुर स्मृति नहीं भुला पाये हैं। इस कालके कथाकार श्री द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण', अमृतलाल नागर, नलिनविलोचन शर्मा, डॉ. आर्येन्द्र शर्मा (आर. ए. एस. नामसे 'माया'मे प्रकाशित कहानियोके लेखक), कमल जोशी, नरेन्द्र शर्मा, पहाडी, वीरेश्वर, चद्रकिरण सौनरेक्सा, निर्मला मित्र, 'नज्म',रामचद्र तिवारी, होमवती देवी, कमला चौधरी, सुशीला आगा, कुँवरानी तारा देवी, शोभाचंद्र जोशी, यशपाल जैन, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', रामप्रताप बहादुर, कृष्णानंद गुप्त, कौशल्या अश्क, धर्मप्रकाश आनंद, 'शिक्षार्थी' और बृजेन्द्रनाथ गौड की अनेक कहानियोको मै प्रमाण स्वरूप उपस्थित कर सकता हूँ। इन कहानियोमे किसी 'वाद'का प्रचार नही था। ये सीधी-सादी कहानियाँ थीं—मानव मनकी, मनुष्यके दुःख-सुखकी, उसके सपनो, उसकी आकाक्षाओ, सफलताओ-असफलताओकी।

आमुख

१६४४ से १६४८ ई०के बीच हमे बिल्कुल नये कथाकारोके नाम देखनेको मिलते है जिन्होने अपनी कहानियों द्वारा कहना चाहा कि कहानियाँ लिखनेका कुछ न कुछ प्रयोजन अवश्य होना चाहिए—वह प्रयोजन चाहे प्रचार ही क्यो न हो। इन लेखकोने अपनी कहानियों और रिर्पोताजो द्वारा प्रचार किया भी—युद्धके विरुद्ध, फासिस्ट शक्तियोके विरुद्ध, साम्राज्यवाद के विरुद्ध। ये कहानियाँ नारोकी तरह उभरीं और नारोकी ही तरह शात हो गई। तिसपर भी इन कहानीकारोकी जो कहानियाँ प्रचार और नारोसे मुक्त है वे पढनेमे सचमुच आनद देती है। इस कालके प्रमुख कथाकार है—भैरवप्रसाद गुप्त, अमृत राय, रागेय राघव, हसराज 'रहबर', गगा-प्रसाद मिश्र, तेजबहादुर चौधरी, प्रभाकर माचवे, देवेन्द्र सत्यार्थी, मन्मथ-नाथ गुप्त, अविनाश चद्र, शमशेरबहादुर सिह, गिरीश अस्थाना, 'युगल', 'बरुआ' और कृष्णचद्र शर्मा 'भिक्खू'।

१६४८ से १६५२ ई० के बीच इन पुराने नामोके साथ-साथ हमे फिर कुछ नये नाम दीखते है। ये नाम है धर्मवीर भारती, कृष्णा सोबती, राम कुमार, राय आनदकृष्ण, ओकार शरद, जीवन नायक, 'शची', कृष्णकिशोर श्रीवास्तव, मिसला मिश्र, विपुला देवी, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, चद्रकात, राजेन्द्र यादव, परदेशी, मोहन राकेश, जयसिंह, राधाकृष्ण प्रसाद, केशवगोपाल निगम, जनार्दन मुक्तिदूत, सत्येन्द्र शरत्, नित्यानद वात्स्यायन, चद्रा आलक, लीला अवस्थी, कृष्णनदन सिनहा और श्रीनरेशके। इन कथाकारोमे से कुछकी चुनी हुई कहानियाँ प्रस्तुत सग्रहमे सकलित है। ये कहानियाँ कैसी है, यह निर्णय पाठक स्वय ही करेगे। सम्भव है कई कहानियोको वे पहले किसी पत्र या पत्रिकामें पढ भी चुके हो।

१६५२ ई० से हिन्दी कहानीने जो उठान ली है वह सन्तोपजनक तो है ही, साथ ही भविष्यके लिए बडी आशाएँ भी बँधवाती है। नई पत्र-पत्रिकाओंके प्रकाशनके कारण इधर कहानियाँ धडल्लेसे छप रही है।

यह प्रसन्नताका विषय है कि कहानीकार डटकर लिख भी रहे है और अच्छा लिख रहे है। १९५२ या उसके निकटसे लिखना प्रारम्भ करनेवालोंमे प्रमुख है—शिवप्रसाद सिंह, मनोहरश्याम जोशी, अमरकान्त, भीष्म साहनी, निर्मल वर्मा, ओमप्रकाश श्रीवास्तव, ओंकारनाथ श्रीवास्तव, कमलेश्वर, मार्कण्डेय, फणीश्वरनाथ 'रेणु', विद्यासागर नौटियाल, शेखर जोशी, जितेन्द्र, 'दिवाकर', डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, केशवप्रसाद मिश्र, कुलभूषण, रघुवीर सहाय, हरिशङ्कर परसाई, अनन्तकुमार 'पाषाण', नन्दकुमार पाठक, प्रमोद वर्मा, वीरेन्द्रकृष्ण माथुर, कृष्णबलदेव वैद, रामदरस मिश्र, सतीश सरकार, देवेन्द्र इस्सर, 'सत्य', 'कल्पना', कुमारी उषा, मन्नू भण्डारी, इंदिरा 'नूपुर', अजितकुमार और आनन्दप्रकाश जैन। इन कथाकारोके साथ ही पुराने खेवेके कथाकार भी (जिन्होंने लिखना बन्द नही किया है) अपनी सुन्दर रचनाओसे हिन्दी कथा-साहित्यको समृद्ध बना रहे हैं। सद्यःप्रकाशित कथा-संकलन 'कहानियाँ १९५५' या 'कहानी' मासिकके जनवरी, ५५ के विशेषाङ्कको देख सहज ही कहा जा सकता है कि हिन्दी कहानीमे कोई गत्यवरोध नही आया है। उसका भविष्य निःसन्देह उज्ज्वल है।

× × ×

१९४८ से १९५२ ई० तककी बारह चुनी हुई कहानियोका यह संकलन आपके हाथोंमे है। यही काल इसलिए चुना गया है कि यह कहानी-पाठकके निकटतम भी है, और तटस्थतासे देख सकनेके लिए जो दूरी आवश्यक है वह भी इसके और संकलन-कर्त्ताके बीचमे है। संकलनमे बारहसे अधिक कहानियाँ भी हो सकती थी, परन्तु बहुत आग्रहपर भी अनेक कहानीकार बन्धुओसे उनकी अनुमति और परिचय न प्राप्त हो सके; और मुझे विवश हो उनकी कहानियोका मोह छोडना पडा। उन पाठकोसे क्षमा चाहूँगा जो अपने प्रिय कथाकारका नाम इसमे न देख निराश होगे। पाठक-गण और कहानीकार बन्धु जो भी सुझाव देगे, पुस्तकके अगले सस्करणमे यथाशक्ति

उन सुझाओका आदरकर सकलनको सुधारनेकी चेष्टा करूँगा—मै यह विश्वास भी दिलाना चाहता हूँ।

सग्रहमे एक कमी रह गई है जो स्वयं मुझे खटक रही है। वह है—हास्य-रसकी कहानीकी अनुपस्थिति। किन्तु बहुत खोजनेपर भी मुझे इस कालमे प्रकाशित हास्य रसकी कोई अच्छी कहानी नहीं मिल सकी। यदि पाठक कोई कहानी सुझा सके तो उनका आभार मानूँगा।

× × ×

अन्त मे एक बात और कहना चाहूँगा।

वह यह कि यह सकलन बहुत देरसे—लगभग चार वर्ष बाद—प्रकाशित हो रहा है। इस वर्ष तो १९५२ से १९५६ ई० की प्रतिनिधि कहानियोका सकलन प्रकाशित हो जाना चाहिए, परन्तु बहुत-सी बाते ऐसी होती हैं जिनमे हमारा आपका कोई वश नहीं होता। समझ लीजिए, इस सकलनका प्रकाशन भी ऐसी ही एक बात थी। सकलन छप रहा है—मुझे सबसे बडी प्रसन्नता इसी बात की है। यदि यह संकलन और इसके उद्देश्य मे निहित शुभको पसन्द किया गया तो शीघ्र ही मै १९५२–५६ और १९४१–४४, १९४४–४८ की प्रतिनिधि कहानियोके संकलन भी आपकी सेवामे उपस्थित करूँगा।

× × ×

कहानीकारोका परिचय लिखनेमे मुझे भाई मनोहरश्याम जोशीसे बडी सहायता मिली है। उन्हे धन्यवाद दूँगा तो वे बुरा मानेगे।

आकाशवाणी, देहली
अक्टूबर ५७

सत्येन्द्र शरत्

विषय-क्रम

नये चित्र

•

कृष्णा सोबती

कृष्णा सोबतीका जन्म पजाबके एक सम्पन्न परिवारमे हुआ। बचपन चनाबके किनारे सुन्दरसे गाँवमे बीता और शिक्षा दिल्ली, शिमला और लाहौरमे हुई।

कृष्णा सोबतीके व्यक्तित्व और साहित्यके दो प्रधान गुण है—जिज्ञासा और सवेदना। जिज्ञासाने उन्हे अपने पात्रोके मनमे गहरे पैठनेकी प्रेरणा दी है, और सवेदनाने उन पात्रोके अन्तरतमकी भावनाओका वास्तविक, मानवीय और मर्म-स्पर्शी निरूपण करनेकी क्षमता दी है। आपकी कहानियाँ पाठकको फूलके समान मृदुल और छन्दमय जगत्मे ले जाती है, जो एकदम छुईमुई होते हुए भी किसी अज्ञात और अद्भुत विधानसे सन्तुलित है। कथानक चाहे आधुनिक शहरके उच्च मध्यवर्गीय जीवनसे उठाया गया हो, चाहे पजाबके सुदूर गाँवके, उसके चित्रीकरणमे वही सादगी, वही करुणा और वही गीतिमयता प्रकट होती है। सोबतीजी की प्रत्येक रचनामे एक मन्थर सङ्गीतकी अनुगूँज विद्यमान है, जिसका आविर्भाव मानवीय भावनाओके अन्तर्द्वन्दसे होता है।

आप बहुत कम लिखती है, लेकिन जो कुछ भी लिखा है प्रथम श्रेणीका है। 'सिक्का बदल गया', 'दो बूँद आँसू', 'बदली बरस गई', 'नया दिन', 'दादी अम्माँ', 'बादलोके घेरे', 'डारसे बिछुड़ी' आदि कहानियाँ हमारे कथा-साहित्यकी निधि है।

• एक दिन

—कृष्णा सोबती

इस घरपरसे होकर सर्दियाँ गुजर गईं, गर्मियाँ आईं, फिर सर्दियाँ,—बहार और फिर गर्मियाँ। सावन शुरू हो गया था। काले-कजरारे मेघोंकी आपसमे होड होती, बल खाती बिजली चमकती और छम, छम, छम.. बरखासे धरती भीग जाती। जाने कहाँसे बादल घिरते, कहाँपर छाते, और कहाँपर बरस जाते।

दो दिनसे धूप नहीं निकली। दिन भर आकाश घिरा रहता, और रातको चाँद-तारोंके बिना दुनिया अन्धी हो गई लगती। आज शामको धर्मपाल कामसे लौटे तो चिन्तित दीख रहे थे। कुर्सीपर बैठते हुए श्यामासे गम्भीर स्वरमे बोले—"श्यामा, जगदीशका तार आया है। बीमार अधिक है. . "

श्यामाका जी धकसे रह गया। "है भी तो अकेला, तुम्हे भेजनेको लिखा है।" यह सुनकर श्यामा एक हाथसे साडीका छोर पकड़े रही और दूसरेमे तार। एक बार पढ़ा, दो बार पढ़ा और फिर कुछ सोचा कि कौन उसके पास बैठा है? भाई नही, बहिन नही, माँ नही—और माँपर विचार रुकते ही आँखे भर आईं। इतनी देर हो गई उसे ससुराल आये पर भाईके सिवाय और कौन है जिसको उसकी खोज-खबर भी हो। अपने घरमे वह दुःखी नही पर अपना सुख सुनाये किसे? आँसू टपटप निकल पडे।

"इधर आओ श्यामा, घबराओ मत। कोई ज्यादा फ़िक्रकी बात नही होगी, अकेला है.. . " श्यामा पतिके पास जाकर और भी जोरसे रो दी। जैसे कहना चाहती हो, भाईका प्यार तुम नही समझते, मायकेमे और कोई नही.. ...

रात तो किसी भी तरह कटनेमें नहीं आती। धर्मपाल बोले, "श्यामा, कल नन्दूको साथ लेकर जगदीशको देख आओ। सफर लम्बा है, साथ किसीका होना जरूरी ही है।"

श्यामाको सहारा मिला। लेकिन नारीकी समस्या क्या इतनी सहल है? एकदम सोचा—पतिको अकेला छोड़ जायगी? अकेला. नहीं। शीला. वह इस घरसे बाहर तो नहीं। पर पतिको तो उसने उस ओर मुँह करते भी नहीं देखा। पर. 'पर'पर वह अटक जाती है। क्या वह पतिको पहचानती नहीं? ब्याह हुए कितनी देर हो गई है लेकिन कभी उसने अपनेको अलग नहीं पाया। कभी-कभी तो जैसे वह खीझ भी उठती है.. लेकिन उस खीझमें खिंचाव कहाँ होता है। यहीं तो वह विवश है, बेबस है। असहाय-सा समझ अपनेको श्यामाने पतिकी बाहोंमें डाल दिया और एक बार फिर भाईकी बीमारीकी याद करके रो पडी।

दूसरे दिन सुबहसे दुपहर तक वह व्यस्त रही। कपड़े सहेजे, पतिके कपडोंको अलग छाँटा, उसके जानेके बाद उन्हे दिक्कत न हो, नौकर-चाकरोंको हिदायतें दीं। रक्खोको बहूके भाईकी फिकर न हो, ऐसी बात नहीं। पर कुछ दिन तो आराम वह भी चाहती है। कृत्रिम स्नेह जताकर बोली—"बहूजी, कुछ देर लेट जाओ। लम्बा सफर तय करना है।"

श्यामा लेट गई। सोचा, गृहस्थीके लम्बे-चौडे धन्धे है। अभी तो कोई बाल-बच्चा नहीं, फिर भी सुबहसे काममें लगी हूँ। जरा आँख लगी ही थी कि चौंककर उठ बैठी। रक्खो अपनी कर्कश आवाजमें कह रही थी : "आइये जी, आइये जी "

श्यामाको महरीके आनेका संशय-सा हुआ। पर यह क्या? सामने तो शीला खडी थी। उसे देखकर खिल तो नहीं पाई। हैरान-सी रह गई, पर शिष्टाचार! खडी होकर बोली—"आइए न, आइए।" और फिर पास पडे सोफेकी ओर इशारा करते हुए कह उठी—"बैठिए।"

शीला बैठी तो जरूर लेकिन उस शिष्टाचारमे रुखाईकी मात्रा जाननेमें देर नही लगी। हाथके सकेतसे महरी और रक्खोको बाहर बैठे रहनेको कहा। नौकर-चाकरोको ऐसे मौकोमे मजा आता है पर इनसे ज्यादा ढील अच्छी नही।

रक्खो और महरी बाहर चली गईं लेकिन मर्जीसे नहीं। महरी तो जरूर अपना हक अधिक समझती है, पर शीला कम सयानी नहीं। क्या वह श्यामाके सामने महरीको अपना सगा जतायगी? श्यामाके चेहरेपर जरा सकोच और छिपी पडी खिन्नताका-सा भाव देखकर शीला बोली, "बहिन, नन्दूने बताया है कि वीरकी तबीयत अच्छी नही? क्या पहले कोई खत आया था!"

श्यामाने शीलाकी ऑखोको पढ सकनेका प्रयत्न करते हुए कहा, "नही, कल ही तार आया है। पता नही कैसा है? कोई पास भी है या नही!. .."

"बहिन, घबराना मत", कहते-कहते शीलाके बोल भारी-से हो गये, "रास्तेमे जरा एहतियात ही बरतना। नन्दू साथ ठीक रहेगा।" फिर बाहोमे पडी ढेर-सी चूडियोकी ओर दृष्टि डालकर कहा—"सॅभाल ही रखना जेवरोकी चाहे ढकी ही अच्छी है। आजकल लोगोंका कुछ पता नही।"

श्यामाको यह सलाह कैसी लगी शीलाने नही जाना। उसे जानकर करना भी क्या है? श्यामाकी नजर न जाने क्यो घडीकी ओर गई—धर्मपालके आनेका समय हो गया। क्या शीला नही जानती? मगर श्यामा कहे किस बहाने? 'यह तो उसे अपने-आप ही समझना चाहिए। पर यह क्या? उसे क्या पतिसे परदा करना है? फिर भी पता नही क्यो, वह नही चाहती कि शीलाके बैठे वे यहॉ आये। बाहरसे जूतोकी आहट आई। श्यामा चौकन्नी हुई। शीलाने सिरका दुपट्टा ठीक किया। और परदा उठाकर धर्मपाल अन्दर आ गये। आये और देखकर ठिठक गये।

श्यामाके तेवर उभर आये और शीलाकी ऊपर उठी हुई नजर जैसे धक्का खाकर नीचे उतर गई हो। धर्मपालके रुके हुए पैर जब वापिस लौटने लगे तो श्यामा सँभली। कुछ खीझसे, कुछ चिढ़कर बोली—"आओ न, बैठो न जी।"

धर्मपालने पत्नीकी ओर बिना देखे कुर्सी खींची और बैठ गये। पर सामनेकी ओर नजर नही उठ सकी। आज शीला यहाँ कैसे? अपनेपर जैसे गुस्सा-सा आया। वह बाहर महरी और रक्खोको देखकर दूसरे कमरेमे जा सकते थे। पर.

"गाडीका सब ठीक-ठाक हो गया है न?" श्यामाने कुछ छिलती हुई आवाज़मे पूछा।

"हाँ हाँ, सीट बुक हो गई है।" कहकर धर्मपालको मानो स्वयं अपनी आवाज अच्छी नही लगी। लगा, जैसे उन्हे कुछ असुविधा-सी हो रही है।

बाहर रक्खो और महरी एक दूसरेकी आँखोमे देख रही हैं, जैसे कुछ होनेवाला है। जमाईको देखकर महरीने विजयकी दृष्टिसे रक्खोकी ओर देखा था। जाने क्यो?

शीलाकी आँखे नीचे देख रही है और हाथ अशक्तसे होकर जैसे गोदीमे गिर पडे है। उठ जाय, पर पाँव जैसे चल नही पायेगे। लेकिन क्या उसका यहाँ बैठना ठीक है?.. .. वही कमरा है. वही परदे है.. वही फर्श है और खुली आलमारीमे पड़े तरतीबवार वही पतिके कपड़े. . पर वह और उसके पति? वह नही। शीलाका दिल ऐसा हुआ जैसे किसीने छलकते पानीको निर्दयतासे ढाँप दिया हो। किसी तरह शुष्क होते जा रहे गलेसे आवाज निकालकर बोली, "चाची महरी!'

यह स्वर बाहर तो नही पहुँच सकता। श्यामाको दिलमे शायद हँसी आ गई थी। शीलापर अहसान-सा करते हुए पुकारा, "रक्खो, महरीको अन्दर भेजो।" और श्यामाके बुलाते ही शीला अपनेको झकझोरकर उठ

पडी। दुपट्टा एक तरफसे बहुत नीचा हो गया था, जैसे अपनी सुध न रही हो। पर नही, चाल वैसी ही जमी हुई थी।

महरी अन्दर आई। देखा, बच्ची उठकर दरवाजे तक आ गई थी और साथ-साथ श्यामा भी। "अच्छा जी"—श्यामाने जरा-सा मुसकराकर हाथ जोडे, जैसे किसी पराजिताको देख रही हो।

शीलाने उत्तर दिया और सहज कण्ठसे बोली—"अच्छा, अपना ख्याल रखना और बीरकी सेहतका पता देना।" और बाहर निकल गई।

पीछेसे महरीने दुपट्टेका फर्शपर पड़ता छोर पकड़ लिया और पहली सीढ़ी उतरते ही उसने बच्चीको कन्धोंसे पकडकर सहारा दिया। अब तक सब कुछ समझ गई थी। जमाई कुछ बात करते तो क्या दृष्टि इतनी जल्दी फिरा लेते।

और धर्मपाल शीलाकी ओर नही देख सके, नहीं देख सके। आँखें जैसे एक बार भूली हुई तस्वीरको देखना चाहती थीं, पर जब शीला उठकर श्यामाके साथ-साथ चल दी थी तो उन्होने सिर ऊँचा किया और एकदम ऐसा लगा जैसे शीला पहलेसे लम्बी हो गई थी—लम्बी ?. नहीं, उसका भरा-भरा बदन दुबला हो गया था। तिल्लेदार जूतीको रेशमी सलवार नीचे तक छू रही थी—और फर्शपर पडते हुए शीलाके पैरोंको देखकर उन्होंने सोचा कि उनमे एक जिमीदारा अन्दाज था जो अवज्ञा सहकर भी शानसे आगे बढता जा रहा था।

नीचे—नीचे, दिलके बहुत नीचे किसी परदेसे उठकर वह दिन धर्मपालकी आँखोमें उतर आया जब इसी तरह शीलाको तैयार खडे देख उन्होने अचानक उसे खींचकर अधीरतासे बाहोमे भर लिया था। उसकी आँखे बन्द थी और उनकी खुली, जैसे नारीकी मूर्च्छित-सी पडी सुन्दरता कह रही हो—लो देख लो।

श्यामा वापिस आकर पतिके निकट खडी हो गई। एक बार परीक्षाकी नज़रोसे पतिकी ओर देखा—तब तक धर्मपाल सिगरेट जला चुके थे।

सिगरेटके फैलते-से धुएँने मानो उनके चेहरेकी असली रेखाओंको ढक लिया। श्यामाने कटाक्ष किया—"आज तो जमानोंके बाद घरकी बड़ी बहू को देखा है जी! क्या उससे डर गये थे? एक बात ही कर लेते बेचारीके साथ!"

धर्मपालने धुआँ छोड़ते हुए सोचा—उससे क्या डरता? डरानेको क्या तुम कम थी? प्रत्यक्ष जरा हँसकर बोले—"मुझे क्या बात करनी थी? बात तो वह तुमसे करने आई थी?"

"जगदीशका हाल पूछ रही थी और कहती थी वहाँ जाकर उसका पता देना।"

शीलासे यह सुनकर पता नहीं धर्मपालको जीमें कैसा लगा, पर उन्होंने कुछ कहा नहीं। बातको बदलकर बोले—"सामान सब बाँध लिया है न?"

"हाँ, सब तैयार है।"

श्यामा पतिके विषय-परिवर्तनका अर्थ नहीं समझी। धर्मपालने कलाई पर बँधी घड़ीकी ओर देखा और व्यस्त होकर कहा—"और जो कुछ करना है कर डालो। समय अधिक नहीं।"

श्यामाने कुछ अनोखेसे ढगसे जवाब दिया—"सब ठीक कर लिया है। तुम्हारे सब कपड़े इस ओर वाली अलमारीमें रख दिये हैं। किसी गर्म कपड़ेकी जरूरत होगी तो उस बड़े बक्समेंसे निकलवा लेना।"

श्यामा एक क्षण चुप रही और कुछ अन्दर-ही-अन्दर छिपा लेनेके प्रयत्नमें चूड़ियोंको बार-बार हिलाते हुए रो पड़ी। टप-टप-टप! धर्मपालने देखा कि ऐसे आँसू एक बार पहले भी किसीके आँखोंसे बहे थे। क्यों आज उसे किन्हीं और आँखोंकी याद आ रही है? उठकर कन्धोंसे पकड़ कर कहा—"श्यामा, पागल हो गई हो क्या? जल्दी लौट आओगी।" फिर लाड़से थपथपाकर कहा—"इतना छोटा दिल है?"

श्यामा पतिकी गोदीमें मुँह छिपाकर रो दी। धर्मपाल उन रेशमी-रेशमीसे बालोंको चूमना चाहते हुए भी मूँधकर रह गये। उन्हें लगा कि

उनकी सुगन्धि बहुत तेज थी, और उस तेजीका आभास उन्हें आज कितनी देरके बाद हुआ।

× × ×

कल बादल फटे थे आज फिर घिर आये। बादलोंके परदोंके-परदे आसमान पर चढ़े आ रहे थे। दुपहरकी कड़कड़ाती सफेदी न जाने कहाँ खो गई थी। कभी हल्की-फुल्की हवाएँ झूमते-झामते पेड़ोंको चूमकर परदोंको हिला जाती। शीला सोफेपर अधलेटी थी। महरीने परदे उठा दिये थे। और फर्शपर बैठी-बैठी उलझी हुई ऊनको सुलझा रही थी। उस दिन ऊपरसे आकर बच्ची निढाल-सी होकर बिस्तरपर लेट गई थी, और घण्टों रोती रही थी। चाचीने चुप करानेका कोई प्रयत्न नहीं किया। सिर्फ पास बैठी बच्चीके सिरपर हाथ फेरती रही। और उस दिनसे बच्ची अनमनी-सी लग रही है। आज सुबह चाची बोली—"बच्ची, यह ऊन पड़ी हुई है। कुछ शुरू कर लो न। सरदियाँ आ रही हैं। जरा जी भी लगा रहता है।"

"हूँ", कर बच्ची चुप रह गई। गद्दियोंके सहारे बैठी थी। सिरपर कपड़ा नहीं था। गहरे नीले रंगके कपड़ोंमें चेहरेका रंग और भी धुला हुआ लगता था। बैठी-बैठी सोच रही थी—श्यामा कैसे व्यंगसे मुसकराई थी। जैसे कह रही हो—तुम्हारा बड़प्पन आज कितना छोटा हो गया है। और वह अन्दर आकर ऐसे ठिठक गये थे, जैसे कोई गलत जगह आ गया हो। आदमी कितने बेदर्द होते हैं! बात नहीं, तो क्या आँख उठाकर देख नहीं सकते थे? लेकिन क्यों वह चाहती है कि पति उसे एक बार देखते तो—एक बार—वह दयाकी भूखी है कि तरस खाकर पति उसपर इतनी-सी मेहरबानी करे!. ..

अपनी बेबसी, पतिकी निर्दयता और सौतकी वह उपहासजनक हँसी आँखोंमें उतर आई और अपने हाथोंको आँखोंपर रखकर शीला सिसकने लगी। महरीका हाथ रुक गया। वह जानती है कि जो दिल पतिको देखे

बिना दो सालसे चुपचाप जब्त पडा था, उसे निर्मोही पतिकी एक छाया धकेलकर नीचे बहाये लिये जा रही है। बच्चीके हाथोंको आँखोंसे अलग करके बोली—"माँ बलिहारी जाय, रोयें तुम्हारे दुश्मन।" फिर झट क्रोध-भरे लहजेमें बोली—"हाय, हाय, अक्ल मेरी ही मारी जाती है, कपडे भी निकाले तो यह? अच्छी, भली जानती हूँ जब-जब यह पहनती हो, दिन अच्छा नही गुजरता फिर भी सुबह यह ले आई। बुढिया होनेको आई, पर समझ नहीं।" कहते-कहते उठ खडी हुई।

शीलाने सब समझा। जबसे होश सम्भाला है वह महरीके हाथों पली है। लाड-चाव, जिद—सब करती रही है। आज महरीको अपनेको फट-कारते सुनकर जाने कैसा लगा। कैसे वह उसे दिलासा देती रही है। किसी-न-किसी बहाने जी लगाती रही है। एक पलको अलग नहीं छोडती। महरीकी कृतज्ञतासे जी भर आया। वह साथ न होती तो अब तक वह इस चार-दीवारीमें जीवित रहती?

महरी वापिस लौटी और शीलाको हाथसे उठाते हुए बोली—"उठो, बच्ची, मैं सदके जाऊँ। कपडे बदल डालो। बच्ची, मुझपर गुस्सा न किया करो। सिर सफेद हो गया है, अब क्या अक्ल ठिकाने रहेगी?" फिर महरी बच्चीको कपडे बदलवाने ले गई। क्या बच्ची नही समझती? आज चाची चाहती है कि शीला उसपर गुस्सा करे, जितना करे वह बुरा न मनायगी पर जिस अधिकारहीन आँचलमें वह अपने आँसू बहाये जा रही है, वहाँ उन्हे झेल लेनेवाला कौन है?

बिना विरोध किये शीलाने कपडे बदल डाले। यह सूट कभी उसे कितना पसन्द था! पर आज उसकी पसन्दमें जान ही कहाँ है? महरीने हाथमें लिये दुपट्टेको चूमकर बच्चीके हाथोंपर डाल दिया। वह कितनी व्यस्त हो, कितनी अस्वस्थ हो, इन छोटी-छोटी बातोंको नहीं भूलती। बच्चीने आगे दुपट्टा डाला और फिर कुछ सोचकर बोली—"चाची, सोऊँगी. "

चाचीने पलंगपर तकिये लगा दिये और बोली—"ठीक है बच्ची। कुछ देर आराम कर लो। कैसा बरसाती दिन है। . " कुछ कहते-कहते रुक गई।

बच्ची लेट गई थी। चाची कहने लगी थी बरसातमे वेरियो पर डाले हुए झूलोकी बात, पर झट ख्याल आ गया कि सुनकर बच्ची कही और-और ख्याल दौडाती रहेगी। चुप ही रहे तो अच्छा।

बच्ची लेटी हुई थी और चाची पास बैठी धीरे-धीरे बच्चीके हाथ सहला रही थी। बच्चीको ऐसे पडे देखकर चाचीने ममताभरे लाडले स्वरमें पूछा—"बच्ची, क्यो क्या बात है? बोलो मेरी बच्ची!"

शीला क्या बोले? पर इस स्वरकी अवज्ञा वह नही कर पायगी। चाचीका हाथ पकडकर बोली—"चाची, जी अच्छा नहीं।"

"यह क्या मै नहीं जानती, मेरी बच्ची?" चाचीका मातृत्व जैसे अन्दर-ही-अन्दर चीत्कार कर उठा। जी अच्छा रह ही कैसे सकता है? यह उमर और यह दुःख! जी हुआ कि वह भी बच्चीके साथ मिलकर रो दे, पर कितनी पागल है वह? बचीको थपथपाते हुए बोली—"सो जाओ, बच्ची, तबियत हल्की हो जायगी।"

ऊपर घरकी विस्मृता बहूके पति कुर्सीपर पडे-पडे न जाने क्या-क्या सोच रहे थे। आज धर्मपाल कामसे जल्दी आ गये थे। जानते थे कि श्यामा नही है। पर अधिक देर दफ्तर नही बैठ सके। श्यामाको गये अभी तीन-चार दिन ही तो हुए है। कल तार आया था—जगदीशको निमोनिया हो गया है। अकेले छोडनेवाली हालत नही। कमरे कैसे खने लगने है? और आज दोपहरको धर्मपाल ठीकसे खाना नही खा सके। पत्नीसे उदास होकर न खाया हो, ऐसी बात तो नही। फिर भी नारीकी

सन्दिग्ध छाया जैसे आगे पड़े खाने पर बुद्धिमत्तासे छाई रहती है। अभी-अभी जब सोनेके लिए नौकर उन्हे कपड़े दे रहा था तो वह सोच रहे थे, ये जरा-जरासे काम औरतोंके हाथोंसे कितने अच्छे लगते है।

बाहर पानी तेज हो गया था। बादलोंकी गर्जना और बिजलीकी कड़कड़ाहट जैसे कानोंको चौंकाये जा रही थी। धर्मपालने हाथका सिगरेट नीचे फेंका और उठकर पलग पर जा लेटे। सोचा, आदमीकी दिन-चर्यामे भी औरतका कितना बड़ा हिस्सा है, और श्यामा.... उसने तो जैसे उन्हे अपनी बाहोंसे बॉध डाला है। जाती बार कैसी रो रही थी! झट ध्यान आया, उस दिन शीलासे कैसे अचानक मिलना हो गया? पर—पर धर्मपाल नही चाहते कि वे इस बातको सोचे। उन्हे जैसे अपने हाथोंसे किये किसी अन्यायकी याद आ जाती है। और अब तकियेपर सिर रखते ही आज ढाई सालके बाद पहली बार ख्याल आया कि शीलासे क्यों इतनी दूर हो गये। वह बिचारी तो जानती तक न थी। और फिर श्यामाको ले आनेपर कोई बखेड़ा नही उठाया, कोई झगड़ा नही किया और वे? उन्होंने एक बार उसे देखा तक नही? कैसे रहती है, कहॉ रहती है? इस अंसेमे एक बार रुपया तक नहीं मॅगवा भेजा। शायद शाहजीके यहॉसे आता होगा—ओर अबतक शाहजी अपनी बेटीको ले नही गये। ख्याल आया, शीलाको बिदा करते शाहजीने उनका माथा चूम-चूमकर कहा था—"बेटा! इसने तुम्हारा लड़ पकड़ा है, इसे निभाना।" कैसा निभाया है उन्होंने ..? धर्मपालने करवट ली। क्या वह श्यामासे कम सुन्दर थी? पर बम्बईमे न जाने उन्हे क्या हो गया था? उन्हे लगा जैसे वे बदल रहे हैं। सोचा, क्या श्यामाका अभाव तो नही? नही, नही शीलाकी वह दुबली देह जैसे चीखकर कह रही थी। दिमाग़मे जैसे हलचल-सी हो गई। अब वे नही लेट सकेगे।

धर्मपाल उठकर खड़े हुए। ढीला कोट पहना और सीढियासे नीचे उतर चले। एक क्षण सकोचने मानो पैर जकड़ दिये। पर यह तूफान!

क्या यह रुक सकेगा ? क्या कहेंगे शीलासे ? नही, कुछ नहीं। कहनेकी जरूरत नही होगी।

नीचे ऑगनमे आकर देखा, कोई नौकर-चाकर नही था। ऑगन पार किया। परदे नीचे पडे थे। परदा उठाया तो सामने फर्शपर महरी बैठी कपडोकी तह लगा रही थी। बच्ची सो गई थी। इसलिए दबे पॉवो बाहर आकर वह काम-धन्धेमे लगी थी। जमाईको देखते ही ऑखे ऊपर नहीं उठी। मानो कहती हो—रिश्ता ऐसा है, क्या कहूँ ? पर तुम यहॉ कैसे ?. . धर्मपाल भी महरीकी ओर ठीकसे देख नहीं पाये। दबी-सी आवाजमे बोले—"महरी !.. "शायद कुछ पूछना चाहते थे, पर महरी हाथके कपडे हाथमे लिये, बिना कुछ कहे-सुने बाहर चली गई।

धर्मपाल एक क्षण परदेको पकडे खड़े रहे। सोचा, न जाने शीला क्या कर रही होगी। कोई आहट तक नही आ रही। अन्दर पहुॅचे। सोफा खाली था। सामने पलगपर सिमटी-सिकुडी-सी शीला सोई पडी थी। सिरपर बॉह रक्खी थी। पास एक ओर महीन दुपट्टा पड़ा था। जैसे भारी लगनेपर उतार दिया गया हो। मुॅहपर बिजलीकी रोशनी पड रही थी। वही चेहरा है, वही बाहे और गोरे स्वच्छ पॉव। शीला ! मगर नही, यह आवाज गलेसे नही, उनके दिलसे निकली थी और वहीं फैल गई थी। शीला ! शीला बेखबर पडी थी। सोच-सोचकर इतनी थक गई थी कि बन्द पलकोके अन्दर कोई स्वप्न भी नहीं देख पाई।

धर्मपाल पास आकर खड़े हो गये। क्या यह उचित है ? जैसे किसीने चेता दिया हो। नहीं, धर्मपाल आगे बढ़े—सिरपर रखी बॉहका स्पर्श किया। हल्केसे उसे पकड अपने सशक्त हाथोकी उॅगलियॉ शीलाके बालोमे डुबो दी।

सिरपर पडते हुए दबावसे शीला चौक गई। सोचा, चाची है। ऑखे खोलीं—और खुली रह गईं। विश्वास नही आया, शायद वह स्वप्न देख

रही है। उसका हाथ पतिके हाथमें है और वह किसी निर्जीव पत्थरकी तरह पडी है। धर्मपालने झकझोरते हुए कॉपती आवाजमें कहा—"शीला !"

आवाज शीलाको हिला गई। पतिके उदास-मलिन मुखकी ओर शिकायत-भरी नजरोसे झुके-झुके देखा और विवश होकर रो पडी।

"शीला !. "

शीला रोये जा रही थी। लेकिन ऑसूकी बूँदे सिरहानेपर नहीं पतिके वक्षपर पड रही थी। बाहर बादल बरसे जा रहे थे और धरती भीग रही थी, और भीगी धरतीके वक्षमे एक आलोडन उठ रहा था—शायद निर्माणीकी प्यास ही

× × ×

वह रात कितनी गीली थी, कितनी गहरी थी। गर्जते हुए बादलोंका निनाद सुनकर भी बिजली चमकती जा रही थी। एक महीन-सी रेखा किस गतिसे कजरारे बादलोंको उन्मत्त किये जा रही थी। और पतिकी गोदमें पडी कलतककी बेबस और दुर्बल नारी आज रोकर भी हँसती जा रही थी। और धर्मपाल पत्नीको हौलेसे पुकार भर लेनेके सिवाय और कुछ नहीं कह सके। शीला ! शीला ! शीला !—और इस नामसे वह सब जुड गया जो दो साल पहले किसी अनिश्चित कालके लिए टूट गया था, बिछुड गया था। लेकिन क्या सचमुच ही सज्ञाका इतना मूल्य है ? देहसे अलग, देहसे भिन्न कौन-सी सज्ञा होती है जो ऐसी रातमें किसी ऑखोंमें नाच जाती है ? क्या दोनो इस बातको नहीं जानते ? इतने अनजान नही वे। फिर भी किन्हीं दो भटके हुए पुराने साथियोंकी तरह एक-दूसरेको थामे हुए वे सोच रहे है कि हमेशा नहीं तो आज तो कम-से-कम इस तूफानी रातमें वे इकट्ठे है। सिरपर भयानक तूफानी रात थी। लेकिन स्वयं उनमें अधीरता नहीं थी, जीवनका उष्ण रक्त था जो स्थिर गतिसे बहता

जा रहा था और बहकर उस चिरन्तन प्यासको बुझा रहा था जो हाड-मासके साथ उसमें जागी थी।

रात कैसे आई और कैसे बीत गई? शायद बहुत लम्बी थी। शायद बहुत छोटी थी। शीला नही जानती कि रात कैसे कट गई, धर्मपाल नही जानते रात कैसे कट गई। लेकिन नारीके अन्तरके नीचे—सबसे नीचे—पडी ममता जानती थी कि रात कैसे गुजर गई। सच है कि वह रातको पकड नहीं पाई लेकिन वह शून्य नही थी। उसमें रस था, उसमें जीवन था, जीवनका अर्थ था। जो आज नही तो वर्ष भरके बाद मॉकी गोदीमें किलकारियॉ लेगा। और मॉका ऑचल उसे ओट किये हुए अन्धेरी रातोसे, कष्टोंसे और अपशकुनोसे बचाता जायगा।

सुबह धर्मपाल जब जगे तो शीला नहा-धोकर तैयार हो गई थी। महरीने बाहरवाले कमरेसे ही बच्चीको चायकी ट्रे पकड़ा दी। नहलाते-नहलाते चाचीने बच्चीसे कहा था—"जल्दी कर लो बच्ची, फिर चायका इन्तजाम करूँ। जमाई तो सुबह-सुबह चायके आदी है।" शीला सलज्ज हॅस दी थी। "चाची, तुम्हे फिकर है? किसी नौकरसे कह दो न?" चाचीने भेद-भरी दृष्टिसे बच्चीको देखकर कहा था—"न, न बच्ची। तुम इन नौकर-चाकरोको नही जानती। चाय रखने आयेंगे, बीस बाते बनायेंगे बाहर जाकर। मै ही लाऊँगी।" फिर तनिक रुककर उसने कहा था, "बच्ची तुम्हे पकडा दूँगी। तुम्ही अन्दर ले जाना..।" "क्यो-क्यो, चाची? क्या तुम. ..." उसने चाचीसे पूछना चाहा था। बीच हीमें चाची बोली, "तुम भोली हो बच्ची। सुबह-सुबह उठकर क्या जमाईको मेरा ही मुँह देखना है?" शीला खुलकर हॅस दी थी—"ओह चाची, क्या मै सोते-जागते तुम्हे नही देखती?"... चाचीने कहा था—"वह और बात है बच्ची! तुम नही समझती, लाओ जरा पैरोको मलूँ कितनी खुश्की हो गई है...।" शीला समझ गई थी कि चाची अन्दर जाकर धर्मपालको सङ्कोचमें नही डालना चाहती। मन-ही-मन हॅसकर वह चाचीके प्रस्तावसे

सहमत हो गई थी। चाचीने ट्रे पकड़ा दी थी और शीलाने उसे मेजपर ला रखा था और पतिके सिरहाने जरा झुक कर धीरेसे पतिके बालोंको छूती हुई मृदु कण्ठसे बोली—"उठना नही जी ? दिन चढ़ आया।"

धर्मपालने आँखे खोली, शीला बिल्कुल पास खडी थी। भरकर देखा, कैसी निखरी-सी लगती है ! जैसे बीती हुई रात उसे रुलाकर हल्का कर गई थी। खींचकर पास बिठा लिया। आँखोमें सकोच नहीं, दूरी नहीं। शीला !...शीला लजा गई। बैठे-बैठे चाय बनाकर प्याला हाथमे लिये बोली—"लीजिये न।"

"नही, रख दो।" धर्मपाल कह उठे। शीलाने पतिकी ओर देखा। उसमे आहत-सा अभिमान था। प्याला मेजपर रखकर बोली—"क्यो, क्या अभी उठोगे नही ?" और पतिकी बाँहपर हाथ रख दिया। धर्मपाल कुछ क्षण देखते रहे और फिर आँखोंकी कोरोसे दो बूँदे ढुलक गईं। शीलाने अपने हाथसे आँखे ढक दी और दूसरेसे पतिके बाल सहलाते हुए बोली—"सुबह-सुबह यह क्यों ? अपनेसे नाराज हो रहे हो ?"

"नही", धर्मपाल रुँधी-सी आवाजमे बोले—"तुमसे क्या कहूँ शीला ? मै नहीं जानता।"

बीती हुई रातके बाद भी कुछ रहा-सहा मलाल पतिके इन दो आँसुओ से धुल गया। स्वय ही सोचा, नारी इन बातोमे कितनी कच्ची होती है ? लेकिन इतना पश्चात्ताप काफी नहीं। पतिके वक्षपर सिर रखकर बोली, "कैसी बाते करते हो ? तुमसे आज तक क्या मैने शिकायत की ?"

इसका जवाब धर्मपालने कुछ नहीं दिया। वैसे सोचते थे कि एक उपालम्भ ही दिया होता। पर उसने तो जवाब नही माँगा और आज भी तो उस बातको कैसे बचाती जा रही है। जैसे आजके दिनमे वह उन सब बातोको नही मिलाना चाहती।

शीलाने पलभर उत्तर की, नहीं तो कुछ सुननेकी, प्रतीक्षाके बाद

कहा—"उठो, जी ! छोडो इस सोचको, आज क्या काम पर नही जाओगे ?"

"नही !"

"अच्छा !" शीला हँस पड़ी। पुरानी बात याद आ गई। जब वह नई-नई ब्याही आई तो पति अक्सर सुबह देर तक सोते रहते। उठनेके लिए कहती तो कहते—शीला, आज काम पर जानेको जी नहीं चाहता। वह शरमाकर मुसकरा देती। शरारतसे कहती—लाला जी तो कुछ नहीं पूछेंगे। और धर्मपाल कुछ खीजकर उठ बैठते। और वह मन ही मन मुसकराया करती। जैसे कहती हो—दिनमे तो छोड़ा करो।

"तो आज भी कामपर नही जाओगे ?"

धर्मपालने सिर हिलाया—"नहीं।"

"अच्छा तो नहा-धोकर फिर लेट जाना। कपडे ऊपरसे मँगवा देती हूँ। रक्खे होगे ही ऊपर।" यह कहकर शीला महरीको बुलाने ही लगी थी कि धर्मपाल बोले—"नहीं उसे मत भेजो, अपने आप जाकर निकाल लाओ।"

धर्मपालके स्वरमें अनुरोध था। जैसे पत्नीको उसके अधिकारकी याद दिला रहे थे। ऊपर जानेकी अनिच्छा, वह भी श्यामाकी अनुपस्थिति मे—पर 'न' करनेमे भी शीलाको संकोच-सा हुआ। अनमनी-सी होकर उठी। महरीको बुलाकर कहा—"महरी, उनके कपडे लाने है ऊपरसे। चलो तुम्हारे साथ चलती हूँ।"

चाचीने एक बार बच्चीको खुली दृष्टिसे देखा और जरा-सा हँसकर बोली—"चलो, बच्ची !" दिलमें कह रही थी—इस कामके लिए नही जाऊँगी।

शीलाने कमरेमे प्रवेश किया। उस दिन भी तो यही सब कुछ था। कितना पराया लगा था। शायद श्यामा इसकी मालकिन लग रही थी।

और आज ? कपडोंकी अलमारी खोलते-खोलते लगा कि दो वर्षके वाद उसे फिर अपना अधिकार मिल गया है । वे दो वर्ष, जो कटनेमे नहीं आते थे, आज कितने छोटे हो गये है ! कपडोको तरतीववार रखनेवाले हाथोंसे आज पहली वार शीलाको ईर्ष्या-सी हुई । और कपड़े निकालकर जव शीला नीचे उतरी तो पाँवोंमें गति थी, और चालमे घरकी स्वामिनी होनेका रोव था । वॉह पर रक्खे कपडोको देखकर महरीने मन ही मन कहा—भगवान् करे, वडी-वडी उम्र हो वच्ची की और जमाईकी भी। आज क्या वह जमाईको वच्चीसे अलग देख सकती है ?

शीला कपडे लिये आकर खडी हुई तो धर्मपालको लगा कि वे पुराने दिन लौट आये हैं और इस वीचके दो साल इस भूली-सी कड़ीसे निकल कर कहीं अलग होकर अदृश्य हो गये है। और वह और शीला, टूटा हुआ तार जैसे फिर जुड गया है......

रामकुमार

अर्थशास्त्रमें एम० ए० कर, आठ महीने शिमलाके एक बैंकमें काउण्टरके पीछे बैठ चुकनेके बाद साहित्य, संगीत और चित्रकलाके अनुरागी पच्चीसवर्षीय रामकुमारने अनुभव किया कि कलासे बचना सम्भव नहीं। अतएव चित्रकलाका अध्ययन करने सन् ५१ मे कलाकारोकी राजधानी पेरिस पहुँचे और फिर आधुनिकताकी खोज कर दो वर्ष बाद स्वदेश लौटे। तबसे चित्रकारी, साहित्य-सेवा, शान्ति-आन्दोलन और देश-विदेश-यात्रा में समय व्यतीत करते रहे है। संगीतका चक्कर तो कभीका छूट चुका है; इधर लिखने-लिखानेके प्रति भी वह पहले-सा उत्साह नही है। अब तो बस चित्रकारीका ही जोश है। चित्रोमे जितनी जटिलता है, कहानियोंमें उतनी ही सादगी; अलबत्ता प्रभाव की दृष्टिसे दोनो समान रूपसे सशक्त है। दोनो ही मनमे एक गहरी उदासी और एक कुहरीला स्मृत्याभास छोड़ जाते है।

आपके 'घर बने, घर टूटे' और 'देर-सबेर' दो मौलिक उपन्यास; तथा 'एक अपमानित स्त्री के पत्र', 'वार्ड नम्बर ६', और 'डोरियन ग्रे का चित्र' तीन अनूदित उपन्यास प्रकाशित हो चुके है।

• हुस्ना बीबी

—रामकुमार

हुस्नाने करवट बदलकर सामने दीवारपर लगी घडीपर नजर डाली, तो दस बजनेमें कुछ ही मिनट बाकी थे, परन्तु घड़ीकी सुइयो का महत्त्व उसकी ज़िन्दगीसे अब अलग हट गया था। दिनमे कई बार देखनेपर भी वह चुपचाप उन्हें घूमते हुए देखा करती थी। क्योंकि उन बेजान सुइयोंमें गति थी। थोड़ी देर बाद वहाँसे नजर उठाकर उसने अपने दोनों गोरे-गोरे पतले हाथ ऊपर उठाते हुए एक अँगडाई ली जिससे उसके हाथमें पडी लाल और काली चूडियाँ एक बार झनझना कर चुप हो गयीं। हुस्नाने एक हाथसे घुटनोपर पडा काली और सफेद धारियों वाला कम्बल अपने गले तक घसीट लिया। पलगकी दाईं ओर दीवारपर उमरखैयामका एक चित्र टँगा हुआ था, जिसके फ्रेम मे लगे शीशेपर दरार आ गयी थी। उस चित्रको दीवारपर लगे कितने साल बीत चुके थे ! महीनोंकी धूल चित्रके फ्रेम और शीशेपर चिपटी हुई थी। चित्र ही क्या, कमरेमें जो चीज एक बार जिस स्थान पर रख दी जाती थी, फिर उसे वहाँसे उठानेकी कभी नौबत नहीं आती थी। तीन-चार साल बाद जब कभी मकान-मालिक घरमें सफेदी करवाता, तो सब सामान जबरदस्ती उठाया जाता था और उसके बाद शहीदन अपनी मर्जीसे जहाँ सामान रख देती, फिर उसे बदलने वाला कोई व्यक्ति घरमें नहीं था। कोनेमें पडा ड्रेसिंग टेबल, जिसके शीशे और पीछेकी दीवारके खाली स्थानमें मकडियोने अनगिनत जाले बुन लिये थे, खिडकी और रोशनदानके बीचमें किसी हिरणके काले-काले दो सींग, दरवाजेके पास एक कीलपर टँगा बरसों पुराना एक कैलेंडर, कोनेमें रखी शहतूतकी लकडीकी बनी तीन पैरों वाली कुर्सी, जिसके

दोनो ओर शेरोके मुँह बने थे—सब मानो अपने-अपने स्थानो पर बैठे एक-दूसरेकी ओर खुली आँखोसे ताका करते थे। अभी पलगसे उठ कर क्या होगा? गुदगुदे गद्दो और मुलायम कम्बलोकी गरमाईमे पाँव पसारकर पलंगपर लेटे रहनेमे कितना सुख मिलता है या करवट बदल कर एक हाथ सिरके नीचे दबाये और दूसरेको अपने धडकते सीने पर रखकर कितना सुकून मिलता है! जब आँखे कमरेके एक कोने या एक वस्तुसे ऊब जाएँ, तो दूसरी देखने लगो और फिर तीसरी.. और फिर सबसे ऊब जाने पर आँखें बन्द कर लो तब एक नई दूसरी दुनिया दिखाई देने लगती है.. यह सोच कर हुस्नाके होठ मुसकरा उठे, मानो उस नई दुनियाकी एक लहर उसके बदनमे दौड गयी हो। और आखिर उठकर भी क्या होगा? उसे कहीं बाहिर नही जाना है, शामको किसी का इन्तजार उसे नही करना है। उस्तादजीका तबला नही बजेगा, जमाल खॉ सारंगीके तारोको नहीं छेड़ेगे और उसे.. उसे गाना नही पड़ेगा. कोई उससे फलॉ गजल गानेकी जिद नहीं करेगा। वे दिन बीत गये जब तीन बजेसे ही घंटो वह ड्रेसिंग टेबलके सामने बैठी हीरे और पन्नेकी अँगूठियॉ, नौरत्नोके चमकते हार, जड़ाऊ कंगन, सफेद मोतियोके लटकते झूमर और खुदे हुए फूलोसे सजा कमरबन्द पहनकर बार-बार शीशेमे अपना मुँह और शरीर देखा करती थी। वह कौन-से 'शेड' की लिपस्टिक लगाये? गफूर मियॉको हल्की गुलाबी रंगकी लिपस्टिक पसन्द थी और टण्डन साहब गहरा सुर्ख रंग पसन्द करते थे—चाहे वह होठोपर लगी लिपस्टिकका हो, चाहे नाखूनोकी लालीका; चाहे गालोके रूजका हो; चाहे गुलदस्तेमे सजे गुलाबके फूलोका। बालोमे वह कौन-सा तेल डाले? 'यू डी कोलोन' या 'ईवनिंग इन पेरिस' या फिर सादा चमेलीका तेल जो मिस्टर दरको बहुत पसन्द था। और फिर उसका गाना शुरू होनेसे पहले उसकी महफ़िलके लोग आपसमे गरमागरम बहसे किया करते थे कि वो जिगर की 'काम आख़िर जज्बये

बेइख्तियार आ ही गया 'गजल गाये या कोई दादरा या गालिबके शेर गुनगुनाये। वह मुसकराती हुई उन सबकी ओर कनखियोंसे देखा करती और उसका दिल बाँसो उछला करता। थोड़ी देर बाद उस्तादजी तबलेको घुमा-घुमाकर उसे ठोकते, जमाल खाँ सारंगीके तारोको सुरमे लाते और उसके गलेसे धीमी आवाज दिलकी गहराई मे डूबी हुई निकलती। मानो वे शराबके पहले घूँट हो जिनका नशा धीरे-धीरे चढ़ने लगता है। महफिल जम जाती, लोग झूमने लगते। कोई आँखे बन्द करके और कोई कमरेकी दीवारोकी ओर ताकते हुए। उस्ताद जीकी उँगलियाँ तबलेपर तेजीसे थिरकने लगतीं और उसकी गजलके शेर धीरे-धीरे लोगोके दिमागो और दिलोमे उतरने लगते।

बाहिर अँधेरे की चादर धीरे-धीरे गाढ़ी होती जाती और लोगोकी दिनकी जिंदगीका शोरगुल सोई रातके सन्नाटेमे डूब जाता। आसमानमे तारोका मेला लगने लगता और कमरेमे जिंदगीकी गति प्रतिक्षण तेज होती जाती, मानो रातको चुनौती दे रही हो। दीवार पर लगी घडीकी दौडती सुइयोकी ओर किसीका ध्यान न जाता। दो गानोंके बीच थोडी तफरीह होती, ह्विस्की और रमकी बोतले खुलती, पासकी हसन मियाँकी दूकानसे बर्फमे दबी सोडेकी बोतले मँगायी जाती और महफिलके लोग गजलपर बहस करते, हुस्नाके सोज-भरे गलेकी तारीफे करते। चाँदीके वरकोमे लिपटे पान एक-दूसरेकी ओर बढते और सिगरेटके धुएँसे कमरा भर उठता। हुस्ना अपने कमरेमें जाकर ड्रेसिग टेबलके शीशेके सामने अपने चेहरेपर पाउडर और गालोंपर रूज लगाती, होठोंकी लालीको और गहरा करती और जूड़ेमेंसे खिसकी हुई बालोंकी लटोंको फिर कघेसे पीछे धकेलती। फिर एक और नई गजल। सारंगीके तार दिलके उठते तूफानोंसे टकराकर और भी जोर से बज उठते. .।

"हुस्ना बेटी, अब उठ। क्या अभी तक सो रही है? देख, सूरज

रेलकी लाइनोंके पीछे छिप गया है।" शहीदन हुस्नाकी बन्द आँखो की ओर क्षण-भर तक देखती रही और फिर उसने पासकी तिपाईपर चायकी ट्रे रख दी। चीनीके बरतनोंकी खटाखट सुनकर हुस्नाने धीरे-धीरे आँखें खोलीं। शहीदनकी ओर देख कर उसके सूखे होठ एक बार थोडा-सा मुसकरा उठे। तकियेको पीठके पीछे टिकाकर वह बैठ गयी, "चाची, यह तुम कैसे जान लेती हो कि कौन-से वक्त मुझे किस चीजकी जरूरत पडती है। मै अभी-अभी चायके बारेमें ही सोच रही थी। शराब मुझे कभी पसन्द नहीं आयी। गफूर मियॉ जबरदस्ती करके एक-आध पेग पिला देते थे। लेकिन मैंने अपनी तबीयतसे कभी नहीं पी। मुझे तो गरम-गरम चायका एक प्याला..."

शहीदन चुपचाप प्यालेमें चाय बना रही थी। उसके पके सफेद बाल उसकी ओढ़नीमेंसे झाँक रहे थे। हुस्नाकी बाते वह चुप-चाप सुनती रहती थी, जिसका सिर-पैर उसकी समझमे नहीं आता था। वह केवल इतना जानती थी कि पॉच साल पहले हुस्ना जो बाते करती थी अब वे बदल चुकी हैं। हुस्ना मानो उससे बाते नहीं करती थी। उसको कमरेमे देखकर वह जोर-ज़ोरसे अपनेसे बाते करने लगती थी जो अकेलेमें खुद सोचती रहती थी।

"चाची, इस शामके सन्नाटेमें कमरेका सूनापन मेरे दिलके सूनेपनसे मिल जाता है और मै सोचने लगती हूँ कि अब शायद इसकी वीरानगी कभी खत्म नहीं होगी।" थोड़ी देर चुप रहकर वह हँसने लगी और चायका घूँट पीकर उसने फिर कहा, "अभी लेटे-लेटे मै देख रही थी—शायद वह मेरा ख्वाब था—कि शामके झुटपुटेमे नीले आसमानमे लौटते हुए परिंदोकी टोलियॉ अपने बसेरोकी ओर उडी जा रही है। उन्हे अपने घर पहुँचनेकी जल्दी थी। शायद उनके नन्हे-नन्हे बिना परोके बच्चे उनका इन्तजार कर रहे थे...लेकिन मेरा

बसेरा कहाँ है ?.. मुझे कभी उडकर कहीं पहुँचनेकी जल्दी नही होती। बस, यह पलग और मैं, और मेरे कमरेकी दीवारें।"

शहीदनने पलगसे नीचे लटकते हुए कम्बलको ऊपर उठाते हुए कहा, "हुस्ना, मेरी रायमे हम कहीं बाहिर चले...इस शहरसे बाहिर... इस मकानसे बाहिर। यहाँ सारा दिन लेटे-लेटे तू अजीब बाते सोचा करती है; ऐसे कब तक जिन्दगी चलेगी ? हुस्ना, तू नहीं जानती कि तू कितनी बदल गयी है !"

शहीदनकी बात सुनकर हुस्नाने उसकी ओर बडे ध्यानसे देखा और फिर प्यालेको ट्रेपर रखकर बोली, "चाची, ऐसी बात तुम्हारे दिमाग़मे कैसे आती है ? इतने सालोंसे तुम मेरे पास रहती हो, लेकिन अभी तक तुमने मुझे नही समझा।" और भी एक लम्बी साँस लेकर बोली, "कोई भी मुझे नहीं समझ सका, न गफूर मियाँ, न टंडन साहब, न मिस्टर दर। हर साल गर्मियोमें सब मुझसे पहाड चलनेको कहते थे—कोई मंसूरी, कोई शिमला, कोई नैनीताल आनेकी दावत देता था; लेकिन मैं कभी इस शहरसे बाहर नहीं गयी और भला जा भी कैसे सकती थी !"

शहीदन चुपचाप हुस्नाके चेहरेकी ओर देख रही थी। उसकी बडी-बड़ी काली आँखोंमें वह कौन-सी गहराई है जिसके भीतर वह कभी झाँक नही सकी। इन सूखे होठोपर यह कौन-सी उदासी या अतृप्त सुख है, जिसे वह कभी समझ नहीं पायी। आखिर हुस्ना सारे दिन पलगपर लेटी क्या सोचा करती है ? वह कभी कोई किताब नहीं पढ़ती। कभी उसने बाजारसे अखबार नहीं मँगवाया। रेडियोके गानोंसे उसे नफरत है। तो वह कौन-से जाल बुना करती है !

हुस्नाने एक सिगरेट सुलगा ली। सिगरेटका धुआँ उसे पसन्द था और कभी-कभी एकके बाद एक सिगरेट सुलगाकर वह नाक और मुँहसे

धुआँ ऊपर छतकी ओर छोडा करती थी। एकाएक उसने शहीदनकी आँखोकी तरफ़ देखा, जिनके नीचे झुर्रियाँ अपने रास्ते स्पष्ट और गहरे बनाती जा रही थी। "चाची, हम बाहर कहाँ जा सकते है? बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली.. लेकिन हमारी जिन्दगी तो सब जगह हमारे साथ ही जायगी। उससे भला पीछा कैसे छुडा सकते है। यहाँ हम अपने पुराने शहरमे है। यह मेरा कमरा है। यह मेरा पलंग है, जहाँ मै सारा दिन लेटी सपने देख सकती हूँ। शहरमे हमारी इज्जत है। हमारे मकानके सामनेसे गुजरने पर लोग उँगली ऊपर उठाकर कहते है कि यहाँ हुस्ना बीबी रहती है, जिसकी गजलोकी धूम दूर-दूर तक फैली हुई है.. और हमारे मरनेके बाद भी लोग हमारा नाम बडी इज्जतसे लिया करेगे।" थोडी देर तक वह सिगरेटके कश खीचती रही और धुआँ छोडती हुई सामने दीवारपर लगे चित्रकी ओर देखती रही—"अगर लोग मुझे गफूर मियाँ की मोटरमे या टण्डन साहबके साथ शहरमे घूमते हुए या पहाडोपर जाते देखते, अगर हमारी महफ़िलोमें भी ऐरे-गैरे आने लगते, तो भला लोग क्या हमारी ऐसी इज्जत करते! आज भी हसन मियाँके रेस्तराँमे कभी लोगोको बाते करते सुनो तो वे चाय पीते हुए हमारी गजलोकी ही चर्चा किया करते है। उन पुराने दिनोकी याद करते है जब लोग हमारी खिडकीके नीचे हमारी गजलोको सुननेके लिए आधी-आधी रात तक इन्तजार किया करते थे..."

कमरे मे अँधेरा बढता जा रहा था। अपने ही विचारोमे डूबी हुस्ना शहीदनकी आँखोसे टपकते आँसुओकी बूँदोको नही देख सकी। हुस्नाने सिगरेट, प्यालीकी बची हुई चायमे डाल दी और अपने पाँव कम्बल के अन्दर पसार लिये। वह महसूस करने लगी मानो मीलोका सफर पैदल पार करने के बाद इस तरह पाँव फैलाने से उसकी थकान धीरे-धीरे समाप्त हो रही हो। थोड़ी देर बाद दुपट्टेसे अपनी आँखे पोछकर चाय की ट्रे उठा शहीदन बावर्चीखानेकी तरफ चली गयी। हुस्नाने शहीदनके जाने

के बाद हिम्मत करके कम्बलको अपने पैरोंसे दूर फेंक दिया और स्लीपर पहने। दुपट्टेको जैसे-तैसे सीने पर धकेलकर वह कमरेकी खुली खिडकी के सामने जाकर खडी हो गयी। नीचे सडकपर बिजलीके खम्भोंकी धुँधली रोशनी थी। दूकानोंके सामने कुछ लोगोंके झुंड धीमी चालसे राह चलती किसी औरतको घूरते हुए आगे बढ जाते थे। नुक्कडपर हसन मियाँके रेस्तराँमे लालटेन जल रही थी। शायद कोई इक्का-दुक्का चाय पी रहा होगा और हसन मियाँ उसे गालिब, जिगर, फैजके शेर सुना रहे होंगे। उन्हे कभी याद नहीं रहता कि कौन शेर या गजल किस शायर की लिखी हुई है। एक जमानेमे वह भी शायरी किया करते थे। तब शायद जवान रहे होंगे लेकिन अब उन्हें अपना एक भी शेर याद नहीं है। फिल्मी गानोंसे उन्हे भी चिढ थी लेकिन अब वे उन्हे सुननेके आदी हो गये है क्योंकि सामने वाले 'गुलजार रेस्तराँ' ने रेडियो-सेट लगा रक्खा है जिसमे दिनभर फिल्मी रेकार्ड बजा करते है। सडक के पार ऊबड-खाबड बस्ती थी, कही कोई छोटा-सा लाल पत्थरोंका टीला, तो कहीं कुछ पेड़ोंका छोटा-सा जगल। उस बस्तीके पीछे छोटी लाइन थी, जहाँसे रेलगाडी सवेरे आठ बजे, शामके पाँच बजे और रातके साढे दस बजे गुजरा करती थी। कभी-कभी ऐसे अकेले क्षणोंमे छक-छक करती रेलगाड़ीको वहाँसे गुजरते देखकर हुस्नाके मनमे आता था कि एक दिन वह यहाँसे गाडीमे बैठकर दूर, कही बहुत दूर चली जाये, जहाँ उसके पिछले इतिहासको कोई न जानता हो, जहाँ उसके संगीतका स्वर लोगोंके कानों तक न पहुँचा हो, जहाँ लोग उसके मकानको देखकर उसके अकेलेपनपर उससे सहानुभूति न दिखलाने लगे, क्योंकि खिडकीके पास खडे होकर सड़कपर चलते लोगोंको देखकर वह पडी सोचा करती थी कि लोग उसकी उजाड जिन्दगीके विषयमे परस्पर बाते करके उस पर दया दिखलाते है। लेकिन क्या किसी नये शहरमे जाकर उसका मन भी नयी जिन्दगी बसर कर सकेगा? क्या वह अतीतके सब

बन्धनो को तोड़कर एक नया अध्याय शुरू कर सकेगी? हुस्ना सहम-सी जाती, उसका दिल जोर-ज़ोरसे धडकने लगता। क्या बीते दिनोको आखिरी साँसो तक वह कभी भुला सकेगी? अतीत, वर्तमान और भविष्य के बीचमे भला खाइयाँ कैसे खोदी जा सकती है। वह आज भी अतीत में जिन्दा है और उसीके सहारे भविष्यका निर्माण करती है, उससे रिश्ते तोड़ लेना तो अलग रहा। ज़िन्दगीमें उसने नये रास्तोकी तलाश नहीं की। एक रास्तेपर आगे बढ़कर पीछे लौटना और एक नये रास्ते पर चल पड़ना उसे असम्भव प्रतीत होता था। लेकिन यह रेलगाड़ी दिनमे तीन बार यहाँसे गुजर जाती है, कितने ही अपरिचित शहरो, नदियो, बियाबान जंगलोको पार करती हुई न जाने कहाँ पहुँच जाती है। काश, जिन्दगी भी रेलगाड़ी-जैसी रफ्तार के साथ आगे बढती!

दूर दायीं ओर रेलकी लाइन पार करनेका पुल था, जिसके बीचो-बीच एक बत्ती जगमगा रही थी। मानो अँधेरे आसमानमे कोई सितारा टिमटिमा रहा हो। हुस्नाने ऊपर आसमानकी ओर देखा, तारे धुँधले थे; परन्तु दिखाई दे रहे थे। हुस्ना खिड़कीके सामनेसे हट गयी। उसने दीवारपर लगा स्विच दबा दिया। रोशनीमें कमरेकी प्रत्येक वस्तु अपने पुराने इतिहासके साथ उभर पड़ी। वह इस कमरेके नक्शेको बदल देगी। आखिर इन सब सामानोको यहाँ सजाये रखनेसे क्या फायदा? यह हाथियो वाली कुर्सी गफूर मियाँ शायद सात-आठ साल पहले ईदके दिन दे गये थे और उस वक्त वह इसे अपने कमरेमें देखकर खुशीसे पागल-सी हो गयी थी; अब इसकी एक टाँग टूट गयी है और चमडेके घिस जानेसे गद्दीका कपडा दिखाई देने लगा है। उसकी यहाँ भला क्या जरूरत है! वह इसे हसन मियाँको दे देगी, वह इसे अपनी दूकानपर रख लेगे...चाची कहती थी कि पडोस की 'कोहेनूर फरनीचर वर्क्स' का मालिक उसके पचास-साठ रुपये दे देगा, लेकिन वह उसे बेचेगी नही, इस कमरेकी कोई भी चीज़ वह नहीं बेच सकती। और यह उमरख़य्याम

का चित्र दस साल पहले मुनीरने बनाकर मेरे जन्मदिनपर मुझे दिया था...इस पर महफ़िलके लोगोने कितने ही दिनो तक बहस की थी। चाची कभी कमरेकी धूल नहीं झाड़ती...और ये हिरणके बलखाते हुए सींग, सोफा-सेट, ड्रेसिंग टेबल, चाँदीका पीकदान और फर्शपर बिछा तार-तार होता यह कालीन, मानो ये सब अजायबघरकी चीजे हो! लेकिन वह कब तक इस अजायबघर के अन्दर बन्द रह सकती है? क्या वह भी इन्हीं बेजान चीजोंकी तरह इस अजायबघरकी एक चीज नही बन गयी है!...

हुस्ना ड्रेसिंग टेबलके सामने रक्खी कुर्सीपर धपसे बैठ गयी। उसका सिर घूमने लगा था। उसे कमरेकी प्रत्येक वस्तु घूमती हुई नजर आ रही थी। थोड़ी देर तक शीशेमें अपना चेहरा देखती हुई वह स्तब्ध, मूर्तिवत् बैठी रही। उसने झुककर पाससे अपना चेहरा देखनेकी कोशिश की, लेकिन शीशा धुँधला दिखाई देने लगा। उसकी काली आँखे चुप थीं। वह मुसकराती लेकिन उसकी आँखे खामोश रहीं और उसके होठ घायल पक्षीकी भाँति फडफड़ाते ही रह गये। उसने क्रीमकी डिब्बी खोली, लेकिन क्रीम सूख गयी थी। खुरचने पर थोडा-सा चूरा हथेलीपर उँगलियो से रगडकर उसने अपने चेहरेपर मला और फिर पाउडर लगाने लगी। लिपस्टिककी डिब्बी खोलकर सूखे होठोको लाल किया और एक बार फिर झुककर उसने अपना चेहरा शीशेमे देखना चाहा। फिर उसने कंघी उठाकर अपने बालोपर फेरी, लेकिन दिन भरके बिखरे अस्त-व्यस्त बालोंमे वह उलझकर रह गयी। उसने अपनी चोटी खोल दी और मुलायम बालोपर कंघी करती हुई वह उन्हे सहलाती रही, रेशमी-भूरे बाल कघी करनेसे चमकने लगे। उसने अपने बालोको बड़े ध्यानसे देखा, परन्तु उनमे एक भी सफेद बाल उसे दिखाई नही दिया। नहीं-नही, वह अभी जवान है, खूबसूरत है, उसके चेहरेपर अभी तक एक भी झुर्री, एक भी शिकन नहीं पड़ी है। उसकी आँखोके नीचे

गड्ढोका कालापन अभी नहीं उतरा है, उसका एक भी बाल सफेद नहीं हुआ है। वह गा सकती है। उसकी आवाज अब भी पहले-जैसी ही सुरीली है। हुस्ना गुनगुनाने लगी–

तुम्हारी याद के जब ज़ख्म भरने लगते है
किसी बहाने तुम्हें याद करने लगते है।

वह खुशीसे चिल्ला पडी, उसे अपने शरीरमे एक तेज-सी लहर दौड़ती जान पडी और उसने अपनी नसोमे ताजा खून दौड़ लगाते हुए महसूस किया।

"चाची...चाची..." हुस्ना जोरसे चिल्लायी।

शहीदन बावर्चीखानेसे दौड़ी। हुस्नाकी चीख सुनकर डरसे वह कॉप उठी थी। "चाची!" कहकर हुस्नाने दरवाज़ेके पास खड़ी शहीदनके गलेमे अपनी दोनों बाहे डाल दीं और उसकी ऑखोमे बड़े पाससे झॉकते हुए कहा, "चाची, मैने अभी-अभी महसूस किया कि इन पॉच सालोमे मैने जिन्दगीसे प्यार करना सीखा है। हॉ चाची, मैं सच कह रही हूॅ, मुझे यहॉकी हरएक चीजसे मुहब्बत है। तभी तो मैने ग़फ़ूर मियॉकी कुर्सी, उमरखय्याम की तसवीर, यह ड्रेसिग टेबल, सारा सामान जो अपने कमरेमे रक्खा हुआ है...मै अभी मरना नही चाहती..." शहीदनका मुॅह हैरानीसे खुलाका खुला रह गया था। हुस्नाके चेहरे पर क्रीमके टुकड़े, होठोकी लाली और उसके खुले बालोको देखकर शहीदनके मुॅहसे भयके कारण आवाज तक नही निकली। वह जोरसे हुस्नाको अपने सीनेसे चिपटा लेना चाहती थी। जिससे वह उसके सीने की धड़कनको सुन सके परन्तु उसके बूढे हाथोकी सारी शक्ति मानो आज समाप्त हो गयी थी।

"मै अभी-अभी एक गजल गा रही थी चाची, मेरी आवाज़मे अभी तक पहले-जैसा ही सोज है। मै उस गजलका दर्द खुद भी नही सह

सकती। इसीलिए मै कभी अकेलेमे नहीं गाती क्योंकि तब मेरा दर्द बॅटाने वाला कोई नहीं होता.. ” हुस्ना मानो अपने-आप से ही बातें कर रही थी।

“हुस्ना, यह सब तू क्या कह रही है...” आखिर शहीदनके मुँह से आवाज निकली, “यह तूने अपना क्या भेप बना रक्खा है, तभी मै कहती थी कि कुछ समयके लिए हमे शहरसे बाहर चले जाना चाहिए। नहीं तो तू पागल हो जायेगी।” शहीदनने हुस्नाके चेहरेको अपने हाथोंमें पकड़ कर कहा।

परन्तु हुस्नाने मानो शहीदनकी बात सुनी ही नही। वह सामने खुली खिडकीकी तरफ देखती हुई कहने लगी, “आज मेरे गानोका दर्द बॅटाने वाला कोई शहरमे नही रहा। वे सबके सब चले गये। मै अकेली ही उनकी यादोके साथ इस अजायबघरमे रह गयी और रोज ही उन बीती बातोंको दुहराना मेरा काम रह गया है।” फिर शहीदनके अपने पास खड़े रहनेका अहसास पाकर वह चिल्ला पडी—“चाची, यह सब क्यो हुआ?” और वह शहीदनके गलेसे लिपट गयी और फूट-फूटकर रोने लगी। शहीदनकी आँखोसे भी आँसू टपक रहे थे। वह चुपचाप हुस्नाके रेशमी बालोंको अपने हाथोंसे सहला रही थीं। ढाढसका एक शब्द उसके मुँहसे कोशिश करनेपर भी नही निकल सका। कमरेमें सन्नाटा था, शामका वीभत्स सन्नाटा। केवल हुस्नाकी सिसकियोंकी आवाज घरके सूनेपनमे एक भयानकता और उदासी भर रही थी।

उस रात काफी सर्दी थी। दिसम्बर का आरम्भ था। दिन भर वर्षा हुई थी और नीला आसमान बादलोंसे ढॅका रहा था। हुस्नाने दिन का खाना खाने के बाद अपने कमरेकी चिमनीमे शहीदनसे लकडियाँ सुलगवा ली थीं और उनकी गरमाईमे वह दिन-भर लेटी रही थी।

कभी उसे नींद आ जाती थी और कभी नींदमे देखे हुए सपनोके विषयमे जागकर उस क्षण तक सोचा करती थी जब तक उसकी आँखे फिर बन्द नही हो जाती थीं। सोते और जागते वक्त वह सपने ही देखा करती थी। शहीदन उसकी दिनचर्यापर हैरान रहती थी और कभी-कभी उसकी चर्चा हसन मियाँसे भी किया करती थी; परन्तु वे चुपचाप शहीदन-की बातें सुनने के अलावा और कुछ भी नही कहते थे। वह बावर्चीखाने मे अकेली बैठी-बैठी हुस्नाके विषयमे सोचकर आँसू बहाती रहती थी। जब कभी वह आटा, दाल, सब्जी वगैरह बाहरसे खरीदने जाती तो मुहल्लेके लोग और पुराने दूकानदार बड़ी गम्भीरतासे हुस्नाके विषयमें पूछा करते थे। उनकी गिरती हुई आर्थिक दशा भी इन लोगो से छिपी नही थी। जहाँ पहले मौसमके नये-नये फल और सब्जियाँ, भोलारामकी दूकानसे ह्विस्की और रमकी बोतले, हसन मियाँकी दूकानसे सोडेकी दर्जनों बोतले और बर्फ़की सिले आती थी वहाँ अब शहीदन चुपकेसे लोगोकी आँख बचा कर दूकानोके पाससे गुज़र जाती थी। उसने कभी हुस्नासे इस विषयमे चर्चा नही की। हुस्नासे भी घरकी स्थिति छिपी नही थी, दो-तीन महीनेसे वह शहीदनके कहनेपर अपनी गहनोकी सदूकड़ीमेंसे कोई गहना निकालकर उसे दे देती थी।

हुस्ना एक आराम-कुर्सीपर चिमनीके पास बैठी लकडियोसे निकलती लपटोंकी ओर देख रही थी। उसके घुटनोपर एक कम्बल पड़ा हुआ था। हुस्नाने कमरेकी बत्ती नहीं जलायी थी। आगकी लपटोमे चिमनी के आसपासकी जगह जगमगा रही थी। सामने दीवार पर लगी उस्ताद जीकी फोटोकी ओर हुस्ना कुछ देर से निहार रही थी, जिसका आभास उसे कुछ देर पहले ही हुआ था। उनकी छोटी-छोटी सफेद दाढी, घनी-घनी मूँछे, सफेद कपडेका कुरता और गम्भीर आँखे उसके सामने थी। दुनियामे शायद सबसे ज्यादा इज्जत वह उस्तादजीकी करती थी।

पता नही, वे शहरमे है या कही दूसरी जगह चले गये। उनसे आखिरी मुलाकात कुछ महीने पहले हुई थी। समय उसे कभी याद नही रहता था, कब दिन महीनो, और महीने सालो मे बदल जाते, उसका लेखा-जोखा वह नही रखती थी।

उस दिन तड़के ही शहीदन उस्तादजी को सीधे उसके कमरे मे ले आयी थी। वह चारपाई पर लेटी हुई थी। उन्हे देख कर वह उठ कर बैठ गयी। उस्तादजी का कुर्ता जेबके पाससे फटा हुआ था। उनकी जूतीपर धूल जमी हुई थी मानो कितने ही दिनोंसे पालिश न हुई हो, परन्तु चाहकर भी वह उन सबके विषयमे पूछ नही सकी थी। वह चुपचाप उनकी आँखो और हिलती हुई छोटी-सी सफेद दाढ़ीकी ओर देखती रही थी।

"मैने सोचा कि बहुत दिनोंसे तुझसे मिला नही हूँ बेटी, सो आज यहाँ तेरे हाल-चाल पूछने चला आया, लेकिन तू बडी दुबली नजर आ रही है हुस्ना, बीमार तो नही है?"

यही सवाल तो वह भी उस्तादजीसे करना चाहती थी। हुस्नाने हँसकर कहा था, "जिन्दगी कभी नही रुकती उस्ताद जी। कभी-कभी हम जिन्दा नहीं रहते। मेरा मतलब है कि साँसे लेते हुए भी असली मायनोमे जिन्दा नही रहते। लेकिन जिन्दगी तब भी पुरानी रफ्तार के साथ आगे बढती जाती है। मरनेसे पहले एक बार मै हिसाब लगाकर देखूँगी कि मै कितने साल जिन्दा रही हूँ।"

शहीदन चाय बनाकर ले आयी थी। हुस्नाने एक प्याला बनाकर उस्तादजी के हाथ में थमाते हुए पूछा था, "और आप अपनी कहिए।"

उस्तादजीने एक लम्बी साँस खीचते हुए कहा था—"अपनी क्या कहूँ! कट रही है, लेकिन उस 'कटने' मे मजा नही आता। सफेदी मे यह हालत होगी, यह कभी सपनेमें भी नही सोचा था। पहले लोग घरो

पर आकर गाना सिखानेकी खुशामदें किया करते थे, तब लोगोको असली और नकली सगीत की पहचान थी। लेकिन अब जमाना बदल गया है। आजकल लोग गीत पसन्द करने लगे है, फिल्मी ढंगके बाजारू गीत, जिन्हें तॉगे वाला उनसे अच्छा गा सकता है। बस, जी चाहता है कि कमरा बन्द करके अन्दर बैठा रहूँ; लेकिन वह भी नामुमकिन है. ."

उस्तादजी हुस्नाकी नजर बचाकर कमरेमे चारो ओर छिपी निगाहोसे देख रहे थे। यही पलगके पास कोनेमे बैठकर वे तबला बजाया करते थे। लेकिन अब खिडकियोपर लगे पर्दोके रंग धुँधले पड गये थे। एक कोनेमे तानपूरा, तबलोंकी जोडी और सारगी रक्खे हुए थे जिनपर कितनी ही धूल जमी हुई थी। उन्होने अनुमान लगाया कि महीनोसे उन्हें बजाया नही गया है। दीवारोके ऊपर मकडियोंके जाले थे। जाते वक्त धीमे स्वरमें उस्तादजीने अपनी ऑखे झुकाये कहा था, "हुस्ना बेटी, एक बात कहनी है।" हुस्ना उनके चेहरेकी ओर बडे ध्यानसे देख रही थी। "तू मेरे पोते सलीमको जानती है न? उसको दो महीनोसे मियादी बुखार है, और मेरे पास इलाज करनेके लिए पैसे नहीं है..." और फिर वे एकाएक चुप हो गये थे। आँखे ऊपर उठाने की हिम्मत उनमें नही थी।

हुस्ना चुपचाप उस्तादजीके चेहरेकी ओर देखती रह गयी थी। वह उन्हें बचपनसे जानती थी। जब वे उसे हारमोनियम पर 'सा रे ग म' सिखाया करते थे और कहा करते थे कि एक दिन वह हिन्दुस्तानकी सबसे मशहूर गायिका बनेगी। आज भी जब कभी वह उस्तादजीकी उन बातोको याद करती है तो उसे हॅसी आने लगती है। आज उनके पास सलीमके इलाजके लिए पैसे नही है। वह सलीमको दुनियामे सबसे अधिक प्यार करते है। उसे पाल-पोसकर इतना बडा उन्होने ही किया है और उसके अलावा उनका दुनियामे और कौन है?

उसने अपने कमरेकी दीवारपर लगी आलमारी खोली। नीचेके खानेकी काम वाली एक संदूकड़ीमे से उसने सोनेके दो कगन निकाले और लौटकर उस्तादजीके हाथोमे थमा दिये थे।

उस्तादजी गहनोको देखकर चौक उठे थे। "नहीं-नहीं हुस्ना, ये मै नही लूँगा। मैने तो सोचा था कि पचास-साठ रुपये तुम उधार दे देती.. मै तुम्हारे गहने..।"

हुस्नाके चेहरेको देखकर कुछ अधिक कहने का साहस उन्हे नही हुआ। थोड़ी देर बाद वह स्वयं ही धीमे स्वरमे बोली—"रुपये मेरे पास नहीं हैं। अगर आपने ये कगन न लिये तो मै कभी आपको अपना मुँह नही दिखलाऊँगी..."

कभी-कभी कोई लकडी जलते समय चटाख-पटाख करने लगती थी। उस्तादजीकी फोटो देखते-देखते कब हुस्नाकी आँख लग गयी, उसका पता उसे नहीं चला। वह स्वप्न देखने लगी—वह एक गजल गा रही थी :

काम आख़िर जज़्बये बे-इख्तियार आ ही गया।
दिल कुछ इस सूरत पै तडपा, उनको प्यार आ ही गया॥

यह शेर उसे बहुत ही पसन्द था और वह अक्सर इसे गाया करती थी। पास ही उस्ताद जी बैठे तबला बजा रहे थे और जमालखाँकी उँगलियाँ सारगीके तारोपर मीढ़ दे रही थीं। उसकी गजल सुननेके लिए सामने लोगोकी बेतहाशा भीड़ थी, हजारो, लाखोकी तादादमें एक दूसरे से सटे बैठे थे। वे चुपचाप उसका गाना सुन रहे थे, कोई 'वाह वाह' नहीं कह रहा था। कमरा वही था, दीवारपर वही मुनीरका उमर-खय्यामका चित्र था। हिरनके सीग थे, शेरोंके मुँहवाली कुर्सी थी। तभी भीडमे उसे परिचित चेहरे दिखाई देने लगे। वे गफूर मियाँ थे और उनके पास ही टण्डन साहब थे—वे ध्यानसे आँखे फाड-फाड़कर

हुस्नाकी ओर देख रहे थे। उनके चेहरे गमगीन थे। गुस्सेसे तमतमा रहे थे। लेकिन आखिर यह भीड़ कहाँसे आयी? वह भीड़को देखकर घबड़ाने लगी और उसके माथेपर पसीनेकी बूँदे चमकने लगीं, उसकी आवाज़ काँप रही थी, लेकिन फिर भी वह गाती जा रही थी। एकाएक तबला और सारंगी एक धमाकेके साथ बन्द हो गये। उसने अपनी नजर फेरी तो उस्तादजी और जमालखाँ अपने स्थान पर नही थे। उसने भी गाना बन्द कर दिया। वह अकेली रह गयी थी। भीड़में से कुछ लोग जोर-जोर चिल्लाने लगे, कुछने एक आध पत्थर भी हुस्ना पर फेंका। उसने चीखना चाहा, लेकिन उसके मुँहसे कोई आवाज नहीं निकली। उसने महसूस किया, मानो कोई उसका गला दबा रहा हो।

"हुस्ना...हुस्ना.." शहीदन उसका कंधा पकड़ कर उसे हिला रही थी।

थोड़ी देर तक आँखे खोले हुस्ना अपने चारो ओर देखती रही, वह कहाँ है? उस भीडका क्या हुआ?

"हुस्ना, तुम्हें क्या हो गया है? सोते-सोते तू गाने लगती है। मै कल ही हकीमजी को बुला लाऊँगी। देख लेना, वे भी तुझे बाहर जाने की राय देंगे। हवा-पलटी तेरे लिए सबसे ज्यादा जरूरी है। ख़ुदा जाने क्या मंजूर है..." यह कह कर वह हुस्नाके घुटनेके पास बैठ गयी और उसने उसके कंबलमे अपने पाँव ढँक लिये। हुस्नाने कुछ नही कहा। वह चिमनीमे सुलगती लकडियोंकी ओर देखती रही। धीरे-धीरे स्वप्नकी दुनियासे उतर कर वह वास्तविकतामे आ रही थी। उसने अपने सिरमें दर्द महसूस किया, लेकिन शहीदनसे इस विषयमे उसने कुछ नही कहा, नही तो फिर वह कहती कि वह बीमार है। वह बहुत दिनोसे सोच रही थी कि कोनेमे पड़े उस तानपूरे, तबलेकी जोड़ी और

सारगीको इस कमरेसे उठाकर कही और रखवा देगी या किसीको दे देगी। यहाँ तो रोज इन पर धूल जमती जाती है और शहीदनने कभी इनके महत्त्वको नहीं जाना, लेकिन उस कोनेको खाली देखकर उसका दिल फट जायेगा। उसने कभी सिर्फ अपने ही लिए नही गाया और शायद भविष्यमें भी कभी गा नहीं सकेगी। बचपनमे उस्तादजीको खुश करनेके लिए मेहनत किया करती थी, रागोकी सरगमे तैयार किया करती थी और फिर ग़फूर मिया, टण्डन साहब, मिस्टर दर और महफिलके दूसरे लोगोंके लिए गाया। अगर वे उसके गानोकी दाद न देते, उसके एक-एक शेरपर दर्दसे उमड़ते सीनेको थाम न लेते, तो शायद कभी-कभी उसके गानोमें इतना सोज़ नहीं आ सकता था। वह शामसे ही सोचा करती थी कि आज कौन-सी गजल सुनायेगी, लेकिन हमेशा उसकी आँखोके सामने महफिलके लोगोकी मूर्तियाँ घूमा करती थीं। कौन किस शेरपर 'वाह वाह' करता है और कौन-सा शायर किसे सबसे ज्यादा पसन्द है। एक-एक शेर पर उसका दिल भी गहरे दर्द और कसकसे तडपने लगता था, लेकिन उसके दिलकी सारी तडपन उस संगीतके प्रेमियोके धडकते दिलोंके साथ सुरमें सुर मिलाकर ही उछला करती थी, अगर वे सब उसके सामने न बैठते या फिर उसके गानोका उनपर कोई असर नहीं होता तब वह कभी गा नहीं सकती थी।

"चाची, क्या अब भी पानी बरस रहा है?" हुस्नाने पूछा। शहीदन खिड़कीकी ओर देखती हुई बोली, "शायद अब बूँदा-बाँदी हो रही है। आज दिन भर पानी बरसता रहा है। सरदी भी बाहर बहुत बढ गयी है।"

कभी-कभी आसमानमें बिजली चमकनेसे कमरेकी दीवारें भी चमक उठती थीं। बादलोंका गरजना जारी था। तभी बाहर रेलकी लाइनोंपर गाडी छुक-छुक करती हुई भागी जा रही थी। उसका स्वर तेज होकर फिर

धीमा होता गया और अन्तमें बारिशकी बूँदोके 'टपाटप' मे विलीन हो गया। "सर्दियाँ मुझे गर्मियोकी बनिस्बत ज्यादा पसन्द है। गरम बिस्तरेमे लेटते ही मै अपने खयालोमें खो जाती हूँ, और आज तो कमरेमे आग भी जल रही है। सोनेसे पहले चिमनीमे और लकडियाँ डाल जाना चाची। जब तक मुझे नींद नहीं आती तब तक कमरेमे मै आगकी लपटोको देखना चाहती हूँ...और यह खिड़की भी खोल दो।" फिर थोडी देर तक वह छतकी ओर ताकती हुई कहने लगी—"टण्डन साहबको मसूरी बहुत पसन्द था। गर्मियाँ वहाँ बिताकर वे मुझे पहाडोके हाल बताया करते थे। वे बर्फ़से ढँकी पहाडोकी सफ़ेद चोटियाँ! वहाँ शहरो-जैसे पीपल और जामुनके पेड नही होते। वहाँ चीडके पेड़ोकी घनी डालियाँ होती है। और.."

तभी किसीने नीचे ज़ीनेका दरवाजा खटखटाया। हुस्ना बाते करते-करते चुप हो गयी। शहीदन भी अपने पैरोसे कम्बल हटाकर चौककर खडी हो गयी—"इस रातमे कौन दरवाजा खटखटा रहा है? मै नीचे जाकर देखती हूँ.." शहीदनने अपने डुपट्टेसे सिर अच्छी तरह ढँक लिया और बालोको हाथोसे सिरपर जमाती हुई नीचे उतर गयी।

हुस्ना चुपचाप उठ खडी हुई और धीरे-धीरे कदम बढाती हुई खिड़कीके पास जाकर खडी हो गई। उसने खिडकी खोल दी और हवाके साथ-साथ बारिशकी कुछ बूँदे भी उसके चेहरेपर आ टपकीं। हवासे उसके बाल उडने लगे। बाहर घुप अँधेरा था। सडकपर लगे बिजलीके खम्भोकी रोशनीमे गीली सडकपर बने हुए बारिशके छोटे-छोटे तालाब चमक रहे थे। दूकाने बन्द हो गई थीं। हसन मियाँकी दूकानमे भी अँधेरा था। दूर अँधेरेमे पुलके ऊपर बिजलीकी धुँधली रोशनी टिमटिमा रही थी।

शहीदन हाँफती हुई दौडी आयी और कमरेका दरवाजा जोरके झटकेके साथ खोलकर अन्दर घुसते ही चिल्लाकर बोली, "हुस्ना गजब, हो गया! ग़फ़ूर मियाँ अपने एक दोस्तके साथ तशरीफ लाये है। कहते

थे कि आज ही बम्बईसे यहाँ थोडे दिनोके लिए किसी कामसे आये है।" यह कहकर उसने कमरेकी बत्ती जला दी। हुस्ना खिडकीकी तरफ पीठ किये शहीदनकी ओर देख रही थी। गफूरमियाँके आनेकी खबरसे उसकी उदासीनतामे कोई अन्तर नहीं आया था। शहीदन उसके पास आकर कहने लगी, "मैने उन्हे नीचेकी बैठकमे बिठा दिया है; लेकिन बैठकमे मनो धूल जमा हो गई है। मुझे पहले पता होता तो मै उसकी सफाई कर देती। वे अपने मनमे क्या सोच रहे होगे?" फिर हुस्नाका कन्धा पकड-कर बोली—"तू तैयार हो जा, हुस्ना। वे तुझे बुला रहे है। तू अपने कपडे बदल ले। तुझे ऐसी हालतमे देखकर न जाने गफूर मियाँ क्या सोचने लगे। थोडी देरमे मै उन्हे यही ले आऊँगी.."

हुस्ना धीमे स्वरमे मानो अपने-आपसे ही कह रही थी, "गफूर मियाँ तशरीफ लाये है। इस अँधेरी बरसातमे.. क्यों? पाँच साल बाद वे क्यो मेरे दरवाजेपर आजके दिन आये है? नही, मै किसीसे नही मिलूँगी। मै उन पुराने दोस्तोमे से किसीसे भी मिलना नही चाहती। गफूर मियाँ से कह दो चाची, कि हुस्ना मर गयी.. उनसे कह दो कि उनकी हुस्नाको मरे पाँच साल बीत चुके है..."

शहीदनका मुँह आश्चर्यसे खुलाका खुला रह गया। बडी कठिनाईसे वह कुछ देर बाद बोल सकी, "तू क्या कह रही है हुस्ना? तू पागल हो गयी है। इन पाँच सालोमे मै जानती हूँ तूने कितनी बार गफूर मियाँको याद किया, उनकी बाते मुझसे करते कभी तेरी जुबान नहीं थकी।" और फिर हुस्नाके कन्धेको हिलाते हुए उसने तीव्र स्वरमे कहा. ."नही बेटी, यह नही हो सकता, चल, थोडा-सा क्रीम-पाउडर लगा ले, मै नये कपड़े निकाले देती हूँ।"

तभी कमरेका दरवाजा खुला और गफूर मियाँ दरवाजेके बीचमे दिखाई दिये। वे सफेद चूडीदार पैजामा और काली गरम शेरवानी पहने थे।

उनकी टोपीमें से उनके अधपके बाल दिखाई दे रहे थे। ठुड्डीके नीचे उनकी हल्की दाढी नजर आ रही थी; क्षण भर तक वे दरवाजेपर खड़े-खड़े हुस्नाकी ओर देखते रहे और फिर तेजीसे आगे बढ़कर उन्होंने हुस्नाका हाथ पकड लिया...“तुम्हे क्या हुआ है हुस्ना ? क्या तुम बीमार थी ? तुमने मुझे खत क्यों नही लिखा ? मेरे खतका कोई जवाब भी नही दिया ?”

हुस्ना चुपचाप कालीनकी ओर देखती रही। उसकी साँस जोर-जोर-से चलने लगी थी। वह महसूस कर रही थी कि अब शायद जोरसे बिजलीके कडकनेकी आवाज होगी और वह फर्शपर गिर पड़ेगी।

“जवाब दो हुस्ना, यह तुमने अपनी क्या हालत बना रक्खी है ?” हुस्नासे अधिक नहीं सहा गया। वह जोरसे रो पडी और गफूर मियाँसे लिपट गयी। उसकी सिसकियोमे बाहरकी टपाटप गुम हो गयी। गफूर मियाँ चुपचाप उसे अपने सीनेसे चिपटाये उसके बालोपर हाथ फेरते रहे। उनकी आँखे भी भर आयी थीं और गलेसे आवाज नही निकल रही थी। वे कमरेकी दीवारोकी ओर ताकते रहे, बिजलीकी रोशनीमे खिड़की-पर लगे धुँधले परदे, फटा कालीन, मैले कम्बल, खाली ड्रेसिंग टेबल, मेजपर रखे फूलदानमे कागजके फूल और धूलसे भरा तानपूरा, तबले, सारंगी देखकर उन्होने वास्तविकताका अनुमान लगानेकी कोशिश की।

थोड़ी देर बाद दोनो आगके पास बैठे थे। एक ही कम्बलमे दोनो के पैर घुटनो तक छिपे हुए थे। गफूर मियाँ सूनी आँखोसे ध्यानसे हुस्नाकी ओर देख रहे थे। वही चेहरा था, वही बडी-बड़ी काली आँखे और पतले होंठ, लम्बी-लम्बी उँगलियाँ और उनके लाल नाखून थे, लेकिन फिर भी वे किसी और चीजकी तलाश कर रहे थे, जो पहले हुस्ना मे थी और शायद अब नही है ..“मै तुम्हे इस तरह बरबाद नही होने दूँगा हुस्ना, मुझे कभी सपनेमे भी यह खयाल नही था कि तुम्हारी ऐसी

हालत हो गयी है। अगर मुझे पहले पता चल जाता तो कभीका तुम्हे बबई ले गया होता। तुमने मुझे भी गैर समझा हुस्ना, मुझे एक चिट्ठी तक नही लिखी। अगर मै अभी न आता तो मुझे तुम्हारे बारे मे कुछ भी पता नही चलता और तुम इसी तरह घुलती जाती.. मैने तुम्हे समझनेमें भूल की हुस्ना...” और फिर दृढ़ताके साथ कहा. “अभी कुछ नही बिगड़ा है। मै अभी चार-पॉच दिन तक यही हूँ। मै तुम्हे जबरदस्ती बंबई ले जाऊँगा। वहॉ तुम्हारा सारा इन्तजाम हो जायेगा.. ”

बाहर जोर की बारिश पड़ने लगी थी। खिडकीमेसे सरसराते, हवा के झोके अन्दर आ रहे थे। लेकिन दोनोमेसे किसीका ध्यान उस ओर नहीं था। शहीदन रसोईमे जल्दी-जल्दी चाय बनानेकी तैयारीमे लगी हुई थी।

“आज यह कमरा पहचाना भी नही जाता। कोई देखे तो यही समझेगा कि इसमे बरसोसे कोई नही रहता। मैने सोचा था कि वहॉ तुम्हारे गानो से जिदगी और जिंदगीका प्यार बिखर रहा होगा। लेकिन देखता हूॅ कि यहॉ मरघट-जैसा सन्नाटा है, जैसे यहॉ इन्सान नही, इन्सानोंके भूत बसते हो। तुम तो ऐसी नही थी हुस्ना! तुमने कभी कागज के नकली फूलोको पसन्द नही किया। तुम्हारे फूलदानमे हमेशा ताजे फूल सजे रहते थे। यह सब क्या हुआ?” गफूर मियॉने एक लम्बी सॉस ली और चिमनीमे जलती लकडियोकी लपटोकी तरफ देखने लगे। शहीदन चायकी ट्रे ले आयी। उसने दूरसे ही गफूर मियॉ और हुस्नाको इस तरह चुपचाप बैठे देखा मानो वे अभी तक एक दूसरेसे परिचित ही न हुए हो। हुस्ना और दिनोंसे भी ज्यादा गम्भीर दिखाई दे रही थी, उसकी ये ही अस्वाभाविक चौका देने वाली बाते शहीदनकी समझमे नही आती थी। गफूर मियॉके साथ वह हुस्नाके हॅसते

हुए होठोका इन्तजार कर रही थी। "गफूर मियॉ, क्या आपके दोस्त को चाय नीचे ही "

"अरे, मै तो शहरारको भूल ही गया था। वह अकेला नीचे बैठा मुझे कोस रहा होगा।" और फिर हुस्नाकी ओर देखते हुए गफूर मियॉ ने कहा, "मेरे साथ बम्बईसे एक दोस्त आये है हुस्ना! बम्बईमे फिल्मे बनाते है। बंबईमे मै हमेशा शहरारसे तुम्हारे गानोकी तारीफ किया करता था। शायद इस चर्चासे ही तुम्हारी याद मेरे दिलमे हमेशा ताजी बनी रहती थी। इस बार शहरारको भी मै अपने साथ ले आया। तुम्हारे गानेकी तारीफे सुनते-सुनते इस बार उन्होने तुम्हारा गाना सुननेका फैसला कर लिया और वे मेरे साथ यहॉ तक चले आये..."। हुस्ना को कुछ न बोलते देखकर गफूर मियॉने धीमी आवाजमे कहा... "लेकिन मै तुमसे गानेके लिए नही कहूँगा हुस्ना! तुमसे कुछ भी कहनेका मेरा मुँह नही है ..." हुस्नाने बहुत देर बाद अपनी झुकी नजरे ऊपर उठाई। गफूर मियॉ चाहते है कि वह गाना गाये और वह. .उसने तो हमेशा यही चाहा है कि कोई उसके सामने बैठ कर उससे कुछ गानेके लिए कहे और आज-जैसा मौका फिर नही आयेगा।

"मै गाऊँगी गफूर मियॉ..." उसने स्वय ही महसूस किया कि उसकी आवाजमे स्वाभाविकता आ गयी है और गफूर मियॉको अचानक अपने सामने पाकर धीरे-धीरे जो ज्वार-भाटा बढने लगा था, वह अब कम होता जा रहा है।

"ओह हुस्ना!.. " गफूर मियॉ चिल्ला उठे, "मै इन ऑखोको पहचानता हूॅ। मैने इन्हे जबसे देखा है तबसे इनमे ज्यादासे-ज्यादा डूबने की कोशिश करता रहा हूॅ। लेकिन जितना ही मै इनमें डूबा, इनकी

गहराई और भी गहरी होती रही और आज...आज तो उसकी कोई थाह नहीं है, कहीं किनारा दिखाई नहीं देता..."

हुस्ना थोडा-सा पहली बार मुसकरायी। उसने शहीदनकी ओर देखते हुए कहा, "इनके दोस्तको ऊपर बुला लो चाची."

शहीदनके चले जानेपर गफूर मियाँ खडे हो गये और हाथोंको बगलोंमें दबाकर कमरेका चक्कर लगाने लगे। कुछ देरके लिए वे खिड़कीके सामने भी जाकर खडे हुए, परन्तु बाहर उन्हें कुछ भी दिखाई नहीं दिया। फिर वे हुस्नाकी पीठकी ओर देखने लगे। हुस्नाके सिरपर दुपट्टा नहीं था। उसके बाल चोटीमें बँधे हुए थे और दोनो तरफ कानोंमें दो छोटी-छोटी सोनेकी बालियाँ दिखाई दे रही थी। वह घुटनोपर अपनी ठुड्डी टिकाये बैठी थी। दीवारपर लगा बडा-सा गोल घंटा टँगा था, जिसकी आवाज कमरेके सन्नाटेमें गूँज रही थी।

हुस्ना गा रही थी :

कई बार इसका दामन भर दिया हुस्ने दो आलम से।
मगर दिल है कि इसका खाना वीरानी नही जाती॥

उसके पास न उस्तादजी बैठे तबलेपर ठेके मार रहे थे और न ही जमाल खॉं सारंगी बजा रहे थे। लेकिन हुस्नाकी आवाज थी, धीमी लेकिन स्पष्ट आवाज, जो कमरेके सूनेपनको चीरती हुई सुनसान सोई रातमें उथल-पुथल मचा रही थी। हुस्ना धीरे-धीरे महसूस करने लगी कि वह अपने आपेमें नहीं है। किसी अँधेरी वीरान घाटीमें गुम होती जा रही है। गाते समय वह अपने हृदयकी आन्तरिक शक्तिको तीव्रतम महसूस कर रही थी, जैसी उसने पहले कभी नहीं की थी। उसे जान पड़ता था मानो उसके गलेसे निकलते एक-एक शेरमें उसकी जिंदगीकी सारी अनुभूतियाँ, सारी कशमकश, उसका सारा प्यार और दर्द बाहर निकलकर बह रहा हो। जिन अस्पष्ट और धुँधले विचारों और भावनाओंको वह

कभी शहीदनके सामने व्यक्त नही कर पायी थी, वे सबकी सब आज उसकी आवाजमें बडी आसानीके साथ बरसाती नालेकी भॉति बाहर निकल रही थी। उसकी सारी जिंदगी और जिदगीकी मान्यताऍ नंगी होकर उसके सामने खडी थी। उसे खयाल नही रहा कि सामने गफूर मियॉ और उनके दोस्त बैठे उसका गाना सुन रहे है। उसके गानेके साथ तबला या सारंगी नही बज रही है। यह उसका पुराना कमरा और चारों ओर उसकी दीवारे है। जिसकी हरएक चीजपर धूल जमी हुई है। उसकी आवाज कमरेमे से बाहर निकलकर हवाके झोको और बारिशकी बूॅदोके साथ मिलकर एक होती जा रही थी।

गजल समाप्त हो गई और सबने महसूस किया, मानो कोई लम्बी, आसानीसे न बीतनेवाली रात खत्म हो गयी हो। गफ़ूर मियॉने गानेके बाद कुछ नही कहा। उन्होने पीठ मोडकर चुपचाप रूमालसे ऑखे पोछ ली, हुस्नाके पिछले पॉच सालोकी कहानी स्पष्ट रूपमे उनके सामने उभरकर आ गई थी। किसीको पता नही चला कि कमरेके बन्द दरवाजेके पीछे बैठी शहीदन गजल सुनते-सुनते इतना रोई कि उसके दुपट्टेका सारा छोर भीग गया। उसे हैरानी हो रही थी कि उसकी बूढी ऑखोमे क्या अब भी इतना पानी है?

परन्तु शहरारको वास्तविक स्थितिका ज्ञान नही था। गफूर मियॉने यहॉ आनेसे पूर्व उसे हुस्नाके विषयमे बहुत-कुछ बतला दिया था, परन्तु यह कहानी पिछले कुछ क्षणोमे जिस नये मोड़पर मुड गयी थी, उसके विषयमे वह कुछ भी नही जानता था। उसने हुस्नाकी ओर देखकर कहा, "ओह, खुदाने क्या गला दिया है आपको..! मै सच कहता हूॅ कि ऐसा गाना जिंदगीमे मैने पहले कभी नहीं सुना। कितना ओज, कितना दर्द है आपकी आवाजमे! इसे म्यूजिक कहते है, जो तीरोकी तरह सीधा दिलको चीरता अन्दर पहुॅचता जाये..."

हुस्नाने कुछ नही कहा। उसके चेहरेपर परेशानीके चिह्न नही थे। वह शहरारकी तारीफ सुनकर उसकी ओर देखकर थोडा-सा मुसकराई।

शहरार फिर बोला, "शायद गफ़ूर मियॉने आपको बतला दिया होगा कि मै बम्बईमे फिल्मे बनाता हूॅ। लेकिन इतनी बडी फिल्मी दुनियामे एक भी ऐसा गानेवाला नही है, जो गानेके साथ अपना दिल बाहर निकाल सके, वे सबके-सब मशीनोकी तरह म्यूजिक डायरेक्टरके इशारेपर गाते है और म्यूजिक हिन्दुस्तानी फिल्मोकी जान होता है। अगर वह फेल हो गया तो समझो कि पिक्चर फ़ेल हो गई। इसीलिए मै हमेशा अच्छे गानेवालोकी तलाश किया करता हूॅ..." और थोडी देर तक ध्यानसे हुस्नाकी ओर देखते हुए वे धीमे स्वरमे कहने लगे—"अगर आप फिल्मो मे 'प्लेबैक' गाने लगे तो फिल्मी दुनियामे तहलका मच जायेगा। आपका नाम चन्द ही महीनोमे सारे हिन्दुस्तानमे फैल जायेगा, लोग आपके गाने सुनकर दीवाने हो जायेगे। बाजारो और गलियोमे लोग आपके गानोको गाया करेगे। एक-एक गानेके हजारो रुपये आपको मिलेगे।" और गफूर मियॉकी ओर देखकर उसने महसूस किया कि शायद वह जरूरतसे ज्यादा बाते कह गया है जो उसे एकदम नही कहनी चाहिए थी। लेकिन वह अपने उद्‌गारोको अधिक देर तक मनमे नहीं रख सकता था—वह वहॉ बैठे-बैठे उस दिनकी कल्पना करने लगा जब हुस्ना उसकी फिल्मोमे गायेगी और उसकी फिल्मे 'बाक्स आफिस हिट' बनने लगेगी। लोग उससे पूछेगे कि यह हुस्ना बेगम कौन है? हुस्ना शहरारकी बाते सुनकर चौक-सी गई, उसकी समझमे कुछ आया और कुछ खो गया। उसने गफूर मियॉकी ओर देखा, परन्तु वे चुप थे मानो शहरारकी बाते उन्होने नही सुनी थी। उनका बस चलता तो वे वहॉसे भाग जाते, इस कमरेकी दीवारो और वातावरणमे उन्हे अपना दम घुटता-सा जान पड रहा था।

"आपकी क्या राय है गफूर मियॉ? क्या हुस्ना बीबीके फिल्मोमे 'प्लेबैक'

गानेसे उनका नाम रोशन नही हो जायगा ? हुस्ना बीबीका म्यूजिक इस चहारदिवारीके अन्दर बन्द नही रहना चाहिए। वह दुनियाके लिए है, लोगोंके लिए है और आजकी दुनियामे फिल्मे ही आपकी आवाजको लाखो लोगो तक पहुँचा सकती है।"

थोडी देर बाद कल फिर मिलनेका वायदा करके शहरार पहले सीढियाँ उतर गया। उसका दिल और जोर-जोरसे उछल रहा था। उसे स्वप्नमे भी यह खयाल न था कि हुस्नाकी आवाज इतनी आकर्षक हो सकती है। गफूर मियाँ कुछ मिनटोंके लिए अकेलेमे हुस्नासे बाते करनेके लिए रुक गये। "हुस्ना, आज मै तुमसे न मिलता और तुम गजल न गातीं तो तुम्हारी जिदगीके जिस पहलूको मैने आज देखा है वह कभी नही देख सकता था। लेकिन नहीं..." एकाएक उन्होने हुस्नाका हाथ पकड़ लिया और उसकी आँखोंमे झाँकते हुए कहने लगे, "तुमने अपनी मनमानी इन पाँच सालोंमें बहुत की। अब मुझे अपना हाथ पकडने दो हुस्ना। मै तुम्हें अपने साथ बंबई ले जाऊँगा। यहाँ तुम्हे आखिरी साँसे गिननेके लिए नहीं छोड़ सकता। अभी तक दुनियाने तुम्हें तुम्हारी असली जगह नहीं दी। तुम्हारे गाने इस कमरेकी दीवारोसे टकराकर खो गये। लेकिन अब यह नहीं हो सकता।" उनकी आवाजमे एक दृढता थी, सकल्प था। हुस्ना मुसकराती हुई उनकी ओर देख रही थी—"जमानेके साथ तुमने आगे बढ़ना नही सीखा हुस्ना, तुम बरसोंसे वहींकी वहीं खडी हो। लेकिन आज तुम्हारे पैरोंके नीचेसे जमीन खिसक रही है और अगर तुम आगे नहीं बढीं तो एक दिन..."

"आप घबड़ा क्यो रहे है गफूर मियाँ? मैं आपके साथ बंबई चलूँगी। अभी तो आप चार-पाँच दिन यही है .." हुस्नाने अपने हाथोंसे उनका हाथ सहलाते हुए कहा।

"शहरारकी बात भी बुरी नही है। तुम्हारा हुनर दुनियाके लिए

है, चन्द लोगोके लिए नही। मै जानता हूँ, तुम्हे फिल्मे पसन्द नहीं है, लेकिन तुम्हे तो सिर्फ 'प्लेब्रैक' गाने ही गाने होगे। जैसे यहाँ गाती हो, जैसे पहले हम लोगोके सामने गाया करती थी.."

थोडी देर बाद गफूर मियाँ चले गये। वे हुस्नासे बबई चलनेकी योजना इस प्रकार बना रहे थे मानो शादीसे पहले कोई अपनी मगेतरसे शादीके बाद रगीन प्रोग्राम बनाता है और उसमे जितना सुख उसे मिलता है उतना शायद उन प्रोग्रामोको क्रियात्मक रूप देते समय उसे नही मिलता। हुस्ना चिमनीके पास ही बैठ गयी। लकडियोमे से आगकी लपटे निकलनी बन्द हो गई थी। कुछ देर तक हुस्नाकी विचार-शक्ति और चेतना लुप्त-सी हो गयी। वह गफूर मियाँ, शहरार, बबई, सबको भूल गयी। मानो उन सबका उसकी जिदगीसे कभी कोई सम्बन्ध न रहा हो। धीरे-धीरे उसका यह उन्माद खत्म हुआ और पिछले दो-ढाई घटोकी घटनाएँ स्वप्नकी भाँति उसकी आँखोके सामने घूमने लगी। शहरार कहते थे कि उसे फिल्मोमे 'प्लेबैक' गाना चाहिए। वह परदेके पीछेसे गाये और फिल्ममे एक्ट्रेस अपने होठ हिलाये। हुस्नाको हँसी आ गई। उसकी शोहरत होगी। उसे एक-एक गानेके हजारो रुपये मिलेगे, लोग हुस्नाके 'प्लेबैक' गानोकी चर्चा किया करेगे। सड़कोपर चलते हुए ताँगेवाले, बैलगाडियोवाले अपना लम्बा रास्ता काटनेके लिए उसके गानोको गुनगुनाया करेगे। सामने 'गुलजार रेस्तराँ'में लगे रेडियो से जिस तरह दूसरी फिल्मोके रेकार्ड बजते है उसी तरह मेरी आवाज भी लोग सुना करेगे। तो क्या मेरी पिछली जिंदगी झूठ थी? जिस पौधे को मैने इतने प्यारसे पाल-पोसकर इतना बडा किया, वह सब बेकार था? नहीं, झूठ नही था। मेरा एक रास्ता है और शहरारका दूसरा। मै अपना रास्ता छोडकर दूसरेके रास्तेपर नहीं चल सकती। और... गफूर मियाँ भी यही कहते थे। वे मुझे अपने साथ बबई ले जाना

चाहते है और अगर मैने मना किया तो वे जबरदस्ती ले जायेगे। उनके सामने मुझसे उनकी बात टाली नही जायगी। उनके सामने मै अपने-आपको एक कमजोर बच्चा समझ लेती हूँ, जो उँगली पकडकर चलता है। गफ़ूर मियाँको मेरी हालतपर तरस आ गया। मनमे शायद वह मेरी किस्मतपर रो भी रहे हों और वे भी मुझे 'प्लेबैक' सिंगर बनाकर मेरी किस्मत बदलना चाहते है। वह मुझे दुनियासे वह जगह दिलवाना चाहते है जो अभी तक मुझे नही मिल सकी है। वह हँसने लगी...कोई मुझे नही समझ सका...लोगोको मेरा गाना पसंद आता है क्योकि उसमे दर्द होता है, सोज होता है। लेकिन आखिर यह दर्द और सोज़ कहाँसे आया? इसका भी तो मेरी जिंदगी और मुझसे गहरा ताल्लुक है। लेकिन मेरी जिन्दगीसे किसीने प्यार नही किया। उसे समझनेकी किसीने कोशिश नही की। क्या 'प्लेबैक सिंगर' बननेमे मेरी आवाजमे वह दर्द रह सकेगा? क्या परदेके पीछेसे मै किसीको भी अपने गानोसे अपनी जिदगी और उसकी तडपनको समझा सकूँगी? गाने वाले और सुनने वालोके बीचमे बिना कोई रिश्ता जोड़े क्या कोई गायक लोगोके मनके तारोको छू सकता है? वे समझते है कि मुझे शोहरत प्यारी है। रुपयेका लालच वे मुझे देते है लेकिन क्या उनकी जरूरत कभी मैने महसूस की है?...नही, मै बम्बई नही जाऊँगी, मुझे 'प्लेबैक' गाने नही गाने है।

अगले दिन सुबह तडके ही शहीदनको जगाकर हुस्नाने उससे जल्दी-जल्दी सामान बाँधनेके लिए कहा—"तुम कही बाहर चलनेको कहती थी न चाची। तो चलो। मै जल्दीसे जल्दी इस शहरसे बाहर चली जाना चाहती हूँ जहाँ मुझे कोई न जानता हो, किसीको मेरे मकानका पता न मालूम हो। जल्दी करो चाची। हमे पहली गाड़ी ही पकड़नी है। किसी भी शहरके लिए.... ."

राय आनन्दकृष्ण

सुप्रसिद्ध कला-आलोचक और कला-मर्मज्ञ राय कृष्णदासके सुपुत्र राय आनदकृष्णको कहानियाँ लिखनेकी प्रेरणा कदाचित् अपने कथा-अनुरागी पितासे ही मिली। आपका जन्म बनारसमे हुआ और वहीं आपने शिक्षा पाई। एम०ए० मे प्रथम स्थान प्राप्त कर आजकल आप शोध-कार्यमे संलग्न है।

राय आनदकृष्णकी कहानियाँ यही निर्देश करती है कि कथाकारको सूत्र-रूपमे कथा कहना अच्छा लगता है। सक्षेपमे अपनी बात कहनेकी प्रवृत्ति सभी कहानियोमे पायी जाती है, किंतु उनकी विशिष्टता यही है कि सक्षिप्त होनेपर भी वे अपनेमे पूर्ण होती है। *आपके कथानक जीवनकी बहुत छोटी-छोटी-सी* घटनाओंसे उठाये हुए होते है।

अनेक कहानियाँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओमे छप चुकी है।

● माधवी और कर्णिकार

—राय आनन्दकृष्ण

मै उन दिनों शाकुन्तल पढ़ रहा था—"कः सहकारमन्तरेण ज्योत्स्ना-मल्लिकां सहेत, समुद्रमन्तरेण महानदीं कुत्र वा अवतरति।" सामने खिडकी के नीचे दूर तक एक पुराने मकानका खँडहर फैला था जिसके ईंट-पत्थर हटा दिये गये थे, केवल एक ढूह बच रहा था। प्रकृतिको केवल ईंट-चूनेका साम्राज्य नहीं भाता। उसे मिट्टीसे प्रेम है और वह ईंटकी दीवालमें भी मिट्टी खोजती है। उस मिट्टीके ढेरमे एक ओर पीपल, इमली और नीम, दूसरी ओर पारिजात, बेल इन सबने बीसो बरससे अपना साम्राज्य जमा रखा था।

बीचमे एक दिन मैंने देखा—उस दिनका मुझे भलीभाँति स्मरण है, एक कर्णिकार निकला है। उसके शैशव-कालमे ही लोगोने उसका रूप सराहा और भविष्यमे सुन्दर फूल पानेकी आशा की।

"कः सहकारमन्तरेण......"

आषाढ़मे अनजान बूटियोंके बीच माधवीने जन्म लिया। वर्षाकी फुहार और ठडी बयार पाकर वह विकसित होती गई।

कर्णिकारने उसे पता नही देखा या नही, पर मै, राजीवलोचन बी० ए०, अपनी खिड़कीपर बैठा एम०ए० के नोट तैयार करता और दोनों को देखता। परन्तु मै भूलता हूँ—कर्णिकारने उसे पहले ही देख लिया था क्योकि जब ठढी हवा चलती तब अपनी लम्बी डाले हिलाकर आमोद मनाता।

उन्हीं दिनो कही बाहर जाना पडा। महीने भरसे ऊपर बाहर रहनेके बाद लौटकर देखा—माधवी विस्तृत हो गयी, कर्णिकार नये पत्तोंसे ढँक गया है। कर्णिकार बड़ी आकुलताके साथ ही अपनी डाले हिला-हिला-

कर माधवीको बुलाता और माधवी जैसे अपना सिर हिला-हिलाकर कर्णिकारको हताश करती हुई कहती—'नहीं, नही।' तब कर्णिकार शिथिल होकर अपने सारे शरीरको झुका देता, उसकी सूखी पत्तियाँ गिर-गिरकर आँसूके समान बिखर जाती—ठीक उसी प्रकार जैसे शकुन्तलाके वियोगमे आश्रम-लताएँ अपने सूखे पत्ते-रूपी आँसू गिराती—और उसे विकल देखकर माधवी भी अपना मुँह फिरा लेती। कर्णिकार अपनेमे सोचता—'कः सहकारमन्तरेण . ' माधवी सहकारको ही खोजती है। वह निश्चय ठान लेता कि अब माधवीकी ओर आँख उठाकर देखूँगा भो नही—जाने दो उसे, मै अपनेमे ही क्या कम हूँ किसीसे ?

शरद बीत चुकी थी, मुझे कालेज जानेके लिए अब छतरीकी आवश्यकता न पडती। मै खिड़की खोलते ही देखता, सब कुछ सूना-सूना-सा है। जान पड़ता है माधवी और कर्णिकारमे कुछ कहा-सुनी हो गयी है। पर माधवीको तो कभी कुछ कहते सुना ही नही। "चलो कुछ होगा", मै निश्चय करता और विगत कलके लिये हुए नोट दूसरी कापी पर उतारने लगता।

पीछे बरामदेमे भाई साहब अपने मित्रोंमें बैठकर बाते करते, "ईंट इकट्ठी कर ली है, सीमेंट और लोहा मिल जाय तो सामनेके खँडहर पर एक छोटा फ्लैट बना लूँ, आजकल अच्छे किरायेपर उठ जायगा।"

मेरी लेखनी वही अटक जाती जैसे तेजीसे सीढी उतरते समय रेलिंगमें कपड़ा फँस जाने पर कोई रुक जाय। और, तब मै अपने मनमे उठती हुई अनेक उलझनोंको फँसे हुए कपडेकी भाँति सुलझाने बैठ जाता। कालेजकी नोटबुक सामने खुली पडी रह जाती। मै एक बार कर्णिकारकी ओर देखता और फिर भाई साहबके स्वभावपर विचार करता ... .फिर यह सोचकर सतोष कर लेता कि आजकल किसे सिमेंट मिला है ?

उधर दिन छोटे होने लगे थे। उठते-उठते ही कालेज जानेका समय हो जाता। कालेजसे लौटकर मै अपने अध्ययनमें प्रवृत्त होता ओर रात दो-दो, तीन-तीन तक बैठा लिखा करता अथवा पहले लिखे हुए निबन्धोंको दुहराया करता। परीक्षाकी तैयारीमे मै कर्णिकार, माधवी, भाई साहब, सिमेंट, लोहा, मकान सबको भूल चुका था। ठढी हवासे बचनेके लिए भाई साहब पहलेसे ही व्यवस्था कर रखते—मेरे टेबुलके बराबरकी खिडकी शामको अपने सामने बद करा देते, नहीं तो मै अल्हड आदमी, अपने स्वास्थ्यका खयाल न कर कही खिडकी खुली छोड़ पढता रहूँ और बादमे न्यूमोनियाँ, ब्रॉकाइटिस जैसी किसी बीमारीका शिकार बनूँ!

एक रविवारको दोपहरके समय खा-पीकर मै अपना साप्ताहिक पारायण पूरा करनेके निमित्त पाठ्य-पुस्तके लेकर बैठा। शकुन्तलाके पृष्ठ उलटते-उलटते दृष्टि जाकर जम गयी—"कः सहकार..... "

"ओह कर्णिकार", मैने सोचा, "तेरी कितने दिनो तक सुध भी न ली भाई मैने।"

तुरंत खिड़की खोली। खिलखिलाती धूप आकर मेरे पैरोपर पड गयी। सामने सुंदर कर्णिकार हवामे लहरा रहा था। माधवी उससे लिपटी हुई।

"बधाई भैया", मेरे मुँहसे उसी प्रकार निकल पडा जैसे मै अपने किसी सहपाठीसे कह रहा होऊँ, "मिठाई कब खिलाओगे?"

और अपने प्रश्नपर मै स्वय चौक उठा। कर्णिकार और मिठाई! देखा, कर्णिकार फूलोंसे लदा था, वह माधवीको पाकर झूम रहा था।

मैने अपनेको मनमे धिक्कारते हुए कहा—इतने दिनो तक ऐसे प्रियको भूला रहा। उसकी ओर नजर उठाकर भी न देखा। पर उसी समय अपना बचाव भी भीतरसे ओठों पर आ गया—तो मुझे उससे क्या? मेरे न देखते भी वह तो बढता ही जायगा, माधवीके साथ मिलकर नाचना क्या मेरे न देखनेसे उसने एक क्षण भी बंद किया?

वादीने व्यगके टोनमें उत्तर दिया, अच्छा ! सारा संसार तेरे लिए रुका रहे। यदि तुझे उसकी ओर देखना हो तो प्रकृतिके इस वरद पुत्रकी ओर देख ले। नही तो जैसे तुझे एम० ए० के नोट्स बनानेसे छुट्टी नही है वैसे उसे भी फलने, फूलने, नित पल्लवित होने से नही।

हॉ, कर्णिकार इस साल फूला था। सचमुच उसके लिए यह उक्ति सर्वथा समुचित है कि फूलके बोझसे वह दब जाता है।

पर मुझे इस सबके लिए छुट्टी कहॉ। एक पक्षके बाद एम० ए० की परीक्षा देनी है, मै परीक्षा शुरू होनेके पहले ही भलीभॉति कल्पना करने लगा कि परीक्षा समाप्त हो जानेके बाद अपनी पढाई, लिखाई, नोट्स, व्यस्तता, जिसमे खाना-पीना सब भूल जाता है, इन सबको कितनी तुच्छ दृष्टिसे देखूँगा। एकाएक न जाने किस अनजान शक्तिने इन विचारोकी ओरसे बलात् मेरा ध्यान हटाकर उन्ही अक्षरोकी लबी-लंबी पॉतो पर जमा दिया। बकरीके बच्चे दूध पीकर इधर-उधर क्रीडा करते है, पर जरा-सा खुटका होते ही मॉके थनसे लिपट जाते है।

अकालवृष्टिके ओलोंसे मार्चकी गर्मी और कर्णिकारके फूल गायब हो गये। बडे भाई साहबने मुझसे कहा "चलो जी, ठढक हो गयी। परीक्षा देकर दोपहरीमे लौटते समय तुम्हे धूप न लगेगी।"

मै विनयसे नत हो जाता, कुछ उत्तर न देता। केवल कर्णिकारकी ओर देखता तो मुझे अपनी छोटी बहनके झुलसे मुखका स्मरण आ जाता जिसके कपडोंने दीवाली पर दीपक रखते समय आग पकड ली थी। कर्णिकारका रूप बिलकुल उसी जैसा हो गया था।

उस दिन तीसरा पर्चा बहुत अच्छा हुआ। भाई साहबने आते ही अभ्यासवश पूछा—"कैसा परचा रहा ?"

"आपके आशीर्वादसे यदि दो-एक ऐसे ही अच्छे बन गये तो"... हर्षके मारे मेरा गला रुँध रहा था, "तो प्रथम आना निश्चित है।"

"आज अच्छा ही अच्छा सुननेको मिल रहा है, आज बड़े सौभाग्यका दिन है।" मेरी ओर उन्होने इस दृष्टिसे देखा जैसे मै अन्य शुभ बातोके लिए पूछूँ और तब वे उन्हे सुनाये। पर अधिक रुकना उनके लिए सभव न था। उन्होने कहा, "आज इतनी प्रतीक्षाके बाद सिमेट और लोहेका परमिट आ गया और मैने काम लगवा दिया है।"

मैने उत्साहसे खिड़की खोलकर नीचे देखा तो पाया, मजदूरोका एक झुड पेड़ोको काटनेमें लगा है। इमली कट चुकी है, नीमकी बारी है। और कर्णिकार, वह माधवीसे लिपटा हुआ भूलुठित पडा है।

मेरे मुँहसे अचानक निकल पडा, "कर्णिकार......माधवी"—

पीछे भाई साहबके ही मुँहसे सुना कि मजदूरोंने बेल और पीपल काटनेसे इनकार कर दिया। फलस्वरूप उन्हे नये फ्लैटकी लम्बाई-चौडाईमे बडी कमी कर देनी पडी। किंतु कर्णिकार—माधवी—?

कृष्णकिशोर श्रीवास्तव

बत्तीस वर्षीय कृष्णकिशोर श्रीवास्तवकी मान्यता है कि जीवनमे 'कुछ न कुछ' 'उछालना' अवश्य चाहिए, और वह भी इतनी गम्भीरतासे कि सब लोग उस ओर सजीदगीसे आकर्षित हो जाये। कदाचित् यही कारण था कि कृष्णकिशोर श्रीवास्तवने अपना उपनाम 'शेष' रखकर गणितके सिद्धान्तोपर कहानियाँ लिखी। कदाचित् यही कारण है कि भौतिक-शास्त्रमे एम० एस-सी०की डिग्री लेकर उन्होंने 'साहित्यरत्न' की परीक्षा पास की और अब 'हिन्दी-साहित्यपर भौतिक विज्ञानका प्रभाव' विषयपर अनुसधान कर रहे है। सम्प्रति नागपुर विश्वविद्यालयके प्रकाशन-अधिकारी है और डटकर हास्य व व्यग्यके नाटक लिख रहे है, जो रेडियो और रगमच, दोनो जगह, समानरूपसे लोकप्रिय हुए है।

अपनी कहानियोमे कृष्णकिशोर श्रीवास्तवने यही चेष्टा की है कि उन्हे पढ़ते समय पाठकको घुँघरुओंके बजनेका आभास हो। और उन कहानियोंके विषयमे सोचते समय पाठकको यही लगे कि—गणित हमारे जीवनका अविभाज्य अग है, हमारे जीवनके समस्त सत्य गणितके सिद्धान्तोके अन्तर्गत आ जाते है। प्रस्तुत कहानीमे आपने सिद्ध करनेकी चेष्टा की है कि आनन्द = जीवन/इच्छाएँ, अपनी एक दूसरी कहानीमे आपने सिद्ध किया है कि प्रेम = वियोग + सुख। पाठक यदि साहित्य और गणितके इस लॉजिकल सम्मिश्रणसे प्रमुदित होगे तो कृष्णकिशोरजीको प्रसन्नता ही होगी। उन्हे वास्तवमे पाठकोकी प्रसन्नता ही अभीष्ट है।

आपके एकाकी नाटकोका एक सग्रह 'रेखाएँ' और तीन अङ्कोका एक नाटक 'नाटकका नाटक' प्रकाशित हो चुका है। रेडियो रूपकोका सग्रह 'मछलीके आँसू' और रगमच-नाटकोका सकलन 'आस्तीनके साँप' यत्रस्थ है।

• आनन्द

—कृष्णकिशोर श्रीवास्तव

'जीवन मृत्युकी शय्या है, अथवा मृत्यु जीवनकी पूर्णता?' नीलेश कुछ निर्णय न कर पाया। वह मौनमें खोया था। उपेक्षित हृदय अपनी चिर साधना तथा अनुभूतियोंके मथनका फल उसके समक्ष प्रस्तुत कर रहा था—'जीवन तो आनन्द और इच्छाओंका संतुलित सामंजस्य है।'

विचारमग्न नीलेश आसन छोड़ उठ खड़ा हुआ। मस्तिष्कमें विचारों का अंधड़ उमड़ रहा था। कमरेके फर्शको वह रौंदने लगा। कुछ क्षणोंके बाद उसने वातायनसे झाँका—प्रहरीसे वृक्ष, फिर भूरे केशोंमें माँग-सी पगडंडी, श्वेत सिकतामें उसका अवसान, सिकतासे लिपटा सरिताका कूल—नीरव और निर्जन! सरितामें डूबता-उतराता राकेश!...सौंदर्य समेट दृष्टि लौटी! नेत्र ऊपर उठे। राकेशमें ज्योत्स्ना, ज्योत्स्नामें राकेश! उनके मिलन-गीत गाती नीलिमामयी नीहारिकाएँ—हाँ, नीहारिकाएँ पीडित आकाशकी अनन्त आशाएँ!

नीलेशके नेत्र ज्योत्स्नाका आँचल पकड़ राकेश तक कई बार पहुँचे और लौटे। नीलेशको लगा—ज्योत्स्ना जीवन, राकेश मृत्यु! जीवनमें मृत्यु, मृत्युमें जीवन? वह जीवनमें होकर मृत्युमें पहुँचा। मृत्युसे जीवनमें होकर लौट आया। तभी उस साधकका ज्ञान चिल्ला पडा—'जीवन पथ है, मृत्यु लक्ष्य।', विजय गर्वमें राकेशको चुनौती देते वह मुसकराया। हृदयने दबे स्वरमें फिर कहा—"आनन्द एवं इच्छाओंका एकीकरण ही जीवन है।"

वह अपने आसनपर आ बैठा। स्मरण हो आया कि उसे प्रधान अमात्यके गणित-सम्बन्धी कुछ प्रश्नोंपर विचार करना है। दार्शनिक तर्कके पश्चात् वह गणितकी तल्लीनतामें डूब गया। विपरीत रीतियोंके संघर्ष तथा

विभिन्न सख्याओंके समीकरण सुलझाते-सुलझाते हृदयकी वाणीकी प्रति-ध्वनियोंकी प्रेरणासे उसने विचारा—'क्या जीवन, उसके आनन्द तथा उसकी इच्छाओमे कोई निश्चित सम्बन्ध नही ?'

अमात्यके प्रश्न अधूरे रह गये। विचारधाराने दिशा बदल दी। गणित की संख्याओमे दर्शनके तर्क बॉधने वह उद्यत हो उठा।

× × ×

नीलेश तक्षशिलाका छात्र था। एक अनाथ बालककी भाँति उसने विद्यापीठमे प्रवेश किया था। सबकी सहानुभूतिका आधार था वह। रुचिके अनुसार उसने दर्शन एवं गणित शास्त्रोका मनन एव अध्ययन किया था। उसकी सफलता आयु एव अनुभवके साथ बढती ही गयी और अध्यापकोकी सहानुभूति स्नेहमे परिणत होती गयी। सेवा उसका व्रत था और स्नेह उपहार। अध्ययन जीवनको गति दे रहा था—अध्ययन अनुभव और मनन बुद्धिके ससर्गमे विकसित हो रहा था।

इच्छाएँ उसकी सीमित थीं और सीमित था आनन्द। पिताका प्यार उसके लिए कल्पनाकी वस्तु था। जब कपोती कोटरमे अपने नन्हेको दाना चुगाती अथवा जब मृत शिशुको पेटसे कई दिनो तक चिपटाये वानरी अपने असभ्य स्वरमें चीखती-पुकारती-रोती, तब माताके स्नेहका भी वह अनुमान कर लेता।

उसे बताया गया था कि उसकी माता उसके जन्मके दूसरे ही क्षण सदैवके लिए अपना स्नेह बटोरे, अपनी ममता समेटे उससे दूर हो गयी थी। उस स्मृतिमें अपने जन्म-दिवसपर वह हँसता और आँसू बहाता। हास्य-रुदन-पूर्ण वास्तविक जीवन उसका वर्षमे केवल एक बार हो पाता।

इस जीवनकी वास्तविकताका तेइसवॉ अवसर समीप था कि उसे एक दिन सदेश मिला—'उसका पुस्तकीय अध्ययन समाप्त हुआ।' उसने सोचा, अब जीवनका अध्ययन वह प्रारम्भ करेगा। दूसरा सदेश मिला—

'वह स्वतत्र हुआ। अब उसकी जीविकाका भार उसीपर होगा।' वह सहमा। जीवनमे जीविकाका प्रश्न समस्याका रूप लेकर प्रथम बार उसके सामने आया। कुछ क्षणोकी तल्लीनता तथा तर्क-जनित चिन्ताके पश्चात् उसके मुखसे निकला—"चिन्ताओका समूह ही तो जीवन है।" वह हँस पडा, जैसे उसने सब कुछ पा लिया हो।

कुछ समय पश्चात् ही गुरुजनोके आशीष एव साधनोके फल स्वरूप कोशल राज्य की वेधशालामें गणितसम्बन्धी प्रश्नोके लिए वह नियुक्त किया गया। अपनी विलक्षण प्रतिभाके कारण कुछ ही दिनोमे वह प्रजा-पतिके निकट सम्पर्कमे पहुँच गया। बूढ़े प्रधान अमात्य उसे पुत्रतुल्य समझते। युवक नरेश कभी बन्धु, कभी मित्र कहकर सम्बोधित करते। वह गद्गद् हो जाता। गणितसे राज्यमे आया था, दर्शनसे राज्यके हृदयो पर राज्य करने लगा। गणित उसकी जीविका बना था, दर्शन उसके जीवनका लक्ष्य था—आनन्द था।

× × ×

उत्सवोके लिए कोशल सदासे प्रसिद्ध है। भिन्न-भिन्न ऋतुओमे वहाँ भिन्न प्रकारके उत्सव होते और अनेक आमोद-प्रमोदके साधन एकत्र किये जाते। उनके मध्य कोशलाधीश प्रजा-हित की कुछ बाते कहते! प्रजाजन अपने कलाविद् प्रतिनिधियोका आधार ले अपनी कामनाएँ अपने पालक की पलकोमे सुला देते। ऐसे उत्सवोमे वसन्तका उत्सव सर्वश्रेष्ठ था। बाल-रवि की प्रथम रश्मि जब तुहिन-बिन्दुओको समेटती, पुष्पोका चुम्बन करती, तभी कार्यक्रम प्रारम्भ होता। इसमे खेल-कूद, अश्वारोहण, वेधवाण मुख्य थे। मध्याह्नमे उत्सव विश्राम करता, सध्याको रंगमच ऐश्वर्य पाता। नृत्य, रूपक आदि देख प्रजा 'धन्य धन्य' पुकार उठती। जब स्वर्णिम परिमल अपने अकमे अधिक शीत बाँध लाता तब उत्सव सिहरकर समाप्त हो जाता। कितने ही लोग पुरस्कार पाते। कितने अपनी कामना-पूर्तिका आश्वासन पाते।

इस वसन्त उत्सवमें नीलेशको अमात्योंके समकक्ष आसन मिला था। उत्सवकी समाप्तिपर अन्य उच्च राज-कर्मचारियोंके साथ वह भी राज-भवनमें भोजनार्थ आमन्त्रित था। अपने-आपमें सकुचाता-सा नीलेश भाग्य सराह रहा था।

भोजके उपरान्त प्रबन्धकने क्षमा-याचना की—"नर्त्तकी नीहारिका अचानक अस्वस्थ हो जानेके कारण आज उपस्थित न हो सकी। वह लज्जित है।"

कोशलाधीशने कहा, "मित्र नीलेश, दुर्भाग्य! अतृप्त रह गये तुम्हारे नेत्र। नूपुरोंके स्वरमें बँधकर तुम रसमय न हो पाये। मुझे खेद है।"

"देवके अनुग्रह एवं स्नेहने मुझे रस-सागरमें बोर दिया। दयामय, यह कामना तो होलिकोत्सवमें भी पूर्ण हो सकेगी।"

प्रजापतिने मुसकानमें हर्ष प्रकट किया। तत्पश्चात् कवि 'निर्झर' ने 'जीवन' पर कुछ छंद पढ़े। सबने उसकी भाव-प्रौढ़ता एवं कल्पनाकी नवीनताको सराहा। नीलेशने प्रश्न किया, "जीवनको कविने पूर्ण माना है। फिर मृत्युके हिमानी अंकका प्रयोजन?"

"तर्क रसका विश्लेषण कर उसके उन्मादका विनाश कर देगा नीलेश! इसे स्थगित कर दो।" प्रधान अमात्यने कहा।

नीलेशका सिर नत हो गया। प्रजापतिने विसर्जनकी आज्ञा दी।

उस रात नीलेश सो न सका। वह जागता रहा। जीवनपर वह विचार करता रहा। वसन्तोत्सवका शृंगार उसके तर्कसे पीला पड़ रहा था।

× × ×

कृष्ण पक्ष प्रारम्भ हो चुका था। इस तिमिरमें नीलेशके मस्तिष्कमें गणितका प्रकाश अधिक आ घुसा था। जिज्ञासाके कारण वह ग्रहोंकी गति पर विचार करना चाहता था। वेधशालामें एक प्रहर रात्रि गये नीलेश दूरदर्शक यंत्र लगाये आकाशमें घूम रहा था। ग्रहोंके बाह्य रूप-रंगमें

उसे स्पष्ट भेद दीख रहा था। वह आनन्दमग्न था। नीलेश यह भेद अपने सहायकको भी दिखाना चाहता था। प्रसन्नताका भार अकेले कैसे वहन करता? कुछ सोच यंत्रको स्थानान्तरित कर उसने पुकारा—"पुष्कर! बन्धु पुष्कर!"

"आज्ञा।"

"मैने यंत्र स्थानान्तरित कर दिया है। कल बतलाये हुए ग्रहको उसके नाभिस्थानमे लाओ तो कुछ नवीनता दिखाऊँ।"

पुष्कर कुछ देर यत्रको हिला-डुलाकर बोला, "स्वामी, अवलोकन कीजिए।"

नीलेश यत्रमें देखकर बोला, "पुष्कर, अभी तक तुम्हें ग्रह तथा नीहारिकाओमे भेद नही ज्ञात हुआ! खेद!"

"स्वामी, नीहारिका तो कोशल राज्यमे है। गगन-मंडलमें कहाँ?" नीलेशकी सहृदयताका लाभ उठाकर पुष्कर बोला।

"नीहारिका!"

"हॉ स्वामी। वह नर्त्तकी नीहारिका। इन अनन्त नीहारिकाओके सम्मिलित सौदर्यसे बढकर सौदर्य समेटे। इनके नर्त्तनसे अधिक उन्माद अपने नुपूरोमे बॉधे और इनसे हमारे अधिक समीप रहनेवाली नर्त्तकी नीहारिका।" और पुष्कर अपने स्वामीकी मुद्राका निरीक्षण करने लगा।

नीलेश चित्रलिखित-सा खडा रह गया। भोज-दिवसके प्रजापतिके शब्द उसे स्मरण आये। फिर सॅभलकर बोला, "पुष्कर, मुझे गगनपर रहने दो। धरापर सम्भवतः मुझे सुख नहीं मिल सकेगा।"

कार्य स्थगित हो गया। नीलेश वेधशालासे लगे अपने गृहकी ओर चला। उसने विचारा—क्या नीहारिका वास्तवमे ऐसी है? अवलोकन करूँ उसका भी? दूरदर्शक यंत्रसे अथवा सूक्ष्मदर्शक यत्रसे? फिर वह स्वय ही हॅस पडा।

दिन अपनी कालिमा लिये हँसने को उतावले भाग रहे थे। नीलेश उनकी दौडमें प्रायः नीहारिकाके विषयमे कुछ न कुछ सुन लेता। उसका मानव-मस्तिष्क, उसका सजल हृदय अब इच्छाएँ पालने लगा। दूरसे नही, समीपसे—जहाँसे नूपुरोंकी ध्वनि सुन सके और उसकी भाव-भगिमा देख सके, वहाँसे—वह नीहारिकाको देखना चाहता था। नीलेश अनुभव कर रहा था कि उसके स्थायी जीवनका आनन्द घट रहा है। इच्छाएँ बढ रही है। पर वह विवश था, क्योंकि मानव था।

× × ×

अग्निज्वाल चद्रके चुम्बनार्थ ऊपर उठ रही थी। ज्वालकी उसासे अपनी असमर्थतामे विलीन हो रही थीं। चद्र उसके हृदयकी इच्छाओंका अनुमान कर अपने इदु-करोंसे शीतलता प्रदान कर रहा था। ससार कह रहा था—"यह होलिकाकी ज्वाल, वह पूर्णिमाका चद्र।"

समीप ही उद्यानमे कोशलाधीश राज्यके प्रमुख कर्मचारियो सहित नीहारिकाके नृत्यमे खो जानेको उतावले हो रहे थे। वातावरण शान्त था। एकत्र व्यक्ति अशान्त। पक्षियोंके शब्द कभी-कभी शान्ति भग करते। नीलेश कहता, "दयामय। पक्षियोंके भी हृदय होता है।" अधिपति मुसकानमें नीलेशकी बात मान लेते।

प्रबन्धकने सूचना दी और नूपुरोंके जीवनमे क्रान्ति मचाती नीहारिका रगमचपर थिरक पड़ी। मचल पड़े दर्शकोंके हृदय। वाद्योंकी ध्वनिमे पग-पायलोंकी रुनझुन-रुनझुनमें जिज्ञासा, कौतूहल, आनन्द, प्रशसा—टकरा-टकराकर बिखरने लगे। रगमच पुष्पोंसे ढक गया और नीलेश एक अनोखी अनुभूतिसे, जो उसके लिए सर्वथा नवीन थी। लयके आरोह-अवरोहमें वह डूबता और उतराता, रुनझुनमे वह मुसकराता और नर्त्तकीकी मुद्राओंमें वह खो जाता। इच्छा थी, नृत्य ही जीवन बन जाय।

यौवनकी अन्तिम उसाँस-सा नृत्य समाप्त हुआ। करतल ध्वनिके तुमुल कोलाहलमे प्रशसाके शब्द भटकने लगे, जिनमेसे कुछ ही नीहारिका तक पहुँच पाये।

"मेरा कथन असत्य तो नही था नीलेश ?"

नीलेश तन्मयतासे जागा, "सर्वथा सत्य था दयामय! मैं विचार रहा था, हमारा जीवन भी तो ऐसी ही तन्मयतासे ओत-प्रोत इच्छाओका नृत्य देखता है—आनन्दके लिए।"

"तो आओ, इस जीवनको इच्छाओसे मिला दूँ—आनन्दके लिए।" अधिपतिका विनोद अधरोसे झाँक उठा।

प्रजापतिके आगमनकी सूचना पा नीहारिका यवनिका हटा सामने आ गयी। सौदर्य और कलाने सम्मिलित भावसे नत होकर वैभवको प्रणाम किया।

"ये नीलेश है। हमारे कर्मचारी। दर्शनके पडित, गणितके विद्वान् और कोशलकी वेधशालाके अध्यक्ष। तुम्हारी प्रशसा किया चाहते है।" प्रजापतिने परिचय दिया।

"एक प्रशसनीयसे अपनी प्रशसा सुन मैं कही बावली न हो जाऊँ महाराज!"

"कदापि नही देवी। प्रशसा तो इच्छा-विशेषका व्यक्तीकरण है। इच्छाएँ दबकर विकार करती है।" नीलेश बोला। उसके विचार डगमगा गये थे।

नर्त्तकी उसे देखती रही। नेत्रोसे श्रद्धाञ्जलि उँडेल बोली, "कल मेरा आतिथ्य स्वीकार कीजिये। कृतार्थ होऊँगी। पावन चरणोके स्पर्शसे मेरा निवास धन्य हो उठेगा।"

नीलेश विचारमग्न हो गया। उत्तर देना चाहता था, पर न दे पाया।

"नीहारिके ! नीलेश कल तेरा अतिथि होगा ।" प्रजापतिने कहा । नीलेशने एक-एककर उन दोनोकी ओर देखा । वैभवका प्रभाव, सौन्दर्यका आकर्षण ।

× × ×

गोधूलिके पश्चात् नीलेश नीहारिकाके निवास-स्थान पर पहुँचा । वह स्वागतार्थ प्रतीक्षामे खडी थी । सम्मान, सहृदयता एव निकटताने उसे उस सौन्दर्यका और भक्त बना दिया । नीहारिका आज नीलेशके ज्ञानको अपनी कलासे तौलना चाहती थी । इसी कारण भोजनके उपरान्त नृत्यकी व्यवस्था हुई । नीलेशकी इच्छाने हृदय गुदगुदाया । अपना स्वप्निल सौंदर्य लिये, रत्न-आभूषणोसे सुसज्जित पायलोके शब्द करती, उस एकाकी कक्षमें मदिराकी मादकता-सी वह छा गयी । नीलेश देखता रहा—उसी प्रकार जैसे शैशव अपना स्थान ले लेने वाले यौवनकी क्रीडा निहारता है ।

नृत्य-समाप्तिपर नीलेशने कहा, "देवी, नूपुर तुम्हारे चरणोंसे लिपटकर अमर हुए । मुद्राऍ तुममे बॅध असीम बन गयी ।"

नीहारिकाने नेत्रोकी मूक भाषामे आभार माना । वह समीप आ बैठी। नीलेश सकुचाया, ज्ञान सहमा भाल भूमिकी ओर झुक गया ।

नीहारिकाने प्रश्न किया, ज्ञान और कलामे क्या भेद है ?'

"ज्ञान मस्तिष्क का उन्माद है और कला हृदयकी पीर ।"

"इनका लक्ष्य क्या है ?"

"दोनोका लक्ष्य आनन्द है ।"

"आनन्द क्या है ?"

नीलेश रुक गया । एक क्षण बाद उसने कहा, "देवी, इसका उत्तर कुछ दिनों बाद दे सकूँगा ।"

नीलेश आज्ञा ले चल दिया । परिवाका चन्द्र कुछ खोकर नीलेशको अपनानेका प्रयत्न कर रहा था ।

× × ×

नीलेश अनुभव कर रहा था कि उसकी इच्छाएँ बढ़ रही है। वह प्रतिदिन चाहता कि नीहारिकाका नृत्य देखे। बहुधा समय खोज, बहाना ढूँढ पहुँच जाता। नीहारिका समझ जाती। ज्ञान और कला मिल बैठते। हृदय और मस्तिष्कमे समझौता होने लगता। वृक्षकी कटी डाल-सी नीलेशकी इच्छाएँ अनेक मार्ग खोज पनपने लगी। इच्छा-पूर्त्ति न होनेपर उसे दुःख होता। आनन्द उसे दूर भागता दिखायी देता। वह सोचता—"मै वही नीलेश। वही मेरा जीवन। फिर केवल इच्छाओके आधिक्यपर आनन्दकी यह न्यूनता क्यो ?"

जब हृदय इन संघर्षोंमे लय हो जाता, तब दर्शन गणितकी आड़ ले कहता—जीवनमे इच्छाओ और आनन्दका निश्चित सम्बन्ध है। इच्छाएँ बढकर आनन्द घटा देती है। नीलेश वास्तविकतासे उठ कल्पनामे खो जाता।

नीहारिका नीलेशके ज्ञानपर मुग्ध थी। नीलेश उसकी कलाका भक्त था। दोनो आराधक थे, आराध्य थे। साधक थे, साध्य थे। आराधना और साधना इच्छाओका परिणाम था।

समय समझौतेमे बीत रहा था। अचानक नीहारिकाको कुछ समयके लिए कोशल छोडना पडा। अश्रुओमें वह विदा हुई। आहोमे नीलेशने यह देखा। नीहारिकाकी उपस्थितिमे उसकी इच्छाएँ बढती रही। आनन्द घटता रहा। वह एक अज्ञात वेदनाका अनुभव करने लगा। अनुसन्धान-कार्यमे उसने मन लगानेकी चेष्टा की, किन्तु असफल रहा।

उस दिन दूरदर्शक यन्त्र ग्रहकी ओर नही निहार रहा था। उसकी दृष्टि कही और थी। पुष्करको आश्चर्य हो रहा था, "स्वामी, आपसे यह भूल !"

"नही पुष्कर, ग्रहोका गृह क्या झाँकूँ ? मै तो नीहारिकाओंकी तुलनामें लीन हूँ।" नीलेश वेधशालाके ऊपरी खडसे शून्यमें ताक रहा था। फिर न जाने किस मानसिक भारसे दबकर उसने नेत्र मूँद लिये।

पुष्कर देख रहा था अपने प्रधान को, उसकी दशाको। "अन्नानक" पुष्कर चिल्ला उठा। नीलेश उस खण्डसे लुढककर दूसरे खण्डपर जा गिरा था। पुष्कर घबराकर उस खण्डपर पहुँचा। अचेत नीलेशका रक्त-रंजित शीश देख वह चिल्लाया। नगर-निवासी दौडे। प्रजाको, प्रजापतिको दुःख हुआ।

राज्यवैद्यके निरीक्षणमे नीलेशका उपचार आरम्भ हुआ। दूसरे दिन सन्ध्याको नीलेशने नेत्र खोले। स्नेही सामने खडे थे। उसने सूखे अधरो की मुसकानसे उनका आभार माना। राज्यवैद्यने कहा, "शीघ्र ही आप स्वस्थ हो जायँगे।" स्नेहियोने उनका साथ दिया। नीलेश मुसकराकर शान्त हो गया।

प्रातः सेवकसे नीलेशने प्रश्न किया, "नीहारिका नही आई?"

"नही स्वामी। समाचार मिला है कि शीघ्र ही आयेगी। आपकी इस दुर्घटनाका समाचार उन तक पहुँच चुका है।"

नीलेश चुप हो गया। सन्ध्याको प्रजापति भी आये। नीलेशने फिर वही प्रश्न किया। सन्तोषजनक उत्तर पाकर भी उसे शान्ति न हुई। कहा, "दयामय, कामना थी कि जीवनकी समाप्तिके पूर्व उसके प्रश्नका उत्तर दे दूँ।"

नीलेश प्रतीक्षामे सासे गिन रहा था। उसकी दशा बिगड रही थी।

लगभग एक सप्ताह पश्चात् नीहारिका निर्झर-सी उपचारगृहमें गिरकर कराह पडी। नीलेशके अधरोपर मुसकानकी रेखा खिंच गई, "आ गई देवी। कामना थी तुम्हारे दर्शनोकी। चाहता था तुम्हारे प्रश्नका उत्तर देता जाऊँ।"

"ऐसा न कहो देव! मेरी इच्छाओका क्या होगा?" वह बिलख पडी।

नीलेश कुछ क्षण मौन रहा, फिर शक्ति समेट बोला, "देवी, उत्तर देने दो। विलम्ब हो रहा है। तुमने आनन्दका परिचय चाहा था न! आनन्द एव इच्छाओंका गुणनफल ही जीवन है। अथवा यों कहो कि जीवन भाज्य, इच्छाएँ भाजक और आनन्द भजनफल है। स्थायी जीवन में इच्छाओंका आधिक्य आनन्दकी न्यूनताका द्योतक है। बस अब विदा दो...... ..."

"नहीं देव, मुझे आज्ञा दो। आज मै उस देवालयकी पाषाण-प्रतिमा की सहृदयताकी परीक्षा लूँगी। मृत्युपर्यंन्त उसके समक्ष नृत्य करूँगी। सम्भव है वह मेरी सुन ले।"

नीलेश मुसकराया। नीहारिका बावली हो देव-मन्दिरकी ओर भागी। राज्यवैद्यने औषधका पात्र उठाया और कहा, "ग्रहण करो नीलेश!"

"पूज्य, जीवनकी पूर्णतामे अवरोध उपस्थित न करो। इच्छाएँ शून्य हो चुकी है। उन्हे आनन्दसे मिलाकर जीवन शून्य कर लेने दो अथवा इच्छाओंसे जीवनमे भाग देकर आनन्दको अन्तर कर लेने.. . " और नीलेशके प्राण अलौकिक आनन्दकी ओर उड गये।

उधर देव-मन्दिरमे नीहारिकाके नूपुर देव-प्रतिमाकी सहृदयताको पुकार रहे थे। कदाचित् उनकी ध्वनि नीलेशकी चेतनाका स्पर्श करने भागी आ रही थी। मार्गमे ध्वनिने प्राणोंको पाया और उसीसे लिपटकर अनन्तकी ओर चल पडी।

कहते हैं, आज भी नीहारिका नृत्य कर रही है, पर उसके नूपुरोंमें ध्वनि नही।

जीवन नायक

'वीनसके पैर' कहानी ('प्रतीक'–१२ मे प्रकाशित) लिखते समय तरुण कथाकार जीवन नायकने कदाचित् यह नही सोचा था कि शीघ्र ही वह वीनसके हाथोपर भी कहानी लिखेगे। इन दोनो हृदय-स्पर्शी कहानियोको पढ उस समय यही सोचा गया था कि जीवन नायक अब कदाचित् वीनसके नेत्र, वीनसकी नासिका और वीनसके केशपर कहानियाँ लिखेगे, किन्तु पाठ्य-पुस्तकोने इस प्रतिभावान् कथाकारको कहानी-क्षेत्रसे परे खींच लिया तथा हिन्दी-कथा-साहित्य जीवन नायकसे कुछ और अच्छी कहानियाँ पानेसे वचित रह गया।

जबलपुरमे जन्मे और नागपुर, लखनऊमे शिक्षित जीवन नायक सम्प्रति भोपालमे अधीक्षक, पाठ्यपुस्तक और प्रकाशन है। नियमित रूपसे नही लिखते—कदाचित् इसलिए भी, कि पत्र-सम्पादक माँग नही करते। अब तो पाठ्य-पुस्तकोकी ओर ही ध्यान अधिक है।

• दो हाथ

—जीवन नायक

सोने-जैसे पीले दो सँपोले फन फैलाये निश्चेष्ट पड़े हो, या धरतीपर गिरे, मुर्झाये, चमकीले पत्ते घुणाक्षर न्यायके अनुसार हाथोंके अग्रभागके आकारमे आ जमा हुए हो, या फिर किसी संगतराशकी कृतिके, कोहनीसे नीचेके दो हाथ किसी आधारके सहारे रखे हुए हो और एक-ब-एक किसीकी निगाह उनपर पड जाय...... !

तो एक दिन ऐसा ही हुआ। ललवानी संस एड कंपनीका मालिक बीस-बाईस वर्षका मनोहर किशोर ऐसे ही दो हाथोको अपनी दूकानके काउंटरपर रखा देख स्तम्भित रह गया ! उसने देखा, मोमकी तरह चिकने, तीव्र जॉडिससे त्रस्त किसी बहुत ही गौराग मरीजकी त्वचाके सदृश पीले, छेनीके कलाकारकी मति-गतिके सूचक, प्रतिभावान्के उत्कृष्ट प्रयोग-जैसे दो हाथ, केवल दो हाथ—अपनी मद्धिम रोशनीमे आप ही चमक रहे थे......

ललवानीकी दूकान इधर सिविल लाइसमे शायद सबसे बडी दूकान है। टॉफी और खिलौनोसे लेकर बढ़िया विलायती तम्बाकू और वाकिग-स्टिक तक तमाम चीजे वहाँ बिका करती है; और जिसकी बात कह चुका हूँ वही किशोर आजकल दूकानपर बैठता है। सुबह आठ बजे घरसे चलता है तो दूकान तक रास्ते भर केले खाता आता है। कीमती कपडेकी गरम पतलून, उसपर जगह-जगह सिकुड़ी हुई रेशमकी कमीज, जो हमेशा पैंटके बाहर लटका करती है और उसपर नेवी-ब्लू पुलोवर। सिरके बाल हमेशा बेतरतीब, बिखरे हुए, कवियोकी तरह बढ़े हुए, पर छल्लेदार, जैसे यूनानी वीरोकी मूर्तियोके होते है। किशोर लापरवाह नही, बेपर-वाह है, खूब ही मनमौजी, मस्त। आस-पासकी चीजोंको छूकर वह उनमे

मस्तीका सचार करता जान पडता है। दिन-भर दूकानपर रहता है, सामान बेचकर पैसे जमा करता है, ग्राहक न होनेपर कॉचकी बडी-बडी शीशियोसे चॉकलेट निकालकर चबाया करता है और अक्सर 'महल' फिल्मका गाना बिलकुल कलाकारकी तरह गाता रहता है—'आयगा. आयगा'। पूरा गाना गाते हुए मैने उसे नही सुना, पर हॉ, आप कभी उसे गाते हुए सुने तो जरूर मान लेगे कि इन्सानके इस गलेसे 'इलीजियम' की रूमानी दुनियाके किसी अनजाने किन्नरका विरह-गान प्रस्फुटित हुआ करता है, जिसकी ध्वनि डूब जानेपर भी आपको बेचैन करती रहती है। वह एक अजब 'हॉन्टिग ट्यून' है जो गूँजती रहती है...। ललवानीकी दूकान कानूनी तौरपर सप्ताहमे एक दिन बन्द रहती है। सुबह आठ बजे खुलती और आठ बजे बढ जाती है। ठीक दूकानदारकी तरह वह छोकरा हिसाब-किताब मिलाता है। सिर हिला-हिलाकर तिर-तिर-तिर नोटोंका ढेर गिनता चला जाता है। फिर बत्तियॉ गुल होती है, दरवाजे बन्द होते है, भारी तालोमे चाबियॉ घूमती है और तब सुन पडता है...'आयगा... आयगा'। इसके बाद लगभग ८-३० बजे इसी रास्तेपर प्रायः रोज ही तेज रफ्तारसे एक मोटर-साइकिल निकला करती है जो रातमे कोई ११, ११-३० बजे फिट्, फिट्, फिट्, करती लौट पडती है। इस बस्तीमे आम तौरसे लोग इस मोटर-साइकिलकी रफ्तार और आवाजको खूब पहचानते है। वह छोकरा कुछ है ही ऐसा। बहुत लोग उसे अकारण भी जानते है। लडका शायद इस वक्त भी गुनगुनाया करता हो और मोटर-साइकिलके शोरगुलमे उसका कलनाद समा जाता हो।

चैत्र माहके पूर्वार्धकी सुनहली धूप जो सर्दीसे पूरा-पूरा बचाव नही करती तो भी भली मालूम होती है, और वसन्तकी हवा जो शरीरको रोमाञ्चित करती है फिर भी सुखदाई लगती है, ऐसे ही एक सुप्रभातमे मैदानी नदीके शान्त और स्तब्ध प्रवाहमे तैरती हुई दीपशिखाकी तरह स्थिर,

निराधार वेत्रलतिकाके समान अवसन्न, वीरानेमे खडी वेआबाद भूतोप-सृष्ट इमारतकी तरह दुर्बोध, परियोके देशकी शाहजादीकी तरह सुन्दर एक लड़की, एक प्रौढ़ाके साथ ललवानीकी दूकानपर चढ़ी और उसके चढ़ते ही ललवानीकी दूकानमे जैसे उजाला फैल गया। वेपभूषासे पजाबी दिखनेवाली ये माता-पुत्री इस दूकानमे पहली दफा दाखिल हुईं। दूकानमें आये ग्राहकोकी आहट पाकर और काउटरपर रखे हाथोके उस खूबसूरत जोड़ेको देखकर लड़का ठगा-सा रह गया, सम्हल ही न सका। आदतके मुताबिक, रोजकी तरह लपककर वह काउटरपर भी खडा नहीं हुआ। कुछ देर बाद मुँह और ऑखोपर हाथ फेर, होश सम्हालता हुआ, शो केसके पीछेसे वह काउटरकी दूसरी बाजू आया। सामान लेकर ग्राहक चले गये। पर लडका जहॉ खडा था, खडा रहा, खडा ही रहा और शाम हो गई। किसी प्यारी चीजके खो जानेपर मन तमाम और बातोसे खिचकर जब उसी एक चीजपर अटकता है तब इन्सान कुछ भूला-सा नजर आता है। लड़केकी भी यही हालत हुई। उसकी मस्ती, उसकी वेपरवाही उस क्षणसे गायब हो गई, रोजकी तरह उसका विरह-गान भी नही सुनाई दिया।

ललवानीकी दूकान रोजकी तरह खुलती रही। छोकरा भी जाता, सामान वेचता, पैसे लेता, हिसाब करता और दूकान बढाता रहा, पर गाना भूल गया। वह किसी गहरे सोचमे पड गया। वे दो खूबसूरत हाथ उसकी निगाहोसे ओझल न होते। हजारो लोग इस दूकानपर आते है पर वैसे हाथ कभी नही देखे। खूबसूरत हाथोका जोडा तरह-तरहके रंगोमे और अजीब-अजीब शक्लोमे उसकी ऑखोके सामने नाचता रहा। कभी उसे पीले-पीले सॉप दीखते, कभी हाथ फैलाये संगमरमरकी विशाल मूर्ति दिखाई देती, कभी मोमका पुतला दीखता और पुतलेकी शक्ल मिटकर केवल दो हाथ ही रह जाते। सड़कपर चलते हुए या दूकानमे

काम करते हुए लडकेको हरदम हाथोका वही खूबसूरत जोडा तग किया करता। कभी-कभी उसे लगता उसके चारो तरफ सैकडो, हजारो हाथ घूम रहे है। कई बार ऐसा होता कि दूकानमे आनेवाले ग्राहकोके केवल हाथ ही उसे दीखते। सामान उठाते हुए, सामानको थैलियोमे रखते हुए, पैसे गिनते हुए या दाम चुकाते हुए, कभी-कभी भूतकी तरह हर वक्त पीछे लगे रहनेवाले इन हाथोसे तग आकर लडका अपनी आँखे बन्द कर-लेता पर तो भी शायद उसकी बेचैनी दूर न होती।

कोई आठ-दस दिन बाद वही लडकी फिर दूकानपर आई। आज वह अकेली थी। लडका उस समय दूकानपर न था। सुर्ख लाल रगके स्वेटरमे ढके हुए हाथ काउटरपर रखे लडकी प्रतीक्षा कर रही थी और दूकानके नौकर बाअदब खडे हुए थे, इतनेमे लडका आ पहुँचा। लडकीने चार-छः दवाइयाँ माँगीं। फिर कहा ..“इलेक्जियर पैपीन और पैनिसिलीन इजेक्शन।” बाकी सब सामान नौकरोने लाकर हाजिर किया। लड़का बोला, “इजेक्शन चुक गये।”

फिर उन हाथोपर उसकी निगाह जम गई। बादको घनी लम्बी और खिची हुई भौहोंके नीचे बडी-बडी और नीली आँखोसे उसकी आखे चार हो गईं। लडकेने देखा उनमे मायूसी और बेबसीका रग गहरा होता जा रहा था।

“कहीसे दिला दीजिये, सख्त जरूरत है, ममीको दौरा हुआ है...” लड़कीके इन शब्दोने लडकेको विचारोमे खो जाने न दिया। वह अभी आसपासकी दुनियासे बेखबर होने जा रहा था, पर स्वस्थ हो गया, बोला—

“कोशिश करता हूँ, उम्मीद कम है, पता दे जाइये, भिजवा दूँगा।”

“मेहरबानी” कहकर लडकी जानेको हुई। इसी वक्त उसे कुछ ख्याल हुआ। कहा.. “नमस्ते”। काउटरपर रखे हुए अपने हाथ क्षणभर

देखनेके बाद वह पीछे हटी। हाथ धीरे-धीरे काउटरसे खिसककर दोनो बाजुओमे लटक गये। लडकीने धीरेसे सिर उठाया और कहा...“माफ कीजिये, हाथ काम नही करते।”

सामान रिक्शेपर रखा जा चुका था। लडकी बाहर आ गई। रिक्शेवालेने सहारा दिया। वह बैठ गई, रिक्शेवाला दूकानमे आकर दाम चुका रहा था। लडकेने पूछा...

“मिसी बाबाका मकान जानते हो?”

“हॉ हुजूर, बारह नम्बर, नई बस्ती, बिलकुल आखिरी बॅगला है।”

रिक्शा चला गया। लडकेकी आँखोंके सामनेका नीला आकाश धीरे-धीरे बदलने लग गया। उसे लगा, वह किसी विशाल, गहरे नीले समुन्दरके बीच खड़ा है। जहॉ तक उसकी निगाह पहुॅच पाती है वहॉ तक समुद्र-ही-समुद्र है, एकदम शान्त, न लहरे उठती है, न ज्वार आता है, न हवा सनसनाती है, चारो ओर भयावह स्तब्धता है। सन्नाटेके स्वर मौनको बुला रहे है। वह देख रहा है, अथाह जलराशिके बीचोबीच समन्दरकी सुन्दरीके दो अनुपम हाथ पानीकी नीली सतहपर धीरे-धीरे उभर रहे है, यह आसन्न प्रलयका सकेत है। अब वह डूबने लग गया है, नीचे, नीचे और नीचे.. ...

जाने किस आहटने लड़केको चैतन्य कर दिया। वह तनकर खडा हुआ मानो किसीने उसे चोरी करते पकड लिया हो लेकिन. .बारह नम्बर, नई बस्ती। हाथ काम नही करते...क्यो? क्या कुछ भी नही करते? नमस्ते भी नही? क्या हुआ है इन खूबसूरत...खूबसूरत पर बेजान, बिलकुल हरकत नही होती उनमे? ऐसी सजा खुदा किसीको न दे...

इंजेक्शन खरीदकर उस दिन लड़का स्वय बारह नम्बर नई बस्ती जाकर दे आया। बुढ़ियाकी तबियत सुधर गई। पहले दिनकी मुलाकातके बाद लड़का वहॉ अक्सर जाने लगा। बातों-ही-बातोमे एक दिन

उसने जान लिया कि ये लोग पंजाबी शरणार्थी है। प्राण लेकर भाग आये है। दगाइयोने बापको मॉ-बेटीके सामने कत्ल किया। इन दोनोके हाथ पीछे बॉध दिये गये थे। बापके मरनेपर मॉ बेहोश हो गई थी। हाथ रहते हुए भी ये दोनो बेबस, लाचार थी। कुछ कर नही सकी। फिर बारी थी लडकीके छोटे भाई, ढाई सालके निर्दोष बालककी। मॉ तो पहले ही होश खो बैठी थी। हॉ, बहिन देखती रही, दगाइयोने चूहेकी तरह कान पकडकर कितने ही बार बच्चेको ऊपर-नीचे झुलाया। फिर एक लकडीसे पैर बॉध उसे उल्टा लटकाया। दो ने मिलकर उस नन्ही-सी जानको लकडीके चारो तरफ जी भरकर घुमाया।

इस नृशस कृत्यसे बच्चा अधिक देर तक नही लड सका। लडकी जरूर अपनी सख्तीसे बॅधे हाथोके बन्धनोसे लडती रही पर बेकार उसकी सारी ताकत हाथोमे खिचकर समा गई तो भी दीवालसे सर टकराने और अन्तमे मुर्देकी तरह लटके रह जानेके सिवा लडकी कुछ नही कर सकी। बेहोशीकी हालतमे उनपर क्या कुछ बीती सो खुदा जाने। होश आनेपर मॉ को दौरे आने लगे और लडकीके हाथ अजगलस्तनके समान लटक गये और बेकाम हो गये। हाथ रहते हुए भी लडकी कुछ न कर सकी, इस अफसोसने भी उन हाथोको स्पन्दनहीन बना दिया। लड़केको ऐसा मालूम हुआ कि बीती बातोकी याद हरी होनेपर या अत्याचारकी कहानियॉ सुनने-सुनानेपर, अथवा दुःख सुखके तीव्र आवेशमे कभी-कभी हाथोमे एकाएक जोरसे सनसनी पैदा होती है। वे एक दूसरेके साथ जोरसे कस जाते है और एक-दो मिनट बाद फिर ज्योंके-त्यो गिर पडते है।

किस कदर मुसीबतमे मॉ-बेटी वतनसे वापस आकर इस शहरमे रुक गईं, उन्होने कितने फाके किये और कितने ही अविश्वसनीय घटना-चक्रोमे फॅसकर वे जिन्दा निकल आईं और आज तक जीवित है. पाकिस्तानमे जमा हुआ उनका रुपया अब मिल गया है और किसी तरह जरूरते पूरी

हो रही है। सारा हाल लडकेने जान लिया। इधर लडकेका बारह नम्बर नई बस्तीमे आना-जाना बढता गया। उधर ग्राहक उससे कहते रहे..."माँ-बेटी जादू जानती है। छोटे बच्चोको पकड लेती है। बडी भयानक औरते है। उनके यहाँ कोई जाता-आता नही। मनोरमागंजमे रहती थी, ढेले मार-मारकर लोगोने निकाल दिया। लडकी! वह तो बिलकुल चुडैल है। अगरचे ये लोग रिफ़्जी है तो रिफ़्जी बस्तीमे क्यो नही मरते जाकर? रहतीं किस ठाटसे है, जैसे राजघरानेकी हो। तुम्हारे जैसा आदमी कैसे उनके फ्राँसेमे आ गया...! कौन जाने कैसे उनका खर्च चलता है और कौन उनकी मदद करता है? तुम खुद समझदार हो, अपना भला-बुरा समझते हो। उनके यहाँ जाना तो दूर उस रास्ते निकलना भी बन्द कर दो इसीमे तुम्हारी भलाई है। कहना काम हमारा, मानना न मानना तुम्हारी मर्जी।"

दूसरे कहते.... ...

"इन सालोका क्या भरोसा, आजको रिफ़्जी है कलको हमारी गर्दन नापने लगे। इनकी चाल ऐसी है कि कितनोके घर बिगाड जावेगे। व्यापार-रोजगार इनकी वजहसे अलग चौपट हो रहा है। थोडी पूँजीसे धन्धा करनेवाले इन महाजनोंके मुकाबलेमे हमारी बधिया बैठ जायगी एक दिन। हूँ! मुँहमे दही जमाये क्या बैठे हो, भाई साहब?"

इधर लडकेको अपने आपसे ही फ़ुरसत नही.. लडकीसे पहचान होने के बादकी घटनाओके चित्र एकके बाद एक उसके दिमागमे मँडराते रहते. उन बेजान हाथोमे कभी-कभी अनायास बिजली दौड जाती है। शो केसमे रखी गुडिया को वे पाना चाहते थे, पर वह उनकी पहुँचके बाहर थी। एक दिन गुडिया बिक गई।

'फ्लैग-डे'के दिन झण्डे बेचनेवाले छोटे-छोटे स्कूली बच्चे दूकानपर आये। उस दिन भी वे हाथ बच्चोको प्यार करनेके लिए उठे थे। बच्चे इधर-उधर दौडते फिर रहे थे, पकडमे नही आये। फिर दोनो हाथ गिर पड़े—

जैसे वधिकके वारसे अपराधीका सिर धडसे अलग हो जाता है, जैसे बन्दूक के छर्रे लगनेपर उड़ता हुआ पक्षी हठात् जमीनपर आ जाता है, जैसे बिजलीका झटका आदमीको एकदम ठेल देता है.. ..

और उस दिन अपने माँ-बापके साथ आये उस सुन्दर अंग्रेज बच्चेको तो उन हाथोंने पकड ही लिया था, लडका दौडकर अपने माँ-बापसे लिपट गया, वे दोनो हाथ जैसे बिजलीसे चलते हो, एकाएक उठे, मनचाही वस्तु न पाकर, एक दूसरेसे लिपट रहे। फिर गिर गये, ज्योंके त्यो।

लडका सोचता रहा. इसी वेबसीको दुनिया जादू कहती है? इतनी बाते सुननेपर भी जब लडकेके मुँहसे शब्द न निकला तो बोलनेवालेने उसे झकझोर डाला, गोया लडकेको उसकी खयाली दुनियासे बाहर खींच लिया। लडका बोला—

"हाँ, जी"

ऐसे बेमेल जवाबको सुनकर लोग अक्सर झल्ला जाते और दूकानसे उतरकर अपनी राह लेते।

अब तो लडकेकी हर शाम बारह नम्बर नई बस्तीमे कटने लगी। माँ-बेटीसे मुलाकात होनेके बाद वह खोया-खोया-सा रहने लगा। उसके सारे काम पूर्ववत् चलते रहे, पर जो चीज बन्द हो गई वह था उसका गाना, जिसे पडोसी अब न सुन पाते।

करीब दो माह बाद पता लगा लड़केने इसाई धर्म स्वीकार कर लिया है। लडकीको भी यही करना पडा, और माँ के बहुत रोकनेपर भी एक दिन गिर्जेमे जाकर दोनो पति-पत्नी बन गये।

हाँ, शादीके दिनकी बात है। लडका करीब ग्यारह बजे दूकानपर आया और लोगोने इतने दिनो बाद फिर सुना.. . ."आयगा.... . आयगा..."

उस रात उनका 'हनीमून' था। माँ, बेटी और दामाद बारह नम्बर नई बस्तीमें मेहमानोका स्वागत कर रहे थे। शहरके बाहर इस बस्तीमे मुश्किलसे पाँच ऐंग्लो-इण्डियन कुटुम्ब थे। वे ही कुछ लोग आये, बैठे, खुश हुए और लौट गये। इसके बाद बुढ़ियाको दौरा आ गया। बमुश्किल तमाम रात बारह बजे, लडका और लडकी बुढियाको सुलाकर चैनसे बातोमे लग गये...

"..आज मै बहुत खुश हूँ।"

"...मै भी।"

"...मेरे हाथ बेकाम न होते तो आज मै तुम्हें अपने हाथोंसे टाई पहनाती!"

"खैर, जाने भी दो इन बातोको। तुम मेरे पास हो, यही मेरे लिए बहुत है। आजकी रात तुम्हे अजीब-सी नहीं लगती क्या? मुझे लगता है आज मुझे किसीसे कोई शिकायत नहीं है। मेरा गानेको जी होता है। तुम नही गाती क्या?"

"नही, तुम गाओ, मै सुनूँगी।"

लडका गाता रहा। उसने लडकीके दोनो हाथ अपने दोनो कधोपर रख लिये और बैठा रहा। लडकी खडी हुई सुनती रही।

'आयगा...आयगा...' जिन्दगीमें पहली बार इस खुशनसीबीने उसका दामन थाम लिया था। उसके रोम-रोममें खुशी समाई थी। फिर सोती हुई दुनियामे केवल दो ही जागनेवाले, तीसरा कोई नहीं। और लडकेका जादुई कंठ, जो आज बहुत दिन बाद खुला और दूरतक गूँजता रहा।

लडका गाता रहा, लडकी सुनती रही, गीत गूँजता रहा। दुनिया सोती रही और दो हाथ, दोनो हाथ, गरदनसे दोस्ती करते रहे। फिर वे पास-पास आनेको उतावले हुए, मिलनेको बेचैन हुए, लडकेकी गरदन बीचमे

थी, वह दबने लगी। लड़का खुश हुआ कि आज उन नाजुक, खूबसूरत मर्मरी हाथोके स्पर्शका सुख कैसे सयोगसे मिल रहा है !

पर अब गरदन जोरसे दब रही थी। लड़केने गाते-ही-गाते अपने बलिष्ठ हाथोंसे उन नाजुक हाथोको मिलनेसे रोकना चाहा, पर वे कहाँ रुके ? लड़केकी सारी ताकत भी उन दो हाथोंको रोक नही सकी। वे मिल गये, पर किसीका दम घोटकर।

मिसला मिश्र

१९५१ मे लखनऊ विश्वविद्यालयसे राजनीतिमें एम० ए० कर मिसला मिश्र एक स्थानिक कॉलेजमे प्राध्यापिका नियुक्त हो गई थी। तबसे वहॉ राजनीति पढाती है और वाइस-प्रिंसिपल होनेके नाते दफ्तरका काम-काज भी देखती है। "बस, और कुछ नहीं। लिखना बहुत चाहा है, लेकिन लिखा बहुत कम है, शायद इसलिए कि आदतन ईमानदार बहुत है। जिसका पूरा यकीन नही, वह लिखना नही चाहती।"

मिसलाजीका यह अनावश्यक आत्म-चेत और तीखी आत्मालोचना, जो उनके साहित्य-सृजनमे अवरोध बन चली है, गुणग्राही पाठकोके लिए निश्चय ही खेदका विषय होगी, क्योंकि उनकी लेखनीमे एक ऐसी सरल मानवीय सवेदना और स्पष्ट ईमानदारी है जो अनायास ही मनको आलोडित कर जाती है। साम्प्रदायिक दगेकी पृष्ठभूमिपर पत्र-शैलीमे लिखी हुई उनकी इस खरी और मार्मिक कहानीको पाठक सहज ही विस्मृत न कर सकेंगे।

तीन ख़त

—मिसला मिश्र

[एक]

सलमा !

एक अरसेसे तुम्हे नही देखा, खबर भी नहीं मिली । जिन्दगीकी जद्दो-जहद इस हदतक पहुँच चुकी है कि अब रात-दिन इस पेटकी पडी रहती है । तुम्हें तो मालूम है, हम अब तीन व्यक्ति है—राजेन्द्र, मैं और अशोक । अशोक हमारा बच्चा है, पाँच सालका, बडा समझदार । कभी-कभी तो मुझे ताज्जुब होता है, यह बच्चा इतनी बुद्धि कहाँसे लाया है ? पर राजेन्द्रका दावा है, उसका खानदान ही Intelligent लोगोका है ।

बच्चोंकी चाहना उस ऐशके युगमें तो कर ही नही सकती थी । पर उनके पालनेके ढग, रहन-सहन, हजारो बाते थी । कितनी बडी-बडी स्कीमें थी, पर आज इस अशोकको कुछ नही दे पा रही हूँ । कभी-कभी दु.ख होता हे, हम मामूली-सी चीजे भी अपने बच्चेके लिए मुहय्या नही कर पाते ।

तब राजेनने हाल ही कॉलेज छोडा था । युद्ध छिड चुका था । नौकरी मिल गई, और अब हाल यह है कि तनख्वाह है, भत्ता है, पर सवेरेसे शामतक घसीटते-घसीटते बजट खतम हो जाता है । कहाँसे उसकी पढाई निकले, कहाँसे और खरचे ? अपना बचपन याद आता है, और इस अशोकका । कितना प्यारा-सा बच्चा है, और इसे जरा-जरा-सी चीजके लिए डॉट देती हूँ । बाजारमे निकलता है तो दुतरफा खिलौनोको यों ताकता है कि बरबस हँसी आ जाती है और डॉट भी दो तो खिसिया जाता हे । जरा-सा बच्चा है, पर रोता नही । हम क्लर्कोंके बच्चे आखिर इतना समझते है । मचलना तो उनका काम है । कितने अरमान है मेरी दोस्त,

इस अशोकको आदमी बना देनेके। और अगर यही हाल रहा तो क्या हो सकता है ? 'जिन्दगी तो एक खेल है' अहमद भाईका फिकरा याद आ जाता है। और उनके लिए वह खेल ही था। और अब भी जिन्दगी एक खेल है उनके लिए।

आज ही जरा बाजार जाना था और बाजार, तुम जानती हो, मुश्किलसे जरूरत भर रुपया जुटा पाते है, बाजार जाते है, वह चीज मिलती नही और रुपया खतम हो जाता है। ऐसे है यह बाजार। और दिनभर हैरान होते है सो अलग। और उस दिन पूरे पॉच घटेकी हैरानीके बाद जब चीज दिखाई पडी, तो लगा पीछे भीडमे कोई बिल्कुल कन्धे तक झुक रहा है।

मै घूमी। यो तो आजकल इस आम भगदडके जमानेमे सबने तह-जीबका खयाल बालाये ताक रख दिया है, पर फिर भी। घूमी तो अहमद my God ! मै ऐसे चौकी, और आप बड़े इतमीनानसे बोले, "मै तो दरवाजेपर ही देख रहा था, पर तुम घूमी ही नही।" और मुझे सिर्फ एक ही बात सूझी, "आप मुझे पहचान गये ?" अहमद मुसकराये, "तुम्हे भूला ही कब था !" और मै सामान लेना भूल गई। बिना लिये लौट आई। मैने उन्हे उस दिन देखा था जब वह इग्लैड जा रहे थे। उसके बादसे आज देखा था, एक जौ भर भी तो नही बदले है। बाते करते रहे दुनिया भरकी, अपनी, तुम्हारी, मेरी—और सलमा, तभी आज तुम्हारी याद आ गई है। याद आते है वे दिन, जब हम एक थे। तुम तो आज भी बडी हो, कभी हम भी थे। तुम तो आज भी जमीदार हो, राजा बाबू हो। सुना है—मियॉ बडे लीगी है। हमारी क्या, एक क्लर्ककी आदमियत ही कितनी ? पर सलमा, जिन्हे भुलाते पॉच सालका जमाना निकल गया, वे दिन अहमदने एक झटकेसे याद दिला दिये। इस जिन्दगीके रोज-नामचेके कुछ पन्ने कितने प्यारे होते है सलमा, जिनकी याद इन्सान अपने

सीनेमे किसी गहरे राजकी तरह छिपाये फिरता है, और फिर एक जरा-सी ठेसपर याद बिखर जाती है। अहमदने आज उस दबी यादको यो ही कुरेद दिया—सोचो तो। एक लमहेमे इतने सालोका अन्तर मिट गया। मुझे आज भी अहमदको पाकर उतनी ही उलझन थी, उतनी ही झिझक। पर अहमद अब खुल गये है। दिन बीत गये। उस जजबाती तूफानका दौर अब खतम हो चुका है—अब तो हम इसपर बात कर सकते है। कलकी-सी याद है। जो बात तुम्हारे लाख पूछनेपर भी कभी इकरार नही कर सकी थी वह आज मान लेती हूँ। खुद बता भी दूँगी—तब जो एक हगामा खडा हो गया था, अहमदको घर छोडना पडा, यह सब कैसे हो गया यह तो आज भी नही समझ पाती हूँ।

वह दिन याद है जब यकायक आकर एक दिन तुमने कहा था, "सुनो प्रीति, यह अहमद भाई है न, बडा गडबड कर रहे है।" "क्यो ?" और तुमने बडे बुजुर्गोकी तरह सजीदा होकर कहा था, "वह किसीसे प्यार करते है।" मैने भी अनजान-सी पचीसो बाते पूछी थी। पर आज पूछती हूँ, क्या था जो वह किसीको प्यार करने लगे। उन्होने कोई गुनाह तो किया नही। प्यार जब होता है, हो ही जाता है। अगर नाप-तोल, जॉच-पड-ताल लायक ससारी बुद्धि काम ही करे तो कोई प्यार न कर, व्यापार ही क्यो न करे। और प्यार! वह शायद तब मै भी नही जानती थी।

उन दिनो जब नये-नये आये थे घरके लोग, नई जगह थी, रोज घूमने चल देते थे। घर भरमे अकेली पडी रहती थी। टाइफायडसे हालमे ही उठी थी—कमजोर, चिडचिडी। उस दिन शायद किसीकी दावत थी। पार्टीका इन्तजाम हो रहा था। बहुत बडा इन्तजाम था। और मै बाहर, उपेक्षित-सी पिछले बरामदेमें यूँ ही कुर्सीपर पडी थी। सारे दिन बादल घिरे रहे। ऐसे दिन जाडोमें कितने प्यारे लगते है! सनसनाती हुई हवा, घूमते हुए सूरजमुखी! और वह बारह-तेरह सालकी टाइफायडके बाद कमजोर,

चिड़चिडी लडकी जब लड़कर किसीकी परवाह न पाकर बरामदेमे खीजकर पड रही तो बरबस अपनी असमर्थतापर रुलाई आ गई। पडी-पड़ी रोती रही। पाँव हिलाती रही और यकायक एक फुटबाल दनसे आकर पेटमे लगा। एक क्षणको सब ऊपर-नीचे नाच गया। तिरछी होकर उलट रही कुर्सीपर। जब दुनिया घूम चुकी तो खिलाडी भी दीखे। फेंकनेवाला लडका तब आकर अपनी बॉल ले गया। उतना बडा लडका, क्या कहती ? और तबसे अक्सर वह शायद उस कसूरके एवजमें खैर-खबर ले लेता, तस्वीरे ला देता, तितली पकड देता, और यह देना-पावना सालोमे बढ़कर किस दिन इतने पैमानेपर अदल-बदल करनेको तैयार हो गया, कोई न जान सका।

तुम्हारी चचीको अहमदका मजाक बनाते मैंने भी देखा था, पर तब तक मुझे खुद पता कहाँ था ? वह तो उस दिन तूफानके बाद जब लगा कम्पाउण्डका कम्पाउण्ड तक हिल उठा। चलते वक्त अहमद आये। अपने कमरेमे बैठी मैं तब किसी काममे लगी थी। खिडकीपर छाया पा, सर उठाकर देखा अहमद थे। "मै चला जा रहा हूँ..." मै उन्हें ताकती भर रही... "तुम्हे हिन्दू-मुसलमानमे फ़र्क लगता है प्रीति ?" लेकिन मुझे तब नही लगता था, और अब तो वे सब दीवारे ढह ही चुकी है। मैंने कहा, "नही !" और उस दिन पहली दफा अहमदने अपनी जुबानसे कहा था, "प्रीति, तुम्हे प्यार करता हूँ, कबसे करता हूँ यह नहीं जानता। पर करता रहूँगा जिन्दगी भर, यह अच्छी तरह जानता हूँ।" और दूसरे दिन अहमद चले गये। मुझे मालूम था उनके रहते भी और उसके बाद भी। मेरे पिता और तुम्हारे अब्बामे रोज बाते होती रही। मैने खुद विलायती डाकके लिफ़ाफे पिताके कमरेमे धरे देखे; पर वे खत क्या हुए मुझे नहीं मालूम, ढूँढनेपर भी नही मिले। और अहमदने मुझे लिखा ! इतनी खत-किताबत के बाद पहलूका रुख मालूम हो ही गया होगा ! मुझे खुद नहीं समझ

पडता था कि आखिर यह इन्सान-इन्सानमे भेद कैसा ?. .इन्सान इन्सान को चाह न सके, प्यार न कर सके ! हफ्तो उलझी रही। फिर तो यकायक हमारी किश्ती उलट गई। वह मॅझधारमे तो थी ही जैसी कि सभीकी रहती है। जिन्दगीकी उस भाग-दौडमे किसे इतना ख्याल था कि कल कैसा आयगा। और एक दिन जब जिन्दगीकी गाडी उस अपनी चिकनी सपाट राहसे चूक गई तो आज भी वहींकी वही है। और क्या बुरा है, एक हद तक खुश भी हूॅ। जिन्दगी भरकी उस अनिश्चित राह—न जमीनपर पॉव, न सतहपर काबू—उस ढुलमुल ज़िन्दगीसे हट अब हम एक टिकाने तो आ लगे है। हॉ जमीन है, सो भी ककरीली, नग्न, बेहया। एक क्लर्ककी आदमियत ही क्या ! मगर खैर। मुझे पता था सलमा, खूब समझती थी। सोसायटीके खम्भे पोले है, खोखले, जमानेकी हवाका एक झोका भी इन्हे भरभरा देनेको काफी है। हजारो दफा सोचा, समझनेकी कोशिश की, पर आश्चर्य आज भी है। वह बडे-बडे दिमाग, वह सरगना दुनिया भरकी सोचा किये, अपनी कभी नही सोच पाये। तडक-भडक, नाच-रग, सैर-सपाटे, दोस्त-दावत कौन नहीं समझता था, यह बढ़िया मौसम भरकी है। क्लाइमेक्स आया—वह दफ्तीकी आलीशान इमारत ढही भी तो शानके साथ ! हर बातमें बडोंकी नकल भर थी। हम मध्य-स्थितिके लोग तब भी पोले थे, आज भी हैं। मुझे ताज्जुब है किस हिम्मतपर यह ऐशका ताजिया पग-पग पर हिलता-चलता था। मिनट-मिनटकी खैर मनानी पडती थी। वह अनिश्चितता, आये दिनका वह शशपज उनका दम क्यो नहीं घोट देता था ? और एक तहलका मचा—मॉका हार्टफेल हो गया। खबर ही ऐसी थी। पिताने खुदकशी कर ली। उनकी वह शक्ल, रग-रगकी ऐंठन, खिचा हुआ चेहरा. उस ऐशपसन्दीका अन्जाम, एक मशहूर इञ्जीनियरकी ट्रेजेडी, चन्द अखबारोंकी कटिङ्ग और बस. हमारे सर-सब्ज घोसले जो लू-लपटमें भी फूलते-फलते थे अपनी नमी खो बैठे। एक तूफान आया, किश्ती उलट

गई। यह समयका तकाजा था। एक अल्टीमेटम—हम तुम्हे बदलनेको मजबूर हो इसके पहले तुम बदल जाओ बेहतर यही होगा, नही तो नेस्त-नाबूद होगे और नेस्तनाबूद ही हुए! आह सलमा! अब तुम्हीं कहो—उस गुजरी कहानीमे ऐसा है भी क्या जो सहेजा जाय...तबसे सब भुलाने की कोशिश की। जीवनके उस अन्धडमे जब सब वीरान हो चुका था, जीवनके उस अनजान चौराहेपर इस राजेन्द्रने राह सुझाई। मेरे भाग्यकी प्रचण्ड-धारा जब किनारे-कगारे ध्वंस करनेपर तुली थी तो यही राजेन्द्र किनारेका वृक्ष बन साध बैठा था। तबसे यही आश्रय है सलमा। इस राजेन्द्रने मुझे क्या नही दिया; अब तो घर है, द्वार है, पति है और यह अशोक है—

तुम हँसोगी, यह राजेन्द्र अब तक मुझमे, अपनेमे फर्क मानता है। बरसो तक झेप गई नहीं। घरके खत दबाये रहता है। हमारे पुराने सस्कार अब तक उसपर हावी है। अपनेसे वह मुझे ऊँचा समझता है। यह वह घाव है जो हम दोनोको कोचता है। काश मेरा वह जमाना कुछ न होता, राजेन मुझसे खुल सकता। अब तो इस जीवनके हम आदी है। छः साल बीत चले, पर आज भी कभी उसका व्यवहार खुल जाता है। मै चुप रह जाती हूँ। आज ही अहमदसे बाते करते-करते देर हो गई : अहमदका इसरार था मै उन्हे स्टेशन तक छोडने चलूँ, और आधे रास्ते मुझे जैसे ख्याल आया, "अहमद, मै नही जाऊँगी। तुम्हारी बेगम साथ होगी। मुझे न जाने कैसी उलझन लगेगी।" लेकिन अहमदको सब खिलवाड है—तुम्हारे तो भाई है, तुम्हे क्या बताना। मुझे बेवकूफ बनाने लगे—"हाँ है तो बेग़म साथ, पर चलो तुम तो देखने लायक हो प्रीति, मियाँकी जान मुसीबत बना देनेवाली तुम्ही हो। उसे देखना चाहिए।" लाचार जाना पडा। वहाँ कोई न था। मै उन्हें पहुँचाकर लौट आयी। चलते-चलते बोले, "कभी आऊँगा प्रीति, तब तुम्हारे यहाँ

ठहरूँगा। हिन्दुस्तानका इतिहास लिख रहा हूँ। इस लखनऊकी जगह नये इतिहासमे भी होनी चाहिए, और मेरी दिलचस्पी इन बातोमे तुम जानती हो, नहीं के बराबर रही है।" मै चुप रही। देर हो रही थी। मुझे ख्याल हो रहा था, अशोक लौट आया होगा। अकेला बैठा होगा। पर घर पहुँचकर देखा—बाप-बेटे दोनो पडे है। मुझे सच ही बुरा लगा—देर हो गई थी। चुपचाप अन्दर चली गई। जल्दीसे खाना तैयार किया। अशोक लगा अहमदके बारेमे पूछने। मै तुम्हें कह चुकी हूँ सलमा, यह अशोक इतना जिज्ञासु है कि मेरी अकल हवा हो जाती है। कहाँ तक जवाब दूँ। राजेन्द्रसे ही खूब पटती है। बराबरवालों जैसा तो बर्त्ताव करता है। मौज होती है तो 'राजेन सुनो दोस्त' और नही तो चुपचाप भी पडा रहता। आज अहमदमे न जाने क्यो फिर उसकी दिलचस्पी जाग उठी। उसे क्या बताऊँ, मै तय नहीं कर पाती। अपने अतीतमें सिर्फ एक ही राहत है, राज है, वह खोल देना मुझे उचित नही लगा। चुप रही। और राजेन्द्रका और भी बेढब मुकाबला था। राजेन्द्रके इस रूपकी कल्पना भी नही की थी। मै लौटी तो चुप पडा था। मैंने समझा, थका है, सो लेने दो। पर जब पडा ही रहा, मनमे एक खटक उठी। 'आखिर है क्या ?'—मैने आवाज दी तो चुप। और अशोक बोला, "दिक न करो भाई, राजेन बीमार है। क्यो राजेन ?" मैंने सिरपर हाथ रखा, गर्म नहीं मालूम हुआ। मुझे ताज्जुब था, क्या मामला है। छटनी तो एक तरह जानी हुई है। "क्या बात है राजेन ?" मैने हिलाया आखिर। "कौन था तुम्हारे साथ आज ?" करवट बदलकर पहला सवाल राजेनने किया। ओह सलमा, तुम राजेनकी वह सूरत देखती। बेबसी कभी इतनी सजीव हो सकती है! राजेन कभी सुन्दर था ही नही। उसकी कुरूपता आज कितनी भयानक लग रही थी! मैने आज तक किसीको सफाई नही दी और आज जरूरी था कि दूँ। नही तो इस कमजोर इन्सानकी हत्या होगी।

मेरा हाथ आप-से-आप हट गया। वह अब भी ताक रहा था मुझे। एक क्षण भरमे मैने जवाब दिया, "राजेन तुम्हे मुझपर अब भी यकीन नहीं है?" और जिन्दगीमे पहली दफा राजेन खुला, "प्रीति, सवाल यकीनका नही है। समाजमे आज मेरी हैसियत क्या है? मै जो कुछ हूँ, जानता हूँ। सूरत नही है, हैसियत नही है; मेरी कमजोरी कभी उतावली हो जाती है। तुम्हें क्या दे सका हूँ? मेरे पास पैसा भी नहीं है-प्रीति, अगर मै. . ."

"पैसा तुमसे बडा हो सकता है राजेन?" मैंने कहा—

"हॉ, मै ग़रीब हूँ, मजबूर। और प्रीति, आज मुझे यह माननेमे शर्म नही आती कि मुझे भी जिन्दगीकी हविस है। यह कुत्तोकी जिन्दगी!. तुम यकीन पूछती हो, मुझे खुदपर यकीन नही। कल मैं अभावोंमे क्या कर बैठूँ?"

उसके ऑसू भर आये। मुझे जब्त करना आता है। पर जब्तकी भी हद होती है। वहॉसे उठकर कमरेमे आकर पड रही। मैंने खानेको नहीं पूछा, पीनेको नही पूछा, जिन्दगीकी भयानकता मेरे आगे साफ़ हो गई। इन्सान क्या पा रहा है सब खोकर! कभी-कभी जीमे एक हलचल मच जाती है; कहॉ जा रही है यह नाव, खेवैयापर भरोसा नही। मुझे ऐसी जगह रोना नहीं आता। जिन्दगीमे बेहयापन दिन-दिन बढ रहा है। आये दिनकी मुसीबतो और खटखटोने जीवनकी भावुकता सोख ली है। बाकी है सोचनेकी क्रिया, और वह जब तुम ख्याल करोगी, लगेगी कितनी भयानक है! जवान इन्सान अगर जीवनकी निस्सारता ही सोचने लगे तो ज़िन्दगी बेरौनक होनेमे क्या बाकी रह जाता है! पर इन हकीकतोपर पर्दा डाल इन्हें रंगीनियॉ मान लेनेके लिए वह अज्ञान, वह मूढता, कहॉसे लाऊँ? समझ-दारोकी भी कैसी मुसीबत है! राजेन उठ आया, मगर माफी नही मॉग सका। एक दिन आता है सलमा, जब भावुकता चुक जाती है, मान-मनौवल

की गुंजाइश नही रहती, सुनने-समझने किसी चीजकी गुंजाइश नहीं रहती। बाकी रहता है एक बोझ ढोना।

"अपनी कमजोरीके लिए दुःखी हूँ प्रीति! प्रीति, तुम उसे समझ सकती हो। तुम ही तो एक मेरा सम्बल हो। जितना ही कमजोर होता जाता हूँ उतना ही तुम्हे कसकर थामना चाहता हूँ।"

अब तुम्हीं कहो, उसे माफ करनेको क्या बचा था? और क्या कट-कर वह माफी माँगता? और इस तिल-तिलकर घुलनेवाले मानवपर मेरा दुःख तुम क्या समझोगी? मैं कितना रोई। अहमदके बारेमें वह सुन चुका है मुझसे ही। पर अचानक एक वक्त जब जिस्मकी तमाम कुव्वतोंसे जवाब पा वह घर लौटे, उसे उसका बेटा बतावे—उस आदमी-की याद दिलावे—जो उसका घर बसनेसे पहले, उसके और उसका घर बसानेवाली हस्तीके बीच आ चुका हो, जिससे उसे जलन न हो, हार मंजूर हो। मजबूरी सोचो सलमा, एक मिनट! कितनी बडी ट्रेजेडी है! मैंने उसे माफ कर दिया. यह तो उसने मुझे बादमे बताया, ऑफिसमे उस दिन आम नोटिस आया था तीन महीनेका, और यह नई बात नहीं है। यह तो जाना हुआ था। जब लडाई खतम होनेकी प्रार्थनाएँ की जाती थी तो कुछ ऐसे भी थे जो इस लगी आगमे पेटके टिक्कड सेक रहे थे। इसलिए लडाई खतम होनेपर सदमा भी उनको जरूरी था। और तुमसे सलमा क्या चोरी! उस दिन छुट्टी थी, और हम कहीं जानेको तैयार खडे थे, जब यकायक गहरे शोरके साथ साइकिलपर अखबारवाला चिल्लाता चला गया था—लडाई खतम हो गई। सुनकर एक मिनटको हम खुश हो गये और दूसरे क्षण राजेन फक् चेहरेसे बोला, "मै नहीं जाऊँगा। मेरी तबियत ठीक नही।" सच बात है सलमा, हमे धक्का लगा था! कितना बडा स्वार्थ!.. अदर आकर फिलॉसफरोंकी तरह बुझी मुसकान बिखेरकर राजेन बोला, "घोसला समेटो प्रीति, दिन बीत गये।" देखा

सलमा, उस दिन जब दुनिया खुशीके आँसू रोई, बिछुडोकी मुरादे बर आई, सियासतकी दम घोटनेवाली आबोहवामे जवानी-मस्ती भर गई, हम जल्लादोंसे सहमकर रह गये।.. यह है हमारी जिंदगी! और तबसे ही यह घर, यह छोटा-सा घर, यह छोटी-सी गृहस्थी—इसका क्या होगा, यह चिन्ता सवार है। जब दुनिया भरके भत्ते मिलते थे तभी पहलीसे तीसतक सौ दफा मरकर जीते थे, तो अब क्या होगा?.. दुनिया वही, तेजी वही, सिर्फ नौकरी नहीं होगी। सही मसला तो अब आया है। अब तक किनारोकी जंग थी, अब घरेलू है। मुझे तो कुछ सूझता नही। यह भी सब अहमद ही बता रहे थे। अब बैठे-ठाले आदमीको सोचनेको वक्त मिलता है तो जमीन-आसमानके कुलाबे मिलाते है। हमे तो क्या बताये चैन नहीं, आराम नहीं, और सच पूछो तो तकलीफोंका हिसाब लगानेको वक्त तक नही मिलता। मगर फिर भी यह खत लम्बा हो गया, इतना कि मुझे खुद ताज्जुब है। पर सात साल बाद लिख रही हूँ और तुम्हे कमसे कम पढ़नेका वक्त तो मिलेगा ही सही, पढ लेना। सुबह तक ख्याल न था और दोपहरमे अहमदने मिलकर तमाम सालोंका फर्क मिटा दिया। और लम्बा होते हुए भी खतमे सब हिसाब साफ़ है, बाकी कुछ नहीं। बस.

तुम्हे मेरा प्यार

—प्रीति

[दो]

नजीर मजिल,
नजर बाग,
लखनऊ,

सलमा!

खत पाते ही तुम खुराफात उगलोगी, मुझे यह यकीन था। तभी तो सब पहले ही लिख दिया था। अब और क्या बाकी है? रोमास!

नहीं, अब और नहीं सूझती। तुम्हीं सोचो और तुम्हींको मुबारक हो। जिन्दगीमे आराम है और वेफिक्री, खूब खुराफात सोचो। मुझे क्या कहना है, और अहमदके लिए क्या बताऊँ! एक रूहानी प्यार, या जो कुछ कहो मुझे उनसे रहा है और रहेगा भी। कुछ बाते है जिन्दगीमे सलमा, जिन्हें हम भुला नहीं पाते। वह सैलाब, वह जुनून और अहमद, . पर जाने दो वह बात उन दिनोकी है जब हम जवान थे, रंगीनियाँ थीं, बहारे थीं, अब तो जिन्दगीमें फकत एक प्यास बाकी है—न साकी है, न शराब है, और हविस भी तो मिट गई है। अब तो महज एक कोरम पूरा करना है। जिन्दा है, इसलिए कि और कोई काम नहीं सूझता!

आजकल न जाने कैसी नहूसत छाई रहती है। एक अजीब उधेड-बुनमे दिन कटते है। राजेन अजीब हैरान है। नोटिस पद्रह दिनमे खतम हो जायगा और नौकरी अब तक नजर नहीं आती। सुबहसे शाम तक भागदौडमे। रात गये घर लौटता है। मुँह दिन-दिन सूखता जाता है। कल कह रहा था, कही एक मिलमे किसी एक मेकैनिककी जरूरत है और राजेन तैयार है। अभी काम कहीं सीख लेगा और काममे लग जायगा। रात गये काला-धुध होकर लौटेगा. मुँह अँधेरे भागेगा

देखा सलमा! क्या तेजीसे सीढियाँ उतर रहे है। कभी हम पैसेवाले थे। कभी दिमागकी कमाई खाते थे। आज हम श्रमजीवी है। ठीक ही है। जो होना है, होकर रहे। इंतजार क्या? दबाव जितनी जल्दी पडता है, जितना गहरा पडता है, प्रतिक्रिया उतनी ही टिकाऊ होती है। और इस दबावकी भी कहीं न कहीं तो हद होती है।

सलमा! पिछले खतमें तुम्हें लिखा भी था कि फिक्र सवार है 'क्या होगा?' दिमाग ज्यादा काम नहीं करता। सोचनेकी आदत तो कभी नहीं थी। पर अब यह दिन विवश कर रहा है। कैसे एक-एक दिन करके हम

मुसीबतजदा एक हो रहे है। जमाना लाचार कर रहा है—कुछ सोचे। और तुम जानती हो, मेरा दिमाग राजनीति नही समझता है। ज्यादा बाते तो नही आती! क्यो हुआ? क्या हुआ? और क्या होगा?. यह मेरी बुद्धिके बाहर है। फिर भी जिन्दा रहनेका अधिकार हमको चाहिए ही। इंसानियतका तकाजा है, ऐश-आराम मयस्सर न हो, जिन्दगी कायम रखनेको रोटी तो चाहिए ही, जब इतना भी न मिले तो इंसान क्या करे?

मुझे कोई समझाये सलमा, (तुम्हारा तो सियासतसे खानदानी रब्त-जब्त है, अब भी एक लीगी नेताकी बीबी हो) आखिर इस भुखमरीका, कगालीका भी इलाज है? अब यह बर्दाश्तसे बाहर है। घर खाली है, बक्स खाली है, पेट खाली है, जेब खाली है, और किसीके भरनेकी उम्मीद नजर नहीं आती।

बेकारीका राक्षस मुँह खोल चुका है। फटेहाली गज़भर फासलेसे घूर रही है। दफ्तरोंके स्टाफ पतझडके बेकार पीले पत्तो-से झड रहे है, ऑफिसकी डबल-रूटीन जिनकी जिदादिली चूस चुकी है। आये दिन 'रोटी दो, कपडा दो' का शोर मचता है, मचकर रह जाता है। तगी दबाती चली आ रही है, हमारी आदमियत इस बोझसे दबी दम तोड़ रही है ....और वतनके लीडरोंको हमारी फिक्र नही, उन्हे अपने झगडोसे फुरसत नही! अपनी टेक (कितना स्वार्थ है सलमा!), अपनी बात रखनेके लिए यह प्यारा लहू, यह इसानका लहू इन ककरीली सड़कोकी दरारोमे भरा-जाता है...... पैरों रोदा जाता है......

वह कौन-सी वहशत है जो अच्छे-भले इन्सानको खूँखार बना देती है? सदियोसे सीखी हुई तहजीब एक लमहेमे भुलाकर इन्सानमे खुदगर्ज खूँखार इन्सान जाग उठता है। लाशे तडप उठती है। घर वीरान हो जाते है। बच्चे यतीम हो जाते है। बीबियाँ लावारिस हो जाती है।

दिलोपर पड जाते है वह गहरे नासूर जो फूटते नहीं, रिसते रहते है।

यह दरारे, यह वह खाइयाँ है सलमा, जो पूरी नही जा सकतीं। कैसे पुरे मरने वालेकी यादे ? कैसे मुमकिन है मिट जाय उनकी तसवीर !

यही एक ख्वाजा साहब रहते है। नजमा उनकी एकलौती लडकी है। खासी सुन्दर लडकी है। उस दिन बम्बईके दंगेमे बेचारीका पति मारा गया! सलमा, सलमा! उसका दुःख, उसका विलाप मुहल्ला हिलाये देता है।

जानती हो क्या कहती है—"हाय अब्बा, जमील मारा गया! मैं जमीलको खोकर इस पाकिस्तानसे क्या भर पाऊँगी!" और सलमा! हम अपने खून और जिन्दगीकी कीमतपर पालकर उन प्यारोको इस खूँरेजीके हवाले कैसे कर दे.. ...और इस पाकिस्तानसे लोगोको नाराजी क्यो है, मैं समझ नही पाती। बच्चे नादान रहते हैं, साथ-साथ निभ जाती है। वही जब बडे हो जाते हैं, स्वार्थोंकी टक्कर होती है। हकोपर चोट पडती है। एका चटख जाता है।

बुजुर्गोंका दिल गवाही नही देता। पर वे बच्चे तो अलग होकर रहते है। जवान लडके जब घर-द्वार लेकर अलग रहना चाहे तो उन्हे रोकना कहाँकी अक्लमन्दी है। अपने पसन्दका घर, अपने पसन्दकी जिन्दगी, यह तो हरेकका हक है। उसको दबाना कहाँका इन्साफ है ? मुझे ज्यादा बातें तो नहीं आती है। राजनीति जाननेको फुरसत ही कब मिली ? फिर भी इतना तो समझ पाती हूँ कि जबतक समाजके इस सदियो पुराने ढाँचेको बदला नही जाता नये इन्सानकी नई माँगे, नई उमगे उसमे फिट नहीं कर सकतीं। यह तो जरूरतके मुताबिक नई चीजमे ही मिल सक्ती है।

जमीनका बटवारा ही खुशहाली नहीं ला देगा। उसके लिए तो नया हिन्दुस्तान बनाना पडेगा और यह नया हिन्दुस्तान क्या इन पुराने दिमागोसे हासिल होगा जिन्हें आज हम जवानोकी

दिखाई राहपर चलनेमे एतराज है ? ज़मानेके साथ इन्सानकी जेहनियत बदलती है, सभ्यताके हरबे-हथियार बदल जाते है और सदियो पुराने दिमाग़ उस सत्यको भी नही मानना चाहते। वे माने या न माने, जब जरूरत होती है राह बन ही जाती है, और आज जरूरत है तो राह आप बनती जा रही है। लीडरोंको तो अपनी-अपनी है, और इस बीच हमारी हालत बदसे-बदतर होती जाती है। दम तोडने को आ पहुँची है। आज हमलोग किस तूफानसे गुजर रहे है, उसे न पूछो सलमा ! तुम रईस हो, रईसजादी हो। रोमान्स और हकीकतका कोई मुकाबला नहीं है।

मेरा तुम्हारा भेद खतोंसे जाहिर है। मेरी इतनी दास्तान सुननेके बाद भी मुझे बताती हो अहमद मेरे बारेमे क्या कह रहे थे। बख्शो मेरी जान। मुझे सब पता है। वह सैलाब, वह जुनून! कभी मै भी जवान थी। दुनियाके जर्रे-जर्रेमे रोमान्स नजर आता था ..और आज मन इन्सानियत खोजता है। राशनकी दूकानपर कपड़ेकी धक्कम-धक्कामे जब कोई टकरा जाता है तो बेचारेपर तरस आ जाता है। उसकी नजरोमे रोमान्सकी खोज। वह दिन बीत गये...मै कह रही थी...ठहरो.. देखो कोई आया है दरवाजे पर। दो मिनट, अभी...

हॉ राजेन था। इसे क्या हो रहा है सलमा ! मुझे बडा डर लगता है—राजेन वह लकडी है जो झुकती नही, टूट जाती है...और इतने मासूम दिलोका आजके हिन्दुस्तानमे क्या गुजारा है। चुप पडा है। कल पूछ रहा था कितने रुपये हैं मेरे पास। तुमसे भी नहीं छिपाऊँगी.. कुल ५७।।=) है। मै इस राजेनको बहलाना चाहती हूँ, पर कैसे ? यह नही समझ पाती... . और आज तो कलसे यह अशोक भी बीमार है। रह-रह कर कहता है, गला जकड रहा है। न मालूम इसे भी क्या हो रहा है। हरारत तो ज्यादा नही है... ..

इसकी जरा-सी बीमारीपर मेरे होश बिगड जाते है। न जाने क्यों यह राजेनका अशोकपर हदसे ज्यादा प्यार कभी-कभी डरा देता है। राजेन इतना बदकिस्मत क्यो है सलमा, जिसका दुनियामे मुझे और अशोकको छोडकर कोई नही! .एक मिनट देखो, फिर खॉस रहा है. . अशोक. अशोक...

अच्छा सलमा, फिर लिखूँगी। इधर वक्त कम मिलता है, इसलिए सोचा आज ही लिख लिया जाय, फिर जाने कब फुरसत हो।

यह अशोक न जाने कैसा-कैसा कर रहा है। फिर सलमा, मुझे अब कुछ कहना बाकी नही है। तुमने अब सब जान लिया।

फिर लिखूँगी, यह अशोक आज न जाने क्या कर रहा है जवाब देना!

सलमा मेरा प्यार!

—प्रीति

[तीन]

नजीर मजिल,
नजरबाग,
लखनऊ

सलमा!

कहर बरपा हुआ सलमा इस नाचीज इमारतपर, और वह ढह गई, बिना किसी शोर-गुलके। अशोक मर गया! आज दो दिनसे राजेनका भी पता नहीं है। उस रात जब तुम्हे खत लिख रही थी, हलकी हरारत थी। गलेमे खराश बता रहा था। सवेरा होते होते डिपथीरिया हो गया सलमा। पर मै यह तब न जान सकी। राजेनकी ऑखमे एक बूँद नही आई। आखिर वक्त जब उसे रह-रहकर ऐठन हो रही थी उसने यकायक हाथ फैला दिये। मै झुकी, सोचा शायद कुछ मुझसे चाहता है, पर अशोक चारो तरफ देख रहा था, राजेन झुका। अशोक गलेपर झूल गया।

आखिरी बार (अशोक!) राजेन अपने दोस्तसे मिला और निर्जीव शरीर बिस्तरपर रह गया।

जिन्दगी क्या है सलमा! कल तक जो हममे से था आज दुनियामे उसका कोई हिसाब बाकी नही। लोग घर बदल देते हैं, सामान फेक देते है...जो बीत गई सो बात गई...और मै यहॉ क्या-क्या हटाऊॅ? जर्रे-जर्रेमे अशोक रम रहा है। इस घरमे हमसे ज्यादा उसकी सॉस रौशन थी।

बीमारीकी हालतमे उसकी सॉस जब घुट-घुट जाती, गलेमे खर-खर कफ खरखराता, और वह छटपटाकर सॉसके लिए बिस्तर पर तडपता। उसके धारो ऑसू बह चलते और हम असहायसे पास खड़े थे बिल्कुल लाचार. ....और हमारा बच्चा हमारे सामने तडप रहा था।

हम उसका इलाज भी न करवा सके सलमा! यही कलंक रह-रहकर आता है। हम उसे जिन्दगीमे कुछ न दे सके तो सलमा वह मौत भी अकेला ही झेल ले गया।

हमारे पास कुल ५७||=) थे और एक इजेक्शन २५) का आता है। छः इजेक्शन! हम इतना कहॉ पाते सलमा! मेरे पास जेवरके नाम एक छल्ला नही है, तुम्हे तो मालूम है. अमीरी लुट चुकी थी जब घर छोडा। और यह राजेन क्लर्क-पेशा, पेटकी रोटी ही नियामत थी।-पैसेकी कीमतका आज ख्याल हुआ जब मै अशोककी जानसे हाथ धो बैठी। आह पैसा! मेरा अशोक पैसे-पैसेको तरस गया। मामूली खिलौने तक न दे सकी। उसके कपड़े दबा-दबाकर रखती रही और वे अब तक पडे है। पहननेवालेकी दरकार खतम हो गयी। मेरा यह बच्चा सलमा तस्वीरो वाली किताब तकको तरस गया...

खीचा पैसा उसके भी काम न आ सका। हम उसका इलाज भी न करवा सके सलमा! राजेन पागल होकर दौड़ा। घर-घर मॉगा और

मायूस होकर लौट आया। उसका प्यारा अशोक तकलीफसे छटपटाता था और राजेन बापका दिल लिये बुत-सा खडा ताकता रहा।

दिया बुझ चुका था। घर भरपर मौतका अँधेरा छा गया था। अशोकके जिस्ममें अब भी गर्मी बाकी थी। मुझे यकीन नही हो रहा था। यह ख्याल कि जिसे हम प्यार करते है वह अब नही है, कितना डरावना होता है। Ah God ! what a fearful thing, to see a human soul take wing

सलमा, मौत किसीके बसकी बात नही। जो पैदा होता है वह मर भी जाता है। पर जो बीमार दवा भी न पा सके उसके माँ-बाप वह सदमा नही भूल सकते। मै सोचती हूँ सलमा, काश हम उसकी दवा करा पाते तो वह बच ही जाता। रह-रहकर यही ख्याल मुझे बेचैन कर देता है। एक हूक-सी कलेजेमे उठती है। लगता है, पकडते-पकडते कोई चीज हाथसे निकल गई।

जरा-जरा-सी बात। उस दिन उलझ रहा था—'मुझे बाल ले दो।' रो-रोकर रह गया और सलमा नही ले दी बाल। सारा बाजार घुमा, बेवकूफ बना लौटा लाये। घर तक पूछता आया, 'कब तक मँगा दोगी ?' कह दिया, अगले महीने ले देगे और अगला महीना कहाँ आया, खिलाडी पहले ही चल दिया।

राजेनका दुःख मामूली नहीं है। उसका बच्चा जरा-जरा-सी चीजको तरस गया और जिन्दगीमें ही नहीं, वह बिचारा तो कफन भी नही पा सका।

किसी त्योहारकी छुट्टी थी। ऑफिस बन्द थे। न परमिट मिली, न कफन। यह अशोक इस तगीमे यों "कज़ा ले चली चले". . सा बीत गया! औरोंके बच्चे खाते थे, पहनते थे, वह देख-देखकर रह जाता था। अपना बचपन याद आता था। यह बदकिस्मत अशोक तगी और तेजीमे

ही चल दिया। और इसका चला जाना यो जिन्दगी वीरान कर जायगा यह तो उस वक्त समझ ही नही पडा था।

एक गजभर सफेद पापलीनमे—जो उसीके कमीजके लिए पडी थी—उसे लपेटकर लोग जब चल दिये तो लगा कि दिलमे दरार पडती चली गई।

मौतकी जुदाई तो रातके सन्नाटेमे, कमरेकी नहूसतमे, समझ पडी। हिप्नोटाइज-सा राजेन पीछे-पीछे चला गया...और उसे जब बच्चेको झुलाकर फेक देनेको कहा गया तो वह रो पडा। नही फेक सका। किसी और ने फेक दिया। मुर्दा! जो अपना नही, उसका क्या मोह?...

सलमा! आज तीन दिन बीत गये। जिन्दगीकी घडी चार बजकर दस मिनटपर रुक गई। फिर तो आगे-पीछे सब शून्य है। दिमागमें सोचने की क्रिया जारी थी वह खतम हो गई। कुन्दे-सी पडी थी। अब लिखने बैठ गई। क्या करें, कुछ अकल काम नही करती।

राजेन दूसरे दिन ही चुपकेसे कही चल दिया। दो दिन-रात पागल-सी ढूँढा की, पर वह न जाने कहाँ है। कब लौटकर आई नहीं मालूम। होश आनेपर अपनेको घरपर पाया।

यादगारोकी कब्र! यह मकान मेरा दम घोट रहा है। अकेली हूँ—बिल्कुल अकेली। दुनियामे अपना कोई नही। जिन्दगीकी गाडी मजिलके उस सुनसान मोडपर आकर बिगड गई जहाँ वीरानगी और खाकके सिवा कुछ नजर नही आता। अब बाकी राह पूरी भी नही होगी। सफर पूरा करनेको दम कहाँ पाऊँगी सलमा! वह खडहर हूँ जो भाँय-भाँय कर रहा है। बसनेवाले चल दिये। ढह जाना बाकी है।

जो कभी नही सोचा आज उसके बिना कोई चारा नही। खुदकुशीको इतना बुरा क्यो बताते है? जब रौनक न हो, चहल-पहल न हो, तो सुन-सान ठूँठ चाहे खडा रहे, चाहे गिर जाय। दुनियामें जब कोई इस्तेमाल

न हो, तो कोई क्यों जिये ? जिन्दगी चट्टान-सी बोझिल [illegible] लादे फिरनेकी हिम्मत चुक गई है। बेसुरा राग जिन्दगी भर अलापनेसे अच्छा है, वह लय खतम कर दिया जाय .जिन्दादिली ही जिन्दगी है, वरना दुनिया बेरौनक बनानेका हमे क्या हक है ?

मै खुदकुशी कर ही लूँगी। यह चमन बेवक्त उजड गया। अब और कोई हसरत बाकी नही, और कौन-सी तमन्ना घर आई ? अपनेको मिटाकर भी घिसटनेके सिवा क्या मिला ? मै राजेनसे भी बदकिस्मत हूँ—जब तक मै और अशोक उसके आश्रित थे। राजेन यो चल देगा इसका मुझे गुमान भी न था।

सलमा ! राजेन अशोकको जलराशिके हवाले कर लौटा तो यही आकर चुप पड गया। अशोककी बीमारी, उसकी मौत और बेकारीकी तबाहीमे तीन दिनसे उसे खाने तकका ख्याल न था। रात हो आई थी। सरसे पॉव तक पसीनेसे भीगा जमीनपर यहीं पड़ा था। दोनो हाथोपर सिर टिकाये ऊपरको ताकता रहा। उसकी वह वहशियाना सूरत। मेरी हिम्मत नहीं पड रही थी। पास जाकर पूछा "क्या सोच रहे हो राजेन ?" "सोचनेको बाकी क्या है ?" उसका जवाब था। मैंने सोचा, उसे ख्याल बदलना चाहिए, वरना राजेन-सा कमजोर दिल यह सदमा बरदाश्त नहीं कर सकेगा।

धीरे-धीरे उसके सिरपर हाथ फेरा तो वह एकदम उठकर बैठ गया। बैठा रहा। फिर यकायक बोला, "प्रीति ! अशोकके बगैर मै जिन्दा नहीं रह सकता। जिन्दगी धकेलनेमे अशोकका बड़ा हाथ था। यह अशोक मुझे जिन्दा रखे था...अब...अब क्या करूँगा ?" बेबसीकी कसक आँखो-मे उमड आई। मै समझाने लायक भी न थी। एक बेहूदा-सी बात मैने कही, "राजेन, तुम खुदको सँभालो। बच्चा तो बडी बात नहीं।"

मैं आपेमें नहीं थी सलमा। चाहती थी, राजेन फूट पड़े। वरना यह आग धधक-धधककर उसे स्वाहा कर देगी। और वह पागल हो रहा था। मुझे इसका पता न था। एक ही धुन थी उसे—"मुझे बच्चा चाहिए।"

राजेनके लिए मुझे इनकार नहीं हो सकता था सलमा! मै आपेमें नहीं थी। दिमागमे लकवा लग चुका था। मतलब समझनेकी ताब शायद हम दोनोमे नहीं थी।

उसका पसीनेसे भीगा बदबू मारता जिस्म जब नजदीक आया, मुझे अपने इस नारी-शरीरपर एक भारी छी-छी अंतरमे जान पडी। अशोककी लाशपर मानव-निर्माण!...मै छिटककर दूर जा पडी। और उसका तो दिमाग़ खराब हो चुका था। मै पडी-पडी सिसकती रही। एक बेहोशी, थकान। कब सो गई, नहीं मालूम। यकायक राजेनकी चीखसे नींद उचट गई। वह भागता दरवाजे तक चला गया। मै बैठीकी बैठी रही। वह लौटकर चौखट पकडकर खडा हो रहा। फिर आकर करीब बैठ गया। मुझसे बोला, "अशोक था। मै दरवाजे तक गया। वह न जाने किधर चला गया।"

परिस्थितिकी भयङ्करता बिजली-सी दिमाग़मे कौंध गई। यह राजेन पागल हो गया था! और सलमा, जिन्दगीका सारा दुःख, अभाव, तकलीफे भयानक रूपसे आँखोंके आगे फिर गईं। मुझे रोना आया। जीवन भर कभी इतना रोना नही आया। और अब तो सारी जिन्दगी ही चुक गई।

राजेनकी चेतना लौट पडी। बोला, "प्रीति मेरा दिमाग़ खराब हो गया। तुमसे अभी बच्चा माँग रहा था। पर मुझे हक क्या है? मैंने अपना बच्चा मार डाला! खाना, कपडा, दवा, मै तो कफन भी न दे सका!"—गला भर आया। एक गहरी साँस लेकर बोला, "मै नालायक हूँ प्रीति। इस कमजोरीपर मुझे घर बसा तुम लोगोंको घसीटनेका क्या

अधिकार था, और उसको.. " उफ सलमा, मेरा कलेजा मुँहको आ रहा था। मेरी पीठपर हाथ रखकर बोला, "प्रीति, तुम्हें क्या दे सका? अब तो यह अशोक मुझे खतम कर गया। मेरा दुनियासे रिश्ता टूट गया। उस असहाय बच्चेको कुछ न दे सका। तुम तो समझदार हो, तुम मुझे माफ कर देना। कुछ दे न सका, पर वह लाचारी थी।"

बात खतम हो गई। रोई भी, जितना रोया जा सका। अब तो आँसू भी चुक गये। बाकी है एक जलन। चुपकेसे वह कब कही निकल गया, नहीं मालूम। और अब मेरे पास इस जिस्मके सिवा कुछ नही है।

पेटमे एक दाना नही, पास एक कौडी नहीं। भाग्य मानती नहीं हूँ। फिर भी वह जो इस हरे-भरे घरको उजाडकर बरबादीकी ख़ाक उडा गया उसके प्रति एक प्रतिहिसा है। मेरा पति, मेरा लडका, इस तगी और कगालीके शिकार हुए, यह घर खडहर हो गया। एक मेरा नहीं, लाखो घर यो ही तबाह हो रहे है। अशोक जब बीमार था, राजेन इजे-क्शनके लिए सारे दिन दौडता फिरा, लेकिन नहीं पा सका। चोर-बाजारकी कीमत हम अदा नहीं कर सके। हमने हाथ-पैर भी जोडे। वह दूकानदार, हमारा ही पडोसी, एक ख़ासा मशहूर लीडर है। पूरा केमिकल वर्क्स चलता है उसका। और उसका दिल नही पिघला। सौदा सौदा ही था। हमारा बच्चा तडपता रहा। बगलके घरमे ढेरों दवा पड़ी रही। राजेनका खून खौल रहा था। दूसरा कोई वक्त होता तो वह हाथ चला बैठता। पर रह गया, और अब न जाने कहाँ है सलमा? क्या लिखूँ, सब तो लिखा जा चुका। जिन्दगीका ड्रामा ख़तम हो गया। तडप-तडपकर मुझे मरना बाकी है। हम मर जॉय तो सलमा, हम गरीबोको याद कर लिया करना। मेरी यादको तुम बची रहोगी, मुझे यकीन है। लीडरो तक मुफ़लिसी और मौत नही पहुँचती!

मेरा आखिरी प्यार सलमा—आखिरी ही है। मेरा पार्ट बुरा या भला अदा हो गया। कोई हसरत, कोई तमन्ना बाकी नही है। राजेन कही भी हो, मुझे यकीन है उसके पहले मै ही चल दूँगी इस दुनियासे।

—प्रीति

सलमा !

अभी-अभी लहू-लुहान राजेनको लोग पकड़ लाये है। उस दवा-फरोशसे वह फौजदारी कर बैठा। बच्चेकी मौतके उस गुनहगारको राजेन माफ़ नही कर सका। बस.

मेरा दिमाग़...मेरा दिमाग घूम रहा है...हाथ जवाब दे रहे है... मै...मै...मेरे...

राधाकृष्ण प्रसाद

आरा (बिहार) मे जन्मे राधाकृष्ण प्रसादकी प्रारम्भिक शिक्षा बगलामे हुई। पटना विश्वविद्यालयसे एम. ए. कर आपने 'बालक' पत्रका सम्पादन किया और तदनन्तर बिहार सरकारके प्रचार विभागसे सम्बद्ध हो गये। सम्प्रति आकाशवाणीके इन्दौर केन्द्रमे ड्रामा-प्रोड्यूसर है। पर्यटन और पठन-पाठनकी ओर विशेष रुचि रखते हैं।

वातावरणका सजीव चित्रण, सरल किंतु प्रभावपूर्ण अचूक व्यग्य, और कहानी कहनेकी सीधी-सहज आडम्बरहीन शैली राधाकृष्ण प्रसादकी कहानी-कलाकी प्रमुख विशेषताएँ है। आपकी छोटी सक्षिप्त और मार्मिक कहानियोको पढ मन एक गहरी उदासीसे भर उठता है और मनका सोया दर्द जैसे जाग उठता है। अनेक कहानियोका विभिन्न भारतीय भाषाओमे अनुवाद हो चुका है।

सात कहानी-सग्रह ('देवता', 'विभेद', 'अन्तरकी बात', 'खरा और खोटा', 'कटे पख', 'समानान्तर रेखायें' और 'केश-बहारका एजेण्ट'), तीन उपन्यास ('आदि और अन्त', 'टूटती कड़ियाँ' और 'हे मेरे देश') और लगभग बीस बालोपयोगी पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है। चीनी उपन्यास ('रिक्शावाला') का अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है।

• फुलबरिया

—राधाकृष्ण प्रसाद

उदास, मटमैला वातावरण वहाँ निरन्तर छाया रहता है। गाँवपर मानो मनहूसियत बरसती है। कच्ची पगडंडियाँ है। गर्मीमे धूल उडती है। बरसातमे कीचड़की बाढ़ आ जाती है। यदि आप किसी कारणवश उस गाँवमे पहुँचे तो वहाँकी स्तब्धता आपके हृदयको थका देगी। बाँसके लम्बे और घने वृक्ष आपका स्वागत करेगे और एक रहस्य भरी मर्मर आवाज आपके प्राणोको आतंकित कर देगी।

गाँवके चारो ओर गढ़हे है और बरसातका पानी उनमे जमकर सड जाता है। उस सडे हुए, दुर्गन्धयुक्त जलपर अनेक रोगोके कीटाणु पलते है और ये कीटाणु रङ्ग-विरङ्गके है।

यहाँके निवासियोको देखिए। मलेरियासे पीड़ित इनकी पीली आँखोमे जीवनके प्रति एक उपेक्षाका भाव मिलेगा। एक ऐसी थकान इनके चेहरे पर है जिसे देखकर मनमे सिहरन हो उठती है।

ऐसे गाँवमे आकर शहरका कैसा भी आदमी उदास हो सकता है। फिर निरजनने तो कभी देहात देखा हो नही। जन्मसे ही केवल शहर देखता आया। बाप किसी ऑफिसमे किरानी थे। मरे तो सचमुच निरञ्जन को भी मार गये।

लडकपनसे ही वह उडनछू प्रकृतिका आदमी रहा है। तीन बार मैट्रिकमे फेल हुआ। बीज-गणितके बीज पहिचाननेकी अपेक्षा फुटबॉलकी बारीकियोसे वह अधिक परिचित रहा। फलतः परीक्षा नामक चीजसे उसकी जन्म-जात शत्रुता रही।

बूढे अनुभवी बापने अपनी जिन्दगीमे बहुत कोशिशे की ताकि लडका वशको न डुबो दे। निरञ्जनके और दो भाई थे जो उससे समझदार थे और जिन्होने मैट्रिक रूपी वैतरणी पारकर वशकी किरानी-परम्पराको सजीव रखा था। एक निरञ्जन ही ऐसा हतभागा निकला जो किरानी होनेका सौभाग्य न प्राप्त कर सका। कायस्थ-परिवारके अकिञ्चन, मैट्रिक फेल लडकेको कौन ऐसा उदार श्वसुर मिलता जो अपनी लडलीको सौप धन्य मानता ? अतः निरञ्जनके हाथ पीले नही हो सके और इसी शोकमे उसकी वूढी माँ मर गई। पिता भी थोडा आगा-पीछा सोचकर मर गये।

बडे भाईके आसरे निरञ्जन आखिर कबतक रह सकता था ? बडी भौजाईका चेचकसे भरा गोरा मुँह निरञ्जनको देखकर बैलून हो जाता था और समय-असमय, परोक्ष-अपरोक्षमे जो बाते वे कहती थी उनमे श्लेष और वक्रोक्तिकी मात्रा बहुत अधिक रहती थी।

हार मानकर निरञ्जनने होमियोपैथी पढनी शुरू की। किरानी न हुआ—न सही, होमियोपैथ डॉक्टर तो हो सकता है ! और कुछ ही दिनोमे लम्बी-चौडी एक डिग्री भी उनसे खरीद ली। अब वह डॉक्टर निरञ्जन था और हमेशा दवा और रोगियोकी बाते सोचता था।

पर डॉक्टर हो जानेसे ही क्या होता ? उसके लम्बे-चौडे साइन-बोर्ड और उधार माँगी हुई कुर्सियाँ किसी मरीजको आकर्षित करनेमे असमर्थ साबित हुई। जब दो-तीन महीनेका दूकान (या डिस्पेसरी ?) भाडा भी घरसे देनेकी नौबत आई तो भाई-साहबका धैर्य छूट गया। बोले—"साइन-बोर्डको किसी बढईके हाथ बेच दो निरञ्जन, और दवा सब अपने लिए रख छोडो। और कुछ नही कर सकते तो कमसे कम इतनी मेहरबानी करो कि चुपचाप जैसे थे, वैसे पड़े रहो। तुम जानते हो कि कुल मिलाकर मुझे ७६।।) महीना मिलता है। तुम्हीं ये रुपये लेकर बजट बनाओ। नन्हेंकी स्कूल-फीस दो महीनेसे बाकी है और नन्हेकी माँकी साडी. . ."

निरञ्जन सिर झुकाकर वापस लौट आया । ग्लानि और चिन्तासे उसका मन जर्जर था । चौबीस वर्षका जवान होकर भी वह कितना पगु है... कितना अपदार्थ !..

× × ×

गॉवका नाम है फुलबरिया । यह नाम कैसे पडा, यह अनुसन्धानका एक विषय है । पर इतना सत्य है कि फूलोंकी कोई पृष्ठभूमि इस गॉवके इतिहासमें नहीं ।

निरञ्जन कैसे इस गॉवमे आया, यह भी एक नाटकीय घटना है । अपने ही पेशेके एक प्रौढ सज्जनने उसे सलाह दी, "भले आदमी, शहरमे कहीं होमियोपैथी चलती है ? भागो यहॉसे, नही तो तुम्हारी दवाओमे जग लग जायगी ! जानते हो, एक दिन मै भी तुम्हारी ही तरह नादान था । तुम तो शायद मैट्रिक तक पढे हुए हो । मै अपर फेल हूँ । धर्मपत्नीके गहने गिरवी रखकर मैंने भी शहरमे प्रैक्टिस शुरू की थी । पर सालभर तक जब धेलेकी आमद नही हुई तो मेरी नीद टूटी और गॉव भाग गया । आज जानते हो, भगवान्‌की दयासे मेरी क्या औकात है ? तुम्हारी ही उम्रका मेरा एक बेटा एम. बी. बी. एस. मे पढ रहा है । शहरमे एक दुमंजिला मकान मैने खरीदा है . .. "

इसी प्रौढ़ सज्जनने उसकी मदद की । दूकानका भाडा चुकता किया गया और उनकी ही सलाहसे वह घरसे तीन सौ मील दूर एक अनजान देहातमे आ धमका ।

प्रारम्भके दिन तो बहुत ही दुःखदायी रहे । निपट गॅवारकी जिन्दगी! निरञ्जन सचमुच रुँआसा हो गया । अपने भाग्यपर उसे झुँझलाहट आई । यदि वह भी मैट्रिक पास कर पाता !...फिर ये दिन उसे क्यो देखनेको मिलते ?

पर धीरे-धीरे निरञ्जन अभ्यस्त हो चला। फुलबरिया गाँवका उदास, धूमिल वातावरण जैसे उसका चिर परिचित हो! उस गाँवके जीवनकी शून्यतासे जैसे उसका आश्चर्यजनक मेल हो!

उसकी प्रैक्टिस जमने लगी। गलेमे चमड़ेका स्टेथस्कोप लगाकर गम्भीर मुद्रामे जब वह भयभीत और आतंकित चेहरेवाले मूढ ग्रामीणोंकी ओर देखता, तो उसके ओठोंपर एक अजीब तरहकी मुसकान दौड जाती।

पता नहीं, यह उसकी दवाका परिणाम था या मनोवैज्ञानिक प्रति-क्रियाका, जिसके फलस्वरूप उसके रोगी शीघ्र ही अच्छे हो जाते। निर-ञ्जनका नाम आस-पासके गाँवोंमे भी फैलने लगा। एक-डेढ महीनेकी प्रैक्टिसमे ही उसके पास इतने पैसे हो गये कि उस प्रौढ अथच दयालु सज्जनका कर्ज उसने चुकता किया और पच्चीस रुपयेका मनीऑर्डर भाई साहबके नाम भेजा। लौटती डाकसे वेलूनकी तरह समय-असमय फूल उठनेवाली नन्हे की माँने आशीर्वादोकी झडी लगाते हुए पोस्टकार्डमे लिखा था कि निरञ्जन जैसे लायक लडकेसे यही उम्मीद थी।

× × ×

दूसरा महायुद्ध समाप्त हो गया था। भारत आजाद हो चुका था पर उसके दुर्गुण जैसे दुगुने हो गये थे।

निरञ्जनने देखा—सारा फुलबरिया जैसे और भी धूमिल होता जा रहा है। खेतोंका अनाज पता नही कहाँ चला जाता था! पीले, दुर्बल और अज्ञानमे डूबे इन हताश ग्रामीणोंको देखकर निरञ्जनका मन जैसे बर्फ हो जाता।

यहाँ रास-रंगकी किसे फुरसत थी? सन्ध्या होनेके साथ ही मिट्टी-तेलके अभावमे सारा फुलबरिया जैसे एक शवका रूप ले लेता। यदा-कदा रग्घू साऊ या ऐसे ही दो-चार महाजन या जमींदारके कारिन्देके घरसे धुँआती लालटेनोंका मटमैला प्रकाश चमक जाता।

घर-घरमे रोगी। सन्ध्या होते ही सियारोंका कोरस-गीत शुरू हो जाता और निरञ्जन अपनी छोटी-सी लैम्पके सहारे दवाओका सूचीपत्र अन्यमनस्क होकर पढा करता। कभी-कभी झुँझलाकर सोचता—यह भी कोई ज़िन्दगी है?...शहरमे और न सही कम-से-कम सिनेमा-हाउसके पास खडे होकर शामके समय घण्टे-दो-घण्टे लता और सुरैय्याके रेकार्ड तो सुने जा सकते है। . कहाँ लताकी मीठी आवाज और कहाँ सियारोका कोरस?......

× × ×

ऐसी ही एक रातकी घटना है।

उस रात उसे नीद नहीं आ रही थी। अपने भाग्यकी विडम्बनापर वह उधेड-बुन कर रहा था। यह बात ठीक है कि उसके पास कुछ पैसे आ रहे है, और शहरका आवारा, अपदार्थ निरञ्जन आज डॉ० निरञ्जन है। पर उसके मनको शान्ति कहाँ है? एक देहाती नौकर उसने सस्तेमे रख लिया है। कच्चा-पक्का बनाकर वह चला जाता है। पर क्या उसके दिन ऐसे ही बीतते जाँयगे? नीरस, एकरस, शुष्क? बजर जमीनकी तरह क्या उसकी जिन्दगीमे हरियाली नही आयगी?...और तब थोडी सेक्सकी अनुभूति उसे बेचैन कर जाती है और वह बिछावनपर करवटे बदलता है ..

"डागटर बाबू!" अँधेरी रातको छेदती हुई एक भर्राती, बूढी आवाज थर्राकर निरञ्जनके कानोसे टकरा गई। कुछ देर तक निरञ्जन सहमा रहा! फिर दरवाजा खोल दिया। अपने टार्चके प्रकाशमे देखा—एक पचास-साठ सालकी बुढिया आँसू बहाती हुई ठंडमे काँप रही थी।

रोती और काँपती बुढ़ियाने जो बाते रुक-रुककर बतलाईं उनका आशय यह था कि उसके जवान, इकलौते बेटेको आज कई रोजसे बुखार आ रहा है। इस समय उसकी हालत बहुत खराब है और बुखारमे वह मूर्च्छित पडा हुआ है। वह जातिकी दुसाधिन है और खेतोमे मेहनत मजूरी करके जीती है। घरमे ऐसी कोई मूल्यवान चीज नही थी जिसे बेच

कर वह डॉक्टर बाबूकी फीस जुटा सकती थी। घरमे एक पीतलकी थाली थी जिसे वह रग्घू सावके यहाँ बन्धक रखकर कुछ पैसे लाई थी। वे पैसे भी पथ्य इत्यादिमे खर्च हो गये। इस समय उसका बेटा बिना दवाके मरने को है।

बुढिया निरञ्जनके पैर पकडकर कॉप रही थी। उसके शरीरकी मैली और जर्जर साडीके छिद्र उसकी दशाके परिचायक थे।

निरञ्जन अन्तमे लाचार होकर और कुछ झुँझलाकर दुसाध-पाडाकी ओर चला। एक हाथमे दवाका बक्स था, और दूसरे हाथमे टार्च। सारे गॉवपर अलकतरे-सी काली और गाढ़ी ॲधियाली छाई थी। निरञ्जनका मन उस अन्धकारमे और भी खीज उठा। बिना कुछ प्रातिकी आशामे, ऐसी ॲधेरी रातको घरसे बाहर निकलना एक भावुकताकी ही तो बात थी! डॉक्टर यदि भावुक हुआ तो उसका काम चला! भावुक तो कवि होते है। पता नहीं, निरञ्जनके अज्ञात मनमे यह कौन-सा कवि बैठा था जिसने उसको चलनेपर बाध्य किया।

छोटी-सी फूसकी झोपडी। बुढियाकी झोपडीके ऑगनमे पहुँचकर उसने टार्चका प्रकाश घुमाया बिजलीकी गतिकी तरह एक नग्न, सॉवली युवती उठ खडी हुई और फटी टाटसे अपनी लाज छिपाती हुई बीमार रोगीके पाससे हट गई!

निरञ्जनका सिर जैसे घूम गया। रोगटे खडे हो गये और हाथ कॉपने लगा।

बुढियाने दबी आवाजमे कहा, "यह हमारी पतोहू है बाबू!"

रोगीके पास वह पहुँचा। जमीनपर एक फटा-पुराना कथा बिछा था और उसपर ककालके समान एक दम तोडता हुआ युवक पड़ा था। उसकी ऑखे भयानक रूपसे धुँधली थी और वे क्रमशः पथराती जा रही

थी ! प्रकाश देखकर रोगीके ओठ फड़फड़ाये—जैसे वह कुछ कहना चाहता हो !

बुढ़िया निरञ्जनके पैर पकड़कर चीख रही थी, "डागटर बाबू, मेरा बेटा !. "

निरञ्जन जैसे किसी भाव-समुद्रमे डूबा था। जल्दी-जल्दी एक दवा निकालकर बोला, "इसे खिला दो। फिर सुबह मेरे पास आना।" और इसके बाद वह तेजीसे निकल आया।

× × ×

उस रात फिर निरञ्जनको नींद नही आई। यह उसके जीवनकी कैसी अनुभूति थी ! वह उस रोगीको देखते ही समझ गया था कि यह कुछ मिनटोका मेहमान है। फिर व्यर्थ ठहरकर क्यो अपना समय नष्ट करता ?. .

सुबह बुढियाके बेटेकी मौतकी खबर मिली। जैसे इस खबरकी वह प्रतीक्षा कर रहा था। इस खबरने उसको उतना विचलित नही किया।

पर बिजलीकी गतिके समान भागती हुई वह नग्न युवती, और प्रकाशको पाकर एक मरते हुए कंकालके ओठोकी फड़फड़ाहट ?.

कपड़ेके अभावमे लज्जाका इतना वीभत्स रूप उसने कब देखा था ?. और मिट्टी-तेलके अभावमे मरते हुए व्यक्तिके ओठोकी फड़फड़ाहट ?... मरते हुए बेटेका मुँह अँधेरेमे, तेलके अभावमे माँ नही देख सकी होगी और अपने सुहागको लुटते हुए देखकर उस अन्धकारमें निराभरणा पत्नीने क्या सोचा होगा ?...

× × ×

यह फुलवरिया ग्राम !

निरञ्जनको महात्मा गाँधीकी वह उक्ति याद आ गई जिसे अपने कभीके किसी पाठ्य-ग्रन्थमे उसने पढा था—'भारतकी आत्मा गाँवोमे बसती है !'

"तो क्या भारतकी आत्मा यही फुलबरिया जैसा ग्राम है ?"—निरञ्जनने माथेपर बल डालते हुए सोचा ।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

उनतीस वर्षीय सर्वेश्वरदयाल सक्सेना कवि रूपमें इतने विख्यात हो चुके है कि अब अनेक पाठकोंको यह जानकर कदाचित् आश्चर्य हो कि वह प्रतिभाशाली कहानी-लेखक भी है। आपने बस्तीमे जन्म लिया। प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा भी वही हुई। अनन्तर अध्ययनार्थ वाया बनारस, प्रयाग पहुँचे। एम० ए० करनेके बाद पॉच वर्ष तक स्थानिक ए० जी० कार्यालयमे क्लर्की की, फिर ओल इडिया रेडियोके समाचार-विभागमे नियुक्त होकर दिल्ली पहुँचे। तबसे स्थूल रूपेण वहीं है—मन तो त्रिवेणी-तीर ही छोड़ आये है।

प्रारम्भमे कविताएँ लिखी, फिर कहानियॉ, अनन्तर फिर कविताओका दौर शुरू हुआ। अब लघु-उपन्यासोकी ओर प्रवृत्त हो रहे है। 'निकष-१' मे प्रकाशित उपन्यासिका 'सोया हुआ जल' की बहुत चर्चा रही। अग्रेजीमे भी अनुवाद हुआ। क्या कविता, क्या कहानी—हरेकमे विद्रोह-सूचक विषय-वस्तुके दर्शन होते है।

• कमला मर गई

—सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

"सुना है कमला मर गई।" मॉने अपने उस लम्बे-चौडे खतमे, जिसमे उसने तमाम इधर-उधरकी बाते लिखी है, एक कोनेमे यह भी लिख दिया है। जैसे इसके लिखनेकी उसने कोई जरूरत न समझी हो, और पता नही कैसे यह लाइन उसकी कलमसे निकल पडी हो। आकाशके अनन्त नक्षत्रोके बीच जैसे किसी तारेके टूटनेपर कोई कह पडे "देखा नही तुमने, अभी एक तारा टूटा था" और फिर अपने काममे लग जाय। एक बात थी जो सूचनाके रूपमे निकल पडी। उसके पीछे कोई विचार, कोई गहरी अनुभूति नही, केवल एक सूचना—सूचनामात्र।

मैने यह पक्ति पढी। कई बार पढी। कई ढगसे पढी, विभिन्न स्वराघात दे देकर पढी। सभव है कोई दर्द, कोई हल्की सहानुभूति इसके पीछे मिल ही जाय, पर लगता है सब निरर्थक है। इस पक्तिके पडे रहनेमे या निकाल देनेमे खतका कही कुछ बनता-बिगडता नही, वह अपनेमे पूर्ण है। और मेरी जिन्दगी भी है, ठीक इस पत्रकी तरह। कमलाका नाम कहॉ किस कोनेमे था बहुत ऑखे गडाकर देखनेपर, मस्तिष्कपर जोर डालनेपर ही पता लगता है, उसके 'रहने' ने इस लम्बे चौडे जीवनपर कहीं कोई प्रभाव नही डाला और आज उसके 'न रहने' ने कही कुछ ऐसा नही किया कि उसकी कुछ कमी खटके। लेकिन कमला 'मर गई'। यद्यपि यह 'मर जाना' शब्द मै दिन भरमे सैकडो बार सुनता हूॅ पर कमलाके साथ इस 'मर जाने' का सम्बन्ध कुछ अजीब लगता है। लगता है मर गई तो कोई बात नही, लेकिन अगर न मरती तो अच्छा था। यही औरोमे और कमलामे मेरे लिए

भेद है। वह जिन्दा थी, इस दुनियामे रहकर भी वह मेरे लिए नही थी, लेकिन आज मर जानेपर जैसे वह मेरे लिए कुछ हो गई हो। जबतक वह जिन्दा थी मैने कभी उसके लिए कुछ नहीं सोचा, लेकिन आज जब वह मर गई है, मै उसके लिए कुछ सोच रहा हूँ। उसकी जिन्दगीने तो नहीं, लगता है उसकी मौतने कही थोडा बहुत उसको मुझसे बॉध दिया हो।

एक घना कोहरा है मेरी ऑखोके आगे, जिसमें मै उससे सम्बधित स्मृतियॉ टटोल रहा हूॅ। एक घटना पकडमे आ रही है। मुझे आश्चर्य है कि यह घटना आजतक मुझे याद क्यो है? आजसे लगभग बारह वर्ष पूर्वकी बात है जब मै नौ या दस वर्षका रहा हूॅगा, कमलाका परिवार मेरा पडोसी था। मेरे घरसे लगभग दो फर्लाङ्गपर उसका घर था। उसकी मॉ और मेरी मॉमे बहुत पटती थी और अक्सर वे लोग एक-दूसरेके यहॉ आया-जाया करती थी। यही कारण हमारे-उसके सम्पर्कमे आनेका था। यूॅ बच्चोका सम्पर्क परिवारकी अपेक्षा अधिक शीघ्र और गहरा हो जाता है, फिर वह तो मेरी समवयवस्का भी थी। खेल-कूदमे हम लोगोको बहुधा एक-दूसरेकी जरूरत पडती थी। मै स्वभावसे ही गम्भीर था और जितना ही मै गम्भीर था उतनी ही वह चंचल थी। शामका समय था। मेरा मकान बहुत छोटा, खपरैलका था और वह भी एक गलीमे। इसीलिए प्रकाश जल्दी विदा ले लेता था। मै बैठा पढ रहा था। मेरा शिक्षक कोयलेसे भी अधिक काला था अतः ॲधेरा छाते ही मै लालटेनकी प्रतीक्षा करने लगता था क्योकि मुझे उसे देखकर डर लगने लगता था। उस ॲधेरेमे उसके काले-काले चेहरेमे उसके सफेद दॉत-रहरहकर चमक उठते थे, जब वह मुझे हिसाब लगाते समय कही गुणा-भागमे गलती करनेपर डॉटता था। उस समय मुझसे जरूर गलती होती थी। और साधारण गलतियोपर जब वह मेरे कान पकडकर चिल्लाता था तब मैं ऑखे बन्दकर चीख उठता था, दर्दसे कम लेकिन मॉ द्वारा सुनाई हुई राक्षसोंकी कहानी याद करके अधिक।

ऐसे अवसरोपर मै हिसाब भूलकर भगवान्की याद करने लगता था। उस-दिन ऐसा ही अवसर था जब मै भगवान्को याद कर रहा था। वह मेरे कान ऐंठ रहा था और कमरेमे अँधेरा छा गया था। तभी कमलाके पिता आये थे। उन्होने कहा, "मास्टर साहब, जरा इसे दो मिनटकी छुट्टी तो दे दीजिए।" मै प्रसन्न हो उठा, यह सोचकर कि भगवान्ने मेरी पुकार सुन ली। लेकिन मै ज्यो ही कमरेके बाहर प्रकाशमे आया, उनका चेहरा देखकर कॉप उठा क्योकि वह क्रोधसे तमतमा रहा था। मै बहुत डर गया और खडा होकर शायद सजाकी प्रतीक्षामे अपराधी-सा उनकी ओर देखने लगा, मुझे रुकते देखकर वे बडे कड़े स्वरमे बोले—"आइये आइये, रुक क्यो गये ?" और तेजीसे चल पड़े एक ओर गलीमे, जिसमे उनका घर था। कुछ तो डरसे और कुछ छोटा होनेके कारण मै पिछड़ जाता था। लेकिन उनकी निगाह घूमते ही मै दौडकर उनका साथ पकड लेता था। रास्ते भर वे मुझसे कुछ नही बोले, लेकिन वह दो फर्लाङ्गका रास्ता मेरे लिए कितना कष्टदायी रहा होगा, इसका अनुभव इसीसे किया जा सक्ता है कि वह आज तक मुझे याद है। उस गलीमे जिसमे अँधेरा उमड रहा था और मच्छर सूॅ-सूॅ कर रहे थे। मै कितनी बेचैनी लिये भाग रहा था, यह मै आज भी नही भूलता। सोचता था, कहीं कमलाने शिकायत तो नही कर दी है। कैसी शिकायत करेगी वह ? मैने उसे मारा तो है नही। फिर इधर मुझसे उससे झगड़ा भी तो नही हुआ। कभी सोचता था, शायद उसे कही चोट लग गई हो और उसने खुद बचनेके लिए मेरा नाम लगा दिया हो। कभी सोचता, हो सकता है उससे कुछ नुकसान हो गया हो, कोई चीज टूट गई हो, कोई चीज खो गई हो या कोई चीज चुराकर खा ली हो और खुद सजासे बचनेके लिए उसने मेरा नाम लगा दिया हो। बस इतनी ही मेरी उस समयकी मानसिक परिधि थी। इसके आगे मै नही सोच सकता था। परेशान और डरा हुआ, जब मै मकानमे पहुॅचा तो मैने देखा, मकानके बडे ऑगनमे

चारपाईपर उसकी माँ बैठी पानदान बन्द कर रही है। एक पतली छड़ी पासमें रक्खी है। उसके हाथ बँधे हैं और वह जोर-जोरसे सिसकियाँ भर रही है जैसे उसने बहुत मार खाई हो। उस समय उसे देखकर मुझे तरस नही आया, बल्कि मैं और डर गया। उसके पिताने कहा—"लो, इससे पूछ लो।"

माँने बड़े इतमीनानसे कहा, "तुम्हीं न पूछ लो।"

"मै क्यो पूछूँ? तुम्हीं अपनी बिटियाकी बहुत तरफदारी लेती हो। तुम्हीं पूछो न!" इतना कहकर वे तेजीसे घूमने लगे। थोडी देरके लिए सन्नाटा छा गया। सब चुप थे। केवल कमला सिसकियाँ भर रही थी। कोनेका अमरूदका पेड़, आँगनकी नीची-नीची दीवारे, अँधेरेसे भरा हुआ बरामदा, पिंजड़ेमें टँगा हुआ तोता सब मेरी तरह सहमे-सहमे नज़र आ रहे थे। मैने कई बार उसकी ओर आँख उठाई लेकिन वह आँखे नीची किये रोती ही जा रही थी। उस खामोशीसे मेरा डर बढ़ता जा रहा था। मेरी टाँगे काँप रही थी। आखिरकार उसकी माँ बोली, बड़े प्यारसे—"बेटा, तू कल यहाँ आया था। सच-सच बोलना!" पता नहीं क्यो मेरे मुँहसे आवाज नहीं निकली। वे फिर बोलीं—"जब हम और तारा तेरे घर गये थे, तब तुम और कमला साकल खोलकर चुपचाप मकानमें आये थे। झूठ मत बोलना, महरिनने सब देख लिया है। वह बता रही थी!"

मैने कहा, "जी हाँ।"

उनके बाप बोले, "तुमसे किसने कहा था आनेके लिए" उनकी आवाज बहुत कड़ी थी। घबराकर छूटते ही मैंने जवाब दिया, "कमलाने" क्यों? यह मै आज तक नहीं समझ पाया। शायद मेरे दिलमें डर रहा हो कि कहीं मेरे ऊपर आफत न आ जाय। उसके पिता मेरा उत्तर सुन-कर ज़ोरसे चिल्लाये—

"देख ली अपनी लड़कीकी करतूतें !" और उसकी ओर घूर-घूरकर तेजीसे घूमने लगे।

माँ बोली, "क्यों बुला लाई थी ?"

मैंने कहा, "यूँ ही खेलने।"

उन्होंने फिर पूछा, "क्या खेलने ?"

मैंने फौरन जवाब दिया, "घरौंदा।" क्योंकि यह दोनो बातें ही सही थीं। दीवाली समीप थी। हम लोग घरौंदे बनाते थे। मै हमेशा कागज, चमकीली पन्नी और दफ्ती आदिका घरौंदा बनाता था। मेरे पिताकी दूकान पर अक्सर शीशेकी पैकिंगमे चीड़के बक्स आते थे, जिन्हें वे एकके ऊपर एक रखकर कीलें जडकर आलमारी-सी बना देते थे। सामने झालर, दफ्तीके घर, नीले लाल कागजोंकी फूलपत्तियाँ, सुनहरी रुपहली पन्नियोंके सिहासन आदि। और इस प्रकार मेरा घरौंदा सजता था। माता-पिता भी थोड़ा बहुत हाथ बॅटा देते थे। दीवाली खत्म होनेके बाद खिलौने निकाल दिये जाते थे और हम इनमे किताबें रखते थे। कमलाने भी घरौंदा बनाया था लेकिन मिट्टीका। दो कोठेका घरौंदा था उसका जो दालानमें एक कोने मे बना था। लम्बे-लम्बे ईंटे रखकर उसने दीवाल बना ली थी। उसपर मिट्टी चढ़ा चूनाकारी भी हो गई थी। बीच-बीचमे गेरू घोलकर उसने फूल-पत्तियाँ बनाई थीं। चाँद-सूरज-तारे आदि घरौंदेके ऊपर दीवाल-रूपी आकाशमे बने थे। उस दिन मेरे घर पता नहीं क्या था। तमाम औरतें आई थी। कमला, उसकी बडी बहन और माँ भी आई थीं। सब लोग जब अपने काममें लगे थे। मै कमलाको अपना घरौंदा दिखा रहा था और समझा रहा था, कैसे उसमे पीतलकी घटी लगेगी, वह जब बजेगी तब भगवान्‌के खानेका समय होगा। भीतर कहाँ दीया जलेगा और कब ज्यादा रात हो जानेपर भगवान् सोयेंगे। कहाँ लक्ष्मी जी सोयेंगी, कहाँ गणेशजी सोयेंगे। कौन-सा तकिया-चादर लक्ष्मीजीका है, और कौन-सा

गणेशजीका आदि-आदि। मेरे घरौदेको देख-देख उसके मनमे अपना घरौदा भी दिखलानेकी उत्कण्ठा बढ रही थी। उसके घरौदेके लिए जब मिट्टी और गोबरका ढेर पडा था तब मैने देखा था। उसके बादसे मै उसके घर नही गया था। स्कूलके बाद घरका काम करना पड़ता था। नौकर था नहीं। गली पार करके ही बाजार था, अतः सुबह-शाम हल्दी, धनियाँ, नमक, कडुआ तेल, तरकारी आदि जो कम पड़ता था, लेने जाना पडता था। दुकाने परिचित थीं, ले आता था। शामको मास्टर, और खाली समय घरौदेमे जुटते थे। ऊपरसे माता-पिता कडी निगरानी रखते थे। घरसे बाहर निकलने नही देते थे। उनका ख्याल था इधर-उधरके लडकों के साथ खेलकर मै खराब हो जाऊँगा; गाली सीख जाऊँगा इत्यादि। खैर, मैं कमलाका घरौदा नही देख सका था। उसने कहा, "चलो मेरा घरौदा देख आओ। तुमसे तो अच्छा नही है, लेकिन मेरे गणेशजी तुम्हारेसे बहुत अच्छे है।" मैने कहा, "चल"।

और हम लोग किसी तरह साकल खोल घरमे घुस गये थे। घरौदेके सामनेकी चहारदीवारीमे एक बोरा बिछा था, जिसपर उसने अपने मॉकी कोई फटी धोती डाल ली थी। उसपर हम लोग बैठे थे और मै उसके गणेश जीको देख-देखकर हँस रहा था। कह रहा था, "गणेश है या घोघामल, तोंद निकली है उसकी"। और उसकी मिट्टीकी घंटी बजा मैने कुछ संध्याके मंत्र पढ़े जो मुझे सात वर्षकी उम्रमे ही रटा दिये गये थे। माता-पिता आर्यसमाजी थे, वैदिक संध्या पूरी-पूरी रटा दी थी और मै एक ईश्वर भक्तकी तरह कडे नियमसे छोटी घंटीमे पानी रख पूजा करता था और उसके बाद दरवाज़ा खुला देख महरिन काम करने आई थी और हम लोग उठकर चले गये थे। कुल इतनी ही बात थी। लेकिन उनके पिता मेरा "घरौदा," उत्तर सुनकर जोरसे चिल्लाये, "वह सब मै जानता हूँ।" और फिर अपनी पत्नीसे बोले—

"यह तो मै पहले ही जानता था। यह सब उसकी ही शरारत है, अभी दस वर्षमे ही उसके ये हाल है। बदमाश, चुडैल कहीं की। टॉग तोड दो उसकी जो यह कलसे घरसे बाहर निकले।" उसकी मॉ कुछ नहीं बोली, केवल मुझसे इतना कहा, "जाओ"। मैं मुक्ति पाये पक्षीकी तरह भागा। एक लम्बा दलान पडता था दरवाजे तक पहुँचनेमें। जब मै दरवाजे तक पहुँचा तो कमलाके चीखकर रोनेकी आवाज सुनाई दी। मै रुक गया। मैने उसके गालपर पडी हुई जोरकी चपतकी आवाज सुनी और उसके बाद उसके पिताकी जोरसे गरज, "मै पूछता हूँ आखिर कोनेमे छिपी घरौंदेमें बैठी उसके साथ क्या कर रही थी?" इतना सुनकर मै चला गया। मैं उस समय यह न समझ सका था कि आखिर हमने क्या गुनाह किया था, उनका क्या मतलब था। पर आज बात समझमे आती है और उनकी बेवकूफीपर तरस भी आता है। उसके बाद लगभग दस दिन बाद मेरी कमलाकी मुलाकात हुई, वह बहुत गभीर थी। उसकी चचलता पता नहीं कहॉ उड गई थी। वह मॉके पास अपनी बडी बहनके साथ कुछ लेने आई थी। मेरे कमरेमे भी वह आई। मै नई-नई कापियो पर काग़ज़ चढा रहा था। मेरे पास वह खडी रही चुपचाप खामोश। मैं भी चुपचाप था। यद्यपि उसे देखकर दिल उछल रहा था। उसने पूछा—

"तुम्हें तो नही मारा बाबूजी ने।"

मैंने कहा, "नही"

कुछ देर रुककर मैने फिर पूछा—

"तुझे मारा क्यो था कमला?"

वह बोली—"पता नहीं क्यो? कहते थे लड़कोंके साथ अकेलेमे नहीं खेलना चाहिए"। फिर वह चली गई। मैंने उस दिन अपनी मॉसे पूछा। उसने भी कहा—"लड़के लडकियोके साथ नहीं खेलते" और तबसे लडकियो के साथ खेलते समय मै सोचता, यह बुरा है और अक्सर अपने साथ

खेलने वाली लड़कियोंसे मै कह देता, "मै लड़का हूँ, तुम्हारे साथ नहीं खेलूँगा।"

उसके बाद फिर कमलासे मुलाकात नहीं हुई। शायद वे लोग मकान छोडकर किसी दूसरी तहसीलमे चले गये थे। बचपनके दिनोमे साथी बनते और छूटते देर नही लगती। न जाने कितने साथी बनते हैं, न जाने कितने छूट जाते है; भविष्यमे उसका कोई लेखा-जोखा हम नही रख पाते। फिर और नये-नये साथी बने, लेकिन कोई ऐसा साथी नही बना जो स्मृति रूपमे भी मेरे मस्तिष्कमे जिन्दा रहता। इसका कारण मेरी गंभीर प्रकृति भी। खेलकूदसे मुझे विशेष शौक नही था, फिर ऐसे लड़कोके और कम साथी होते भी है जो खेल-कूदमे भाग न लेते हो। चार-पॉच साल तक फिर कमलाका कोई पता न रहा। उसके बाद जब मैं 'नाइन्थ क्लास'मे था, कोई वकील थे उनके यहॉ एक शादी पडी। मुझे भी मॉके साथ जाना पडा। मॉंने बताया, कमला और उसकी मॉ भी आई है। लडकेकी शादी थी। बारात कही बाहर गई थी। घरपर रात-रात भर औरते गाती बजाती थी। मै बाहर लडकोमें बैठता था।

किसी कामसे मै मॉके पास एक क्षणको भीतर गया। मैने देखा तमाम औरते बैठी है और उनके बीचमे कमला नाच रही है। मुझे आज भी उसका वह रूप नही भूलता। गौरवर्ण अत्यन्त सुन्दर, हॅसमुख सूरत और गजबका शृगार। उसे देखकर मै फौरन खिसक गया। एक लडकी जब नाच रही हो तब वहॉ खड़े होकर देखना मेरे संस्कारके विरुद्ध था। मै कमरेके बाहर निकल आया। यद्यपि मेरा जी कमलाका नृत्य देखनेको करता था। इसीलिए कुछ देर दरवाज़ोकी दराजको देखता रहा। उस समयकी दृष्टि आलोचनाकी नही प्रशंसाकी थी। लेकिन मजबूरीने मुझे वह नाच न देखने दिया। यह सोचकर कि लोग देखेगे तो क्या कहेगे ? और फिर लुकछिपकर नाच देखते हुए मै चला आया। अपनेको

कितना दबाया था मैंने, यह आज महसूस हो रहा है। दूसरे दिन माँ ने कहा—

"कमला तुझे पूछ रही थी।"

मै खामोश रहा। इसका जवाब ही क्या हो सकता है। वे फिर बोलीं, "सुना है तूने, कमला नाचती बहुत अच्छा है, पता नहीं उस देहातमे रहकर उसने यह सब कहाँसे सीखा है।" कुछ रुककर बोली—

"गाती भी बहुत अच्छा है। मगर.. बडी बेहया हो गई है। शरम तो उसमे है ही नही। मैंने तो उसकी माँसे कह दिया, नाचना-गाना बुरा नही, पर ज्यादा मत उकसाओ नही तो बिगड जायगी।"

इसके बाद फिर पाँच साल तक कमला नही मिली। इन पाँच वर्षो मे मेरी जिन्दगी बिलकुल ही बदल गई। मै क्यासे क्या हो गया, इसका अनुमान भी लगाना कठिन है। जिन्दगीके नये-नये परदे खुले, नई-नई चीजे आईं, उनका आकर्षण इतना प्रबल था कि मेरे हृदयमे कमलाका रहा-सहा अस्तित्व भी समाप्त हो गया। एक घटना याद आ रही है। मै उस शहरमे गया हुआ था जहाँ कमलाके पिता बदलकर आ गये थे। उनके विभागमे हर दूसरे-तीसरे वर्ष बदली हुआ करती थी। मै अपने चाचाके यहाँ ठहरा था। एक दिन साँझके समय उन्होने कहा—"आओ चलो घूम आये!"

मैंने कहा, "कहाँ जायँगे?"

वे बोले, "ब्रजकिशोरके यहाँ"

"कौन ब्रजकिशोर?" मै कुछ सोचता हुआ बोला।

"तेरे घरके पड़ोसमे वे बहुत दिन रहे है; तू नही जानता।" उन्होने आश्चर्यसे कहा।

मुझे याद आ गया ब्रजकिशोर कमलाके पिताका नाम है।

मैंने कहा, "कितनी दूर है उनका घर?"

उन्होंने कहा, "दो मील।"

मैंने कहा था, "आप हो आइये। दो मील जानेकी मेरी हिम्मत नहीं। दो फर्लांग होता तो सोचता।"

आज मैं सोचता हूँ, कमलाके लिए कुछ दूर चलने तककी तकलीफ मैं नहीं उठा सकता था। इतना भी स्नेह उसके लिए मेरे दिलमें नही था जब कि बेकारमे न जाने कितना इधर-उधर घूमा करता था। चाचा चले गये और मै पड़ा-पड़ा ग्रामोफोन पर पिटे हुए रेकार्ड बजाता रहा। जैसे कमलाकी मुलाकातसे उन्हें बजाना ज्यादा कीमती हो।

दो महीने बाद मुझे फिर किन्ही छुट्टियोंमें चाचाके पास जाना पड़ा। किसी बातके अवसरपर वे कहने लगे।

"उस बार तेरा ज़िक्र मैंने ब्रजकिशोरके यहाँ किया था। मैंने बताया राजन आया है, पर कुछ थका हुआ था इसीलिए नही आया। वे लोग तो कुछ नही बोले। लेकिन उनकी लड़की कमला है न, वह जैसे तेरे न जाने से कुछ चिढ़ी थी, कह रही थी—

"हाँ साहब बडे आदमी है। पैर न घिस जाते इतनी दूर तक आते हुए। अगर वह कल रहें तो उनको आप अवश्य भेज दीजियेगा, नहीं तो जब फिर आये तब कहिएगा 'कमला ने बुलाया है,' अगर इस पर भी न आये तो मुझे इत्तला कीजियेगा मै खुद आऊँगी। यह क्या इन्सानियत है कि हजार बार वह यहाँ आ चुके, लेकिन यहाँ एक बार भी नहीं आये। जैसे यह उनका घर ही न हो। हम लोगो से उन्हे कोई मतलब ही न हो" चाचा इतना कह कर खामोश हो गये। और मै सोच रहा था कितनी आत्मीयता है इस सदेश मे। तभी चाचा चाची से बोले, "बड़ी मुँहफट लड़की है, ऐसी बातूनी लड़की-तो मैंने कहीं देखी नहीं। काफी इण्टेलीजेण्ट भी है।"

चाची बोलीं, "जो भी हो। मैंने तो उसकी बहुत बदनामी सुनी है। तमाम कालेजके लडके उसके पीछे पडे रहते हैं। उसकी माँ कह रही थी 'बडी आफत है इस लड़कीके मारे। कही शादी कर देती तो छुटकारा मिलता। पर इनके बाप घर बैठे लडका पाना चाहते है।"

चाचा बोले, "यहाँ मिस्टर ब्रजकिशोरकी गलती है। क्यो उसे इधर-उधर कान्फ्रेन्स वगैरह मे नाचने-गाने जाने देते है? जमाना नाजुक है, लडकियोको तनिक भी आजादी नही देनी चाहिए।"

चाची बोली, "वे बिचारे तो नही चाहते पर कमलाके आगे किसीकी चलती नही।"

"लडकीके आगे माँ-बापकी न चले!" चाचा हँसने लगे। चाची बोलीं, "बात तो कुछ ऐसी ही है। वह बहस करने लगती है, माँ-बाप कोई जवाब नही दे पाते। फिर जवान लडकीपर सख्ती भी तो नहीं की जा सकती।"

मैंने चाचा-चाचीकी ये बाते सुनीं और इसे सुनकर कमलाके प्रति मेरी श्रद्धा बढ गई। क्योकि मै अच्छी तरह जानता हूँ कि इस समाजमे एक बहुत बडा दल ऐसा है जिसका काम ही कुमारी लडकियोको बदनाम करना होता है। मुझे हर ऐसे आदमीसे नफरत है जो किसी लडकीके बारेमे बात करते समय उसके चरित्रपर आक्षेप करता है। फिर अभी हमारे समाजमे आदमीके रूपमे कीडे फूल रहे है। वे कला क्या है, इसे क्या समझे? कलाकी आडमे उनकी कुत्सित मनोवृत्तियाँ वह गन्दगी तलाश करती है जिसमें ये नरकके कीडे रेगते है। हमे तो आज ऐसे आदमी चाहिए जो कलाकी उन्नति करे, किसी भी अवरोधकी परवाह न करे और उनको, जो अपनी सकीर्णताके कारण कला या कलाकारका अपमान करते हैं, ऐसी ठोकर मारे कि आँख खुलनेपर गन्दगी भरी दुनिया भी उन्हें फूलो भरी लगने लगे।

मैने उसी क्षण निश्चय किया कि मै इस बार कमलासे अवश्य मिलूँगा पर कुछ ऐसे कारण आ गये कि मुझे बिना मिले ही चला आना पडा। फिर पूरे एक वर्ष तक मै चाचाके पास भी नहीं जा सका। इस बार यद्यपि कमलाको देखने की इच्छा थी। बी० ए० की परीक्षा देकर जब मै गर्मीकी छुट्टियोमे घर गया तो पिताने कहा, "तू पयानपुर चला जा। व्रजकिशोरका निमन्त्रण आया है। खुद भी बेचारे कई बार कह चुके है। हम लोगोके तो जानेमे बडी झंझट है, पर किसीका जाना जरूरी है। उनकी लडकीकी शादी है।" मैने पूछा, "बड़ी लडकीकी।" उन्होने कहा, "नही कमलाकी।"

मुझे आमतौर से विवाह-शादीमे जानेसे तकलीफ होती है पर पता नहीं किस प्रेरणासे मै वहाँ एक दिवस पहले ही पहुँच गया। वह एक तहसील थी। देहात और शहर दोनोका मिश्रण। लोगोने मुझे दस साल बाद देखा था, अतः जल्दी पहचाना नहीं। फिर तो बादमे अपनी प्रकृति के कारण मैने बहुतसे काम ओढ़ लिये। बरात लाहौरसे आई थी। पूरी शादी खत्म हो गई पर मै कमलाको देख न सका। भाँवरोके समय रात अधिक हो जानेसे सो गया और फिर जनवासेकी देख-भाल करना मेरी ड्यूटी थी, अतः मुझे वही बना रहना पड़ा। चलते समय दोनो दलोमे काफी झगड़ा-सा हो गया। लड़के वाले लड़की साथ ले जाना चाहते थे और लडकी वालोका कहना था कि बिदा नहीं होगी। लडकीकी तबीअत खराब है, एक तो इतना लम्बा सफर, फिर दवाका क्रम भंग हो जायगा, उसकी विदा फिर हो जायगी। उन्हे लडकीको मारना नहीं है, लेकिन आखिरकार लड़के वालोकी ही जीत हुई। कमलाकी बिदाई करनी ही पड़ी।

घरसे स्टेशन दो मील था। बारातको पहुँचाने मुझे भी स्टेशन जाना पडा। क्योकि सामान अधिक था और उसी गाड़ीसे लाहौर 'बुक' करना

था। स्टेशन पहुँचकर मालूम हुआ कि गाडी चार घटे 'लेट' है। छोटा स्टेशन। स्टेशन मास्टरकी इच्छा पूरीकर देनेपर वे स्वयं ये सब काम करने लगे। मै मुक्त हो गया। स्टेशनके पीछे आमके घने छायेदार वृक्ष थे। वहीपर दरियाँ बिछीं। सुबह सात बजेका समय था। चार घटे लेट होनेके कारण गाडी ग्यारह बजे आती। अतः सारे घराती, बरातियोके भोजन आदिका प्रबन्ध करनेमे लग गये। बरातियोमे कुछ स्नान करने और इन्तजाम करने और बाकी गप्प मारने बैठ गये। कमलाकी पालकी एक कोनेमे, एक पेडकी आडमे सबसे अलग दूर रक्खी थी। मेरे दिलमे रह-रह कर कमलासे इस चलती-चलाती बार मिल लेनेकी इच्छा उठ रही थी फिर वह बीमार भी तो थी। पर हिम्मत नहीं पड रही थी। उससे, जो एक नव-वधू हो, उससे बात करना जो दुनियाकी नज़रोमे गैर हो, मुझे एक गुनाह लगता था। तभी एक नौकरानीने, जो पालकीके साथ आई थी, आकर कहा आपको 'बहिनी' बुला रहीं है। मै चला गया। समीप पहुँचते ही एक बडा धीमा और मीठा स्वर सुनाई दिया। उसने कहा—

"आओ, अब तो तुम बहुत बडे हो गये।" और इतना कहकर उसने पालकीका एक तरफका पर्दा बिल्कुल उठा दिया और बोली, "आओ, बैठ जाओ" मै झिझकते-झिझकते बैठ गया। उसने किसी प्रकारके आडम्बरका प्रदर्शन नहीं किया, नमस्कार तक नही। उसके इस पहले वाक्यने दस सालकी दूरी मिटा दी। मै कुछ सयत होते हुए बोला—

"तुम्हीं कौन छोटी रह गई हो।" वह एक फीकी हँसी हँस पडी। वह एक उम्दा सलवार और ओढनी पहने थी। बहुत दुबली, कमजोर और पीली लग रही थी। वधूकी तरह वह तमाम आभूषणोसे सजी थी। मैने यूँ ही बात चलानेको कहा—

"सलवार कबसे पहरने लगी हो?"

"लाहौरकी है।" व्यंगसे वह बोली।

मैं चुप रहा। उसने नौकरानीको बुलाकर कहा—"उधर चली जाओ, किसीको इधर मत आने देना।" फिर बोली—

"दस साल बाद मिल रहे हो। लड़की न होती तो देखती कैसे नहीं मिलते?" मैं चुप रहा। मेरी आँखोके सामने तमाम पिछली बातें नाचने लगीं।

"मेरे घरके पास तक आते थे पर मेरे यहाँ आनेमें तुम्हारे पैर थकते थे। बुलाया तब भी नहीं आये। आज भी अगर न बुलाती तो शायद नहीं आते?" मैं कुछ बोल न सका। इतने स्नेहसे शिकायत करनेवाले भी जीवनमें कहाँ मिलते हैं? वह फिर बोली—

"मेरी शादीमें कैसे आ गये? अच्छा हुआ, चले आये। बहुत मानता मानी थी, तुम किसी तरह आ जाते, तुम्हें देख लेती चलती बार"। यह 'चलती बार' उसने कितनी दर्द भरी आवाजमें कहा था। वह कुछ रुककर फिर कहने लगी—

"तुम जैसे ही आये, मुझे मालूम हो गया। यद्यपि भीतर नहीं आये तुम। मिठाई भिजवाई थी। सोचा, कौन जाने लोग काम-काजमें भूल जायँ और तुम शर्म और तकल्लुफकी वजहसे यूँ ही रह जाओ।" मुझे याद आया, जब मैं आया था तब नाश्ता कर लेनेके बाद एक नाश्ता और आया था। नौकरानीने पूँछनेपर कहा था, "भीतरसे भेजा है।" मैंने समझा मौसीजीने भेजा होगा। और यह भीतर वाला नाश्ता ही मैं ठीकसे कर सका था क्योंकि यह अच्छा था। विवाह आदिमें दो प्रकारकी चीजे बना करती है। कुछ मामूली और कुछ खास ढंगसे। वह कहती रही।

"समझमें नहीं आता, तुममे इतनी शर्म क्यो है? ईश्वरको चाहिए था तुमको लडकी बनाता, मुझको लड़का।" इतना कहकर वह हँस पड़ी। पर मै खामोश ही रहा। उसने पूछा—

"ये सुस्ती क्यो ? कुछ उदास दिख रहे हो। तुम्हारे बारेमे सुना था तुम काफी खुशमिजाज हो।"

मैने कहा, "बचपनकी बाते याद आ रही है।" वह पुलक उठी, "सच तुम्हे बचपनकी सब बाते याद है। मै तो जानती थी भूल गये होगे। तभी न जिन्दा रहकर भी तुम्हारे लिए कमला मर गई थी।"

मैने कहा, "चुप रहो, क्या बकती हो।"

वह बोली, "ग़लत कहती हूँ क्या ? या तो अपनेको बडे आदमी समझते रहे होगे। सोचते होगे कालेजमे पढता हूँ। और वह एक मामूली पढी लिखी देहाती लडकी, उससे दूर ही रहना अच्छा। ज्यादा पढ लेनेका तुम्हें घमड हो गया है। यहाँ तो गँवार ही रह गई। बहुत चाहा, बहुत सर पटका पर मेरी चली ही नही। काश, मै भी कालेजमे पढ पाती!" इतना कहते-कहते उसकी आवाज डूब गई। मैने देखा, जैसे वह व्यथासे भर उठी है।

मैने कहा, "अच्छा चुप भी रहो, बहुत कह चुकी हो।" फिर जैसे वह सचमुच यह प्रसग टालकर अपनेको हल्का करती हुई बोली—

"शादी कब करोगे ?"

मैने कहा, "मै शादी करूँगा ही नही।"

"क्यो, क्या किसीसे मोहब्बत हो गई है !"

"नही तो।"

वह हँसते हुए बोली, "मैने सोचा शायद कालेजमे किसीसे मोहब्बत हो गई हो !"

मै बोला, "क्या कालेज मोहब्बत करनेकी जगह है ?"

उसने कहा, "लडके तो यही समझते है।" उसका यह जवाब सुनकर मै चुप हो गया। थोड़ी देर बाद बोला,

"तुमने किसीसे मोहब्बत की है !"

"कोई इस लायक मिला ही नहीं ।" वह मुसकराते हुए बोली ।

मैने कहा, "मैने तो सुना है तुम्हारी किसीसे मोहब्बत हो गई है ।"

उसने कुछ कड़ी आवाजमे कहा, "यह नहीं सुना मैं आवारा हूँ, बदमाश । एक नहीं, जाने कितने लडकोंसे मेरा सम्बन्ध है ! इधर-उधर कान्फ्रेन्सोमें नाचती-गाती फिरती हूँ ।" मेरा चेहरा फक पड़ गया । मैने उसके मुखकी ओर देखा जिसमें घोर उपेक्षा और घृणाके चिह्न थे । मैने बात बदलनेकी गरजसे बड़े स्नेहसे पूछा, "तुमने नृत्य-कला कहाँसे सीखी । कमला, मैने तुम्हारे नृत्यकी बड़ी तारीफ सुनी है ।" मेरी बात सुनकर वह न हँसी, न मुसकराई वैसे ही गभीरतापूर्वक बोली—

"सीखा कहाँ है ? लेकिन सीखना चाहती थी । इतने ही पर तो यह हाल है, अगर सीखती तो जाने क्या होता ?...अब उस जन्ममे सीखूँगी ।" इतना कहते-कहते उसकी आवाज जैसे उदासीके समुद्रमे डूब गई और वह इतनी पैनी दृष्टिसे शून्यमे देखने लगी कि मै सहम गया । मेरे मुखसे निकल पडा ।

"कमला !"

उसने कहा, "कहो"

मैंने कहा, "तुम्हारी तबीयत खराब है लेट जाओ ।"

उसने कहा, "क्यो ? क्या लेटनेसे तबीयत अच्छी हो जायगी ?"

मैंने कहा, "हाँ, आराम तो मिलेगा ही" ।

वह बोली, "मुझे आराम नहीं चाहिए और अगर लेटना ही होगा तो एक साथ चितामें ही लेटूँगी ।" उसकी आँखे वैसी ही बनी रहीं निस्तेज, पैनी, शून्यको फाड़कर खा जानेकी प्रतीक्षामे । मैं घबरा उठा । मैने कहा, "कमला गंभीर मत बनो । थोड़ी देरके लिए तो मेरे सामने

खुश रहो। मेरा इतना कहना था कि वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। लेकिन ऐसी हँसी, जिसके पीछे कोई अनुभूति नहीं। भयानक। हिस्टीरियाके हमले सी। मैं सर झुकाकर बैठ गया। मुझे परेशान देख वह कुछ शांत होकर बोली—

"जानते हो मैं कहाँ जा रही हूँ?"

मैंने मुसकराकर कहा, "लाहौर!"

वह भी बोली कुछ मुसकराकर, "नही जी मरने।"

मैंने कहा, "चुप रहो। क्या मरने-मरने लगाई है! शुभ अवसरो-पर ऐसी बाते नहीं की जातीं। तबीयत तो यूँ ही खराब हो जाती है। वहाँ पहुँचोगी सब ठीक हो जावेगी।"

वह बोली, "यह तबीयत ठीक होनेके लिए खराब नहीं हुई है।"

मै चौंक उठा, पर सयत होकर बोला, "क्या हुआ? इच्छा रक्खो, अच्छी हो जाओगी।"

वह बोली, "यही इच्छा तो नहीं है, फिर एक गवार और देहाती बनकर जीने से मरना ही अच्छा।" कहकर वह एक फीकी हँसी हँसने लगी।

तभी अचानक उसके पति पर दृष्टि गई जो कुछ दूर पर किसी से खडे-खडे बाते कर रहे थे। नाटे और मोटे, सूट पहने हुए। बडे भद्दे। कमला जितनी ही दुबली-पतली सुन्दर थी, वे उतने ही नाटे-मोटे और भद्दे थे। पढ़े भी थे तो शायद हाई स्कूल फेल। रुपया था, व्यापार करते थे।

मैंने पूछा, "देखा उनको? पसन्द हैं?"

वह हँस पड़ी और मुँह बिचकाकर बोली, "उस गणेशजी ऐसे है मोटे धमधूसर।" मै भी हँसने लगा।

मैंने कहा—"शादीके पहले नहीं देखा था?" उसने 'न' सूचक गर्दन हिलाई। फिर बोली—

"शादीमे लडकियोसे कौन पूछता है ? फिर मुझसे किसकी हिम्मत थी, जानते ही थे मै मना कर देती। खैर, बाबूजीके सरकी बला टली। बेचारोकी बडी बदनामी हो रही थी। ये लोग भी अच्छे ही है, केवल सूरत पसन्द की, दहेज-ओहेज भी नही लिया।"

तभी मुझे ऐसा लगा, जैसे कुछ लोग मुझे खोज रहे है, क्योकि गाडी आनेका समय हो गया था। मै उठनेको हुआ। मेरा दिल भर आया था। उस थोडी देरकी बातचीतने मुझे दर्दसे भर दिया था।

मैने पूछा, "मेरे लायक कोई सेवा ?"

वह फिर फीकी हँसीमे बोली, "मेरे लिए ? मुझे अब कुछ नही चाहिए। मैने जो-जो चाहा मुझे नही मिला, मुझे नही दिया गया। और अब आखिरी वक्तमे जरूरत भी क्या ?" कुछ रुककर फिर बोली, "तुम्हारे चाचा कह रहे थे, तुम लेखक हो रहे हो। अखबारोमे काफी लिखते-पढते हो। मै तो रह गई। बहुत-सी चीजे कहना चाहती थी, लिखना चाहती थी, पर इस लायक नही हूँ। कुछ ऐसा करो कि यह दुनिया बदल सके। हम स्त्रियोकी आवाज भी लोग सुने और सुननेकी जरूरत समझे। काश ! मै तुम्हारी तरह होती तो दुनियाको बताती कि ऐसी जिन्दगीसे लडकीका गला घोटकर मार डालना अच्छा है।"

मेरी आँखोसे आँसू निकल पडे और मै एक क्षण भी अपनेको अधिक ठहरनेमे असमर्थ पाकर तेजीसे चला आया और काम करने लगा। गाडी चलते समय उसने इशारा किया। मै डब्बेके साथ दौड़ने लगा। उसने कहा, "देखो भूलना नहीं चाहे कमला मर भी जाय।" और फफककर रो पडी। मै पीछे छूट गया और वह आँखोसे खो गई।

और आज कमला मर गई, जीमे आता है, मै यह वाक्य 'कमला मर गई' बार-बार दोहराऊँ। तबतक दोहराऊँ जबतक दुनिया उसे सुनकर यह

राजेन्द्र यादव

राजेन्द्र यादवका परिचय उन्हीके शब्दोमे इस प्रकार है—

"जी, नाम मेरा राजेन्द्र यादव है। शहरोमे शहर आगरामे २८ अगस्त १९२९ को अवतार लिया। पिताजी डिस्ट्रिक्ट बोर्डके डॉक्टर थे सो बचपन उनके साथ मथुराके कस्बो, मेरठ और आगरे मे बीता (यो वह बीत ही गया हो, सम्पर्कमे आनेवाले हम-उम्र या छोटे बुजुर्गोका ऐसा कतई विचार नही है।)। आगरा कॉलेज नामक वटवृक्षके नीचे 'बोधिसत्त्व' प्राप्त किया सन् ५१ मे। तबसे रिसर्च, 'ज्ञानोदय' और सरकारी नौकरीके त्रिलोकमे भटक चुका हूँ। फिलहाल कलकत्तामें अहिंदी भाषियोंको सरकार बहादुरकी ओरसे हिन्दी पढाता हूँ। फिर भी लगता ऐसा रहता है जैसे चिरन्तन बेकार हूँ।"

राजेन्द्र यादव कदाचित् सूत्र रूपमें कहानी कहनेमे विश्वास नहीं रखते। उनकी कहानियोसे लगता है कि वह विस्तारके साथ ही कहानी कह सकते है। 'डिटेल्स' के प्रति उनका मोह बहुत है, और यह स्वीकार करना पडेगा कि उनके 'डिटेल्स' बहुत सच्चे, खरे और मनको चुभनेवाले होते है। मध्यवर्गीय युवक-युवतियोकी कान्ताएँ, परवशता और घुटनको राजेन्द्र यादवने अपनी कहानियोमे बहुत सफलताके साथ चित्रित किया है। वह स्वयं कोई सन्देश नहीं देते, किन्तु उनकी कहानियाँ घिसी-पिटी परम्पराओसे विद्रोह करनेके नोटपर ही समाप्त होती है।

• खेल-खिलौने

—राजेन्द्र यादव

बड़े आदरके साथ जैसे ही हमने दोनो हाथ माथेतक उठाकर नमस्कार किया, कार घुर्र्घूं करके हमारे बीचसे चल दी। एक ओर मै खड़ा था, दूसरी ओर बाबू जी। दरवाजेपर झुण्डका झुण्ड बनाये वे लोग झाँकती हुई कारकी ओर हाथ जोड रही थी। जब वे कारकी ओर देखती तो बडी शिष्टता और नम्रतासे मुसकुरा देती, जैसे वे इसीकी अभ्यस्त है और जब जरा पीछे हटकर दरवाजेसे बाहर निकल आते किसी बच्चेको झिडकती या क्रुद्ध होकर पीछे धकेलतीं तो उनकी भवे लपकती तलवारकी तरह माथेपर तन जाती। कारके स्टार्ट होते ही इतनी देरसे लगाये हुए शिष्टताके सारे अनुशासन टूट चुके थे और उन कार वालियोकी मुखर आलोचनाएँ प्रारम्भ हो गई थी—जिनका विषय था, चश्मेकी कमानी, पाउडर, दाँत, मुँह, बाल काढनेका ढग, ब्लाउजकी डिजाइन और कट, साडीकी किनारी इत्यादि। नये आदमियोके सामने जबर्दस्ती चुप किये गये और स्वतः डरे हुए बच्चे अब और जोरसे चीजे माँगने लगे थे।

—

इससे पहिले कि मै जवाब दूँ, छोटी वीराने उछल-उछलकर बता दिया—"सुधीन्द्र भाई साहब, आज नीरजा जीजीको देखने आई थी उनकी सास।" और बच्चोंने खूब उछल-कूदकर एक साथ ही इस बातको दुहराया "सास देखने आई थी।"

पृथ्वीपर पड़े हुए कारके निशानोको देखता हुआ मै लौटने ही को था कि मेरी निगाह सामनेसे आते हुए सुधीन्द्र भाईपर पड गई। शेरवानी, ढीला पाजामा, सैडल और हाथमे अटैची लिये वह धूलमें सने चले आ

रहे थे। मै पूछनेको ही था "लौट आये ?" तभी स्वयं उन्होने ही पूछ लिया—"कहो भाई क्या हल्ला है ? आप सबलोग क्यो यहॉ जमा हो रहे है।" एक विचित्र प्रकारका बुझा हुआ उनका स्वर था।

फिर भी मैने पास जाकर उनके कन्धेपर हाथ रखकर गम्भीरतासे बताया, "नीरजाकी सुसरालसे कुछ स्त्रियॉ देखने आई थीं उसे, अभी तो गई है आपके आगे-आगे। हमलोग उन्हे विदा करने आये थे। आप सीधे स्टेशनसे ही आ रहे है न, लाइए अटैची मुझे दीजिए। नलिनीके घर सब ठीक-ठाक है न, तार देकर क्यो बुलाया था ?" अटैची मैने उनके हाथसे ले ली, लेकिन मुझे लगा सुधीन्द्र भाईके चेहरेपर उत्साह नहीं था।

"हॉ तो नीरजाको देखनेको आये थे, फिर क्या हुआ ?" उन्होने सिर झुकाकर ओठोंकी पपडीको उँगलियोंसे टटोलते हुए पूछा। हम लोग एक-एक कदम भीतर चल रहे थे। बरामदा पारकर अब हम ड्रॉइगरूममे आ गये थे। बाबूजी अपने कमरेमे चले गये, जीजी, माताजी, भाभी, बुआ, और छोटे-छोटे बच्चे सब हमसे पहिले ड्रॉइगरूममे आ चुके थे। सोफे और कोचपर अब वे लोग बैठ गई थीं। बीचकी मेजपर उन देखनेवालोंके लिए लाये गये नाश्तेके बर्तन, कप, प्लेटे, चम्मच, चायदानी, गिलास, ट्रे इत्यादि रखे थे। किसी प्लेटमे बाकी बची दाल-मोट पडी थी, किसीमे बंगाली मिठाईको काटता चम्मच। प्यालोके तलोमे थोडी-थोडी चाय बच गई थी। एक बडी प्लेटमे केलोंके छिलके, लुकाट और सेबके बीज, सन्तरेकी जेली और टोस्टमे लगानेके मक्खनकी टिकियाके कागज पडे थे। मेजपर चारखानेका मेजपोश था।

"आओ भाई सुधीन्द्र, आओ।" सभीने हमे देखकर उत्साहसे बुलाया—"तुम कब आये ? अभी आ रहे हो ? अरे, जरा देर पहिले आते।" अपने पास बैठनेकी जगह छोडकर बुआने आपसमे बडे उत्साहसे होती

हुई बातोंका सिलसिला एकदम तोड़कर कहा। मैंने अटैची कोनेमें रख दी और बीचकी मेज एक ओर दीवालके सहारे हटाकर उस जगह एक आराम कुर्सी खींच लाया। सुधीन्द्र भाई उसी पर बैठ गये, मै हत्थेपर बैठ गया। बच्चे इधर-उधर घेरकर खडे उस बचे हुए नाश्ते चाय, फल इत्यादिकी प्रतीक्षा कर रहे थे। कुछने धीरे-धीरे अपनी माँओंसे माँगना भी शुरू कर दिया था। बुआने जैसे बिलकुल नई बात हो, सुधीन्द्र भाईको सूचना दी—"नीरजाको देखने आये थे, उसकी सुसरालसे जहाँ रिश्ता हो रहा है न।"

तभी जीजीने एकदम कहा—"मै यहाँ आई कमरेमे कघा लेने, देखा एक चश्मेवाली औरत खडी है। मै एकदम भक्क रह गई—हाय राम है कौन यह, यों घुस आई है। उसके पीछे एक और लडकी-सी, फिर एक तेरह-चौदह सालका लडका। पूछा, तो उसने बताया—हम लोग बनारससे आये है। मेरी समझमे नहीं आया, क्या करूँ। सबसे पहिले जाकर बाबूजी को जगाया। वे झट तहमद बाँधे ही दौडे। और जब भाभीको बताया, तो चूल्हेमें रोटी डालकर वह भागी कि बस! और भैया, बुआने तो तमाशा ही कर दिया, कभी इस धोतीको उठाये कभी उस ब्लाउजको पहने, 'मै क्या पहनूँ मै क्या पहनूँ' कहती-कहती सारे घरमे ऐसी नाची-नाची फिरी है कि देखते ही हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते।"

"और अपनी नही बतायेगी।" भाभीने हाथ बढाकर कहा—'धोबी मेरा कपडा नही दे गया, कहाँ तो परसो ही दे जानेको रो रहा था। लो, कघा भी उसी कमरेमे छोड़ आई—आग लगे ऐसे घरमे। कोई चीज ठीक जगहपर रखी हुई पाती ही नही। बिन्दीकी शीशी अभी यहाँ रखी थी, न जाने कौन निगल गया। अपने कामकी चीज हो या न हो बच्चोंको उससे खेलना। नाकमे दम है।' और भी बीस बाते। रोई पड़ती थी बीबीजी—अरे हाँ हाँ री! क्या है, क्यो जान खाये जा रही है।" और जीजीकी बात कहती-कहती भाभीने वीराके दोनो हाथ झटक दिये, क्योंकि बिना

उनकी बातोमे रुचि लिये हुए, वह बार-बार उनका मुँह अपने दोनों हाथोंसे अपनी ओर करके ठिनकती हुई दुहराये जा रही थी—"भाभी केला दिलवाओ एक, बेबीने बंगाली मिठाई खा ली, हम भी लेंगे।"

झिडकी खाकर वह भी अब शेष तीनो बच्चोके पास चली गई। वे सब नाश्तेकी उसी मेजके चारो ओर घिरे, बाकी बची चीजोका हिस्सा बॉट कर रहे थे—"तूने अपने 'कप' मे ज्यादा चाय कर ली, इतनी ही हमे भी दे। आप तो दाल मोटकी तश्तरी लेकर अलग बैठ गये, कल हमारे पटाखे मॉगने कैसे आ गये थे, तब तो 'आम्मे बी दो पताके!' अम्मा देखो इस उमाने चायदानी फोड़ी।"

"अच्छा हल्ला मत मचाओ।" माताजीने उन्हे झिडककर कहा—"उनके आते ही सारे घरमें ऐसी भगदड मची कि बस क्या बताये, कोई इधर भाग रहा है, कोई उधर। हमारे तो भाई, बच्चे भी गजबके है, घर झाड़ो, साफ करो, एक मिनट बाद फिर वही घूरा-सा करके रख दे। लोगोके यहॉ न जाने कैसे सजे-सजाये घर रहते है। और बैठक तो ये समझो, इस कैलाशने (मैंने) झाड-पोछ दी थी, कबाडखाने-सी पडी थी, कहॉ बैठाते, कहॉ उठाते?"

मुझे इस समय अपनी बहादुरी जतानी बडी आवश्यक लगी, फौरन ही बोला—"बैठक मैने दोपहरको ही झाड-पोछ दी थी। तस्वीरोके चौखटे साफ कर दिये थे, मैंटलपीसपर ये सारे खिलौने ठीक-ठाक रख दिये नहीं तो आनन्द आता।" और मैंने सब खिलौनो-तस्वीरो इत्यादि पर दृष्टिपात किया।

"जीजी, बच्चा।" इस बार जीजीका बच्चा नाश्तेकी चीजे खत्म हो जानेपर फिर जीजीके पास आ गया था और खिलौनोका नाम सुनकर मैंटलपीसपर रखे चीनीके भगवान् बुद्धकी ओर उॅगली उठा-उठाकर कह रहा था।

"हाँ बच्चा, जाओ, तुम सब लोग जाओ—बाहर खेलो, देखो सुधीन्द्र भइया आये हैं—बातें करने दो। जाओ, बेबी, विभास, जाओ सब बाहर जाओ, इसे भी ले जाओ।" और जीजी स्वयं उठकर सब बच्चोको बाहर कर आई।

"हमने तो समझा था, नीराकी सास कोई बुड्ढी-सी होगी, पुराने खयालोंकी; पर वह तो खूब जवान है। फैशनमें रहती है। उल्टे-पल्लेकी धोती, चश्मा। और लडकेकी भाभी तो फैशनके मारे मरी जा रही थी, देखा नहीं लिपस्टिक कैसी गाढी-गाढ़ी पोत रखी थी, बार-बार पर्स खोलकर रूमाल निकालती, कभी तहकी तह होठोंपर लगाती, कभी माथे-गालोंपर—पाउडर तो बोरी भर लगाया था—मुझे तो बडी भद्दी लगी। लडका सीधा था। छोटा भाई है।" जीजीने बैठते ही बताया।

"और देखा कितना छोटा है, मैट्रिक कर चुका है, और एक ये हैं कैलाश, ऊँट-का-ऊँट अभी बी० ए० में ही पढता है।" माताजीने कहा।

मैं और सुधीन्द्र भाई चुपचाप बैठे थे। यहाँ कोई किसीकी सुनना ही नहीं चाहता था। एक ही बातको अपने-अपने शब्दोंमें कहनेको सभी उत्सुक। समझ में नहीं आता था किसकी बातको सुना जाय। तभी अचानक बातोंके प्रवाहको पलटनेके लिए मैंने कहा—"आप लोग तो यहाँ बैठी बातें बना रही हैं, नीरजा कहाँ है, उसे भी बुला लीजिए न। सुधीन्द्र भाई आये हैं, न चाय न पानी।"

"वह तो भीतरवाले कमरेमें मुँह ढँके पडी है—सिसक रही है। अब बीस बार तो मैं समझा आई हूँ—मानती ही नहीं है।" चाची बोलीं।

"क्यों ?" इस बार सुधीन्द्र भाईने अचानक चौंककर मुँह उनकी ओर घुमाया।

"कहती है, मैं शादी नहीं करूँगी, मुझे पढ़ने दो, अभी मेरी इच्छा नहीं है। खूब समझाया कि सभी लडकियोंकी शादी होती है, तू क्या

अनोखी है, और हमलोग क्या हमेशा ऐसी ही है। पर उसने तो न माननेकी जैसी कसम ही खा ली है।" चाचीने फिर बताया।

"और वहाँ लड़का जिद किये बैठा है कि शादी करूँगा तो इसीसे करूँगा—बापसे साफ कह दिया है। फोटो देखनेके बाद यहाँ चुपचाप आकर स्कूल जाते हुए देख गया कही, बस तभीसे जिद किये है। तभी तो ये सब आई थीं देखने।" माताजीने कहा कुछ चिन्तित स्वरमे।

नीरजाके रोनेकी बात सुनकर बातोका उत्साह मन्द पड गया। तभी बाहरसे जीजीका बच्चा फिर उनके पास आ गया—सबके मुँहकी ओर देख-कर धीरे-धीरे बोला—"जीजी वह बच्चा लेगे।" उसकी निगाह मैटलपीसपर रखी उस बुद्धमूर्तिपर थी।

"बात क्यो नही करने देता। सब बच्चे बाहर खेल रहे है और तू यहाँ जमा है!" इस बार उसे माताजीने फटकारा। वह सहमकर चुपचाप खडा हो गया, गया नहीं। जीजी उसके सिरपर सान्त्वनासे हाथ फेरने लगी। "जिद नहीं करते मुन्नी।"

"अब नीरजा बेचारी रोये नही तो क्या हो।" मैंने नीरजाका पक्ष लेकर माताजीसे कहा—"आप तो इस बुरी तरह पीछे पड़ जाती है। नये आदमियोके सामने अधिक हठ भी तो नही कर सकती, और आप है कि उन्हीके सामने जोर दे रही है, 'यह दिखाना, वह दिखाना।' सच, सुधीन्द्र भाई, माताजीने नीरजाकी कोई चीज ऐसी नहीं छोडी जो दिखा न दी हो उन्हें। क्लासमे कराये गये कटाई-सिलाईके कामोसे लेकर मेजपोश, स्वेटर—सब। यहाँ तक कि हाईजीनमे बनाये गये शरीरके विभिन्न अङ्गोके डायग्राम्स तक। अब उन्हींके सामने जिद करने लगीं कि 'गाना सुना, गाना सुना,' मुझे सच बडा गुस्सा आया।"

"सुनाया उसने ?" सुधीन्द्र भाईने पूछा। दोनो घुटनोंपर अपनी कुहनी रखे, वे धीरे-धीरे अपनी माथेकी सलवटे टटोल रहे थे—बड़े चिन्तित, उदाससे।

"सुनाना पड़ा। सुनाये नही तो क्या करे। यहाँ पीछे पडनेवाले तो ऐसे-ऐसे जबर्दस्त है, हमारी माताजी, बुआ है, चाची है।" वास्तवमे मुझे नीरजाको दिखलानेके ढंगपर बडा क्रोध आ रहा था।

"अब, भई, ये तो समझते नही है" माताजीने अपनी सफाई बड़े गम्भीर स्वरमे दी—"लडकियोकी शादीका कितना बोझ माँ-बापपर चढ़ा रहता है इसे तो उनकी ही छाती जानती है। तुम्हारा क्या है, तुमने तो उठायी जबान और दे मारी। लडकियाँ तो सब मना किया ही करती है। हमने अपनी शादीकी बात सुनी थी तो हम भी रोये थे।"

"नीरजा ऐसी लड़की नही है—वह वास्तवमे अभी पढ़ना चाहती है।" मै अडा रहा।

"तो पढनेको कौन मना करता है, अब हमारी तरफ़से चाहे जिन्दगी भर पढो। क्यो भई सुधीन्द्र ?" माताजीने सुधीन्द्र भाईका समर्थन प्राप्त करनेके लिए उनकी ओर देखा।

पर माथेकी सलवटे उँगलियोसे टटोलते हुए वे न जाने कबसे क्या सोच रहे थे। जबसे आये थे, उनकी यह उदासी मुझे अखर रही थी। जीजीका बच्चा (उसे प्यारसे वह 'पापा' कहती थी) अब भी भगवान् बोधिसत्त्वकी मूर्तिके लिए हठ कर रहा था। मुझे उसका यह हठ करना बुरा लग रहा था। हम सब लोग बाते कर रहे थे पर उसे जैसे वही धुन। मै इस मूर्तिको ग्यारह रुपयेमे विशेष रूपसे प्रदर्शनीसे लाया था। वास्तवमे उसकी चीनी बहुत बढ़िया थी। माताजीकी बातपर कोई कुछ नही बोला—थोड़ी देर सब चुप रहे। आखिर मुझसे नहीं रहा गया, मैने पूछ ही

लिया—"क्यो सुधीन्द्र भाई, जबसे तुम आये हो, बहुत उदास और सुस्तसे हो। क्या बात है?"

"हॉ रे, तू जबसे चुप ही है, सब लोग ऐसे जोर-जोरसे बोल रहे है।" माताजीने एकदम इस प्रकार कहा जैसे विषय बदलकर बोल रही हो, पर वह वास्तवमे इतनी देरसे उनकी बातका समर्थन न करनेकी सफाई मॉग रही थीं।

"मै?" बड़े भर्रायेसे गलेसे उन्होंने कहा, फिर एकदम गला साफ करके संयत स्वरमे बोले—"मैं। नही कोई खास बात नही है।"

"तो भी?" मैंने पूछा "आपने बताया नही नलिनीके यहॉ कैसे है—तार क्यो दिया था?"

"कौन नलिनी?" जीजीने, धीरेसे पूछा बुआसे, "मुझे तो नहीं मालूम।" कहकर उन्होने प्रश्न-मुद्रासे चाचीकी ओर देखा, चाचीने माताजीकी ओर।

"सुधीन्द्रकी धर्म-बहिन है एक, मुरादाबादमे।" माताजीने बताया, फिर स्वय जाननेकी इच्छासे सुधीन्द्रकी ओर देखा।

सुधीन्द्र भाई एक ओर मुँह घुमाये दरवाजेमेसे अन्यमनस्कसे बाहर देख रहे थे, उसी प्रकार बिना हिले-डुले उन्होने कहा, "नलिनी मर गई!"

'झन्न' से जैसे हम लोगोके बीचमे थाली गिर पड़ी हो। एक-साथ सबके मुँहसे निकला—"नलिनी मर गई?—कैसे?" हम बुरी तरह चौक उठे।

सुधीन्द्र भाई उसी प्रकार अविचलित रहे, एकदम झटकेसे उन्होने गर्दन घुमाकर माताजीकी ओर मुँह किया—फिर सूनी ऑखोसे देखते हुए बोले—"हॉ, नलिनी कल साढ़े नौ बजे मर गई। तार देकर उसने मुझे बुलाया था।"

"कैसे ?" एक बार सबके मुँहसे निकला। जीजीने माताजीसे पूछा, "क्या उमर थी ?" माताजीने हाथसे उन्हे चुप रहनेका इशारा किया, और मुँहपर सारी उत्सुकता लाकर सुधीन्द्र भाईके मुँहकी ओर देखने लगीं।

"कैसे मर गई ?—जैसे सब मर जाते है।" धीरेसे वह हँसे—उनकी हँसी कितनी व्यथाभरी थी, मेरे हृदयमे जाकर जैसे वह जोरसे लरज उठी। उनका सिर झुक गया था। दोनो हाथकी उँगलियोको एक दूसरेमे फँसा, उन्हें जोड़े हुए वे कुछ क्षण सोचते रहे। एक गहरी साँस छोड़कर उन्होने झटकेसे सिर उठाया। "कैसे मर गई, एक लम्बी कहानी है। क्या कीजिएगा सुनकर ?"

अब वातावरण एकदम बदल गया था। अभी होनेवाली बहस और आलोचनाएँ न जाने कहाँ चली गईं। सुधीद्र भाईकी उदासीका ऐसा कोई कारण होगा मैंने सोचा भी न था। "क्या उम्र थी ?" जीजीने सीधे ही पूछ लिया।

"उम्र ?—पूरे इक्कीसकी नही थी। यह मेरे पास फोटो है।" उन्होने अचकनके भीतर हाथ डालकर पर्स निकाल लिया और जीजीकी ओर बढा दिया—उसमे एक पासपोर्ट साइजका फोटो लगा था।

बडी उत्सुकतासे जीजीने फोटो लिया—चाची, बुआ, माताजी सभी उसपर झुक गईं। "लडकी बडी सुन्दर है। मुँहपर कैसा भोलापन है! आँखे बड़ी प्यारी हैं। सीधी-सी लगती है।" सभीने अपनी-अपनी राय दी। खूब देखनेके बाद जब वह पर्स उन्हे लौटाया गया तो इतमीनानसे देखनेके लिए मैने ले लिया। लडकी वास्तवमे बडी सुन्दर और आकर्षक थी।

"कैसे मर गई ? क्या किस्सा है, सुनाओ तो सही जरा।" जीजीने आग्रहसे पूछा। सभी लोग इसी आशासे उनकी ओर देख रहे थे।

"क्या करोगी, पूरा किस्सा है—लम्बा" सुधीन्द्र भाईने टालना चाहा।

"हमे अब क्या करना है, पूरा सुनाओ, तुम उसे कैसे जानने लगे?" जीजीने पास खड़े अपने पापाके दोनो हाथ पकड़कर कहा, क्योंकि हाथ-पैरोंसे उसकी खिलौना लेनेकी मूक जिद जारी थी। मुझे बड़ा बुरा लग रहा था। ऐसे जिद्दी बच्चे मुझे जरा भी पसन्द नहीं है। मैंने कहा—"पूरा तो सुनाओ—इस पापाको तो सॅभालिए जबसे अड़ा हुआ है, यह जिद मुझे जरा भी पसन्द नहीं है।"

"नहीं-नहीं अब कहाँ जिद कर रहा है?" जीजीने उसके दोनो हाथ पकड़ लिये थे, लेकिन पैरोको जमीनपर क्रमसे पटकता हुआ वह मचल रहा था।

बात कहाँसे शुरू करे शायद सुधीन्द्र भाई यही बड़ी गम्भीरतासे सोच रहे थे। लोग सुननेके लिए उत्सुक है या नहीं, उन्होने अपने उदाससे नेत्रोसे चारो ओर देखा। सिवा उस बच्चेके जो अब डरकर चुप हो गया था किन्तु गया नही था, सभी लोग उनकी ओर देख रहे थे। उन्होंने माता जीकी ओर देखकर कहना प्रारम्भ किया—"भाभी जी, जिन दिनो आप बदायूँ थी न, सन् पैतीसकी बात है, शायद मै पिताजीके पास गॉवमे ही था। तभीका किस्सा है, लीजिए अब आप नही मान रही तो सुनिए—शुरूसे बता रहा हूँ। हॉ तो होऊँगा कोई छः सात सालका! तभी शहरसे पिताजीके दोस्त देवनारायण वकील आये उनके पास। पिताजीने बुलाया था। पिकनिकका प्रोग्राम था।' तभी मैंने पहिलो बार नलिनीको देखा था। बालोमे रिबन बॉधती थी। रङ्ग-बिरङ्गे फ्राकपर हल्के हरे रङ्गका छोटा-सा चेस्टर पहिने वह बिलकुल गुड़िया-सी लगती थी। मै लाख जिमींदारका लड़का सही, लेकिन था तो गॉवका ही। गेलिस लगाकर एक ढीला-ढाला हाफ पेण्ट और एक कोट पहिने था। उससे बोलनेकी बड़ी इच्छा होती थी, पर सकुचित होकर रह जाता। सुबह छः बजे ही वे लोग कारसे आ गये

थे, वकील साहब भीतर थे, पिताजीसे बाते कर रहे थे। हम दोनो नाश्ता इत्यादि करके बाहर धूपमें दूर-दूर ही घूम रहे थे। शायद सङ्कोच यह था कि कौन पहिले बोले ? हमारे घरके सामने ही थोड़ी-सी जगह छोडकर आम रास्ता था। उसके दूसरी ओर एक छोटा-सा कच्चा तालाब—पोखर। उसमे आठ-दस बतखे तैर रही थी, हमलोग थोड़ी देर उन बतखोको देखते रहे, कभी-कभी कनखियोंसे एक-दूसरेको भी आपसमे देख लेते। अचानक अपने हाथोको अपनी जेबोंमे और भी अधिक धॅसाकर वह बोली, "देखो, कितना जाडा है, बतखोको जाडा ही नहीं लग रहा।" मैंने धीरेसे कहा, "ये तो ऐसे ही तैरती रहतीं है।" इसके बाद तो वह मेरे पास आकर दुनिया भरकी बाते करने लगी। उसके बोलनेके बेझिझक ढगको देखकर तभी मैं चकित रह गया। दुनिया भरकी तो उसे बाते याद थी, और बड़ी बातूनी। उसने सब बताया, जिस स्कूलमे वह पढ़ती है, उसमें कौन टीचर अच्छी है, कौन बुरी, किस-किस लड़कीसे उसकी अधिक मित्रता है। जिस बसमे वह जाती है उसका नम्बर क्या है। खैर उस दिन उसने खूब बाते की। मै बिलकुल चुप रहा क्योकि मेरे पास कुछ भी नहीं था। फिर भी हम दो दिनोंमे खूब घुल-मिल गये थे। कैरम वह बडा अच्छा खेलती थी। और ताश, लूडो, स्नेकलैडर, ट्रेड, ओम्नीबस न जाने क्या-क्या तो वह खेल लेती थी। खैर, पिकनिकके पश्चात् जब वे लोग चले गये तो अचानक मुझे लगा जैसे दुनियामे कोई काम करनेको ही नही रह गया है। फिर तो जब भी पिताजीके साथ शहर जाते उनके यहॉ ज़रूर जाते। लेकिन थोड़े दिन घर रहकर वह अपने किसी सम्बन्धीके यहॉ चली गई।"

"मेरी पढाई चलती रही।" सुधीन्द्र भाई कुछ रुके। तभी मैंने देखा, धीरे-धीरे कुनमुनाता हुआ पापा रह-रहकर जीजीको नोचता हुआ अपनी जिदको चालू रखे हुए है। अदम्य इच्छा हुई, जोरसे एक चॉटा मारकर धकेल दूॅ। न बाते करने देता है, न कुछ सुनता है। बड़े लाडले आये।

पर जैसे-तैसे अपनी इस इच्छाको दबाया। निश्चय कर लिया कि इसबार इसने बातोंमें जरा भी विघ्न डाला तो कान पकड़कर बाहर निकाल दूँगा, फिर चाहे जीजी बकती ही रहें।

"मैट्रिक कर लेनेके पश्चात् वकील साहब और पिताजीमें यह एक अच्छा खासा विवाद उठ खड़ा हुआ कि पढ़ाई जारी रखनेके लिए मैं हॉस्टलमें रहूँ या वकील साहबके यहाँ। पिताजी हॉस्टलके पीछे पड़े हुए थे क्योंकि दो-चार महीनेकी बात होती तो कुछ नहीं था। खैर, मैं यहाँ हॉस्टलमें आया। वकील साहबने आज्ञा दे दी कि दिनमें एक बार यहाँ जरूर आओगे। हॉस्टलमें अच्छी तरह जम लेनेके बाद मैं वकील साहबके यहाँ जाने लगा। एकाध घण्टा बैठता और चला आता। वकीलनी (जिन्हें मैं चाची कहता था) और वकील साहबसे ही बातें करता था। बातोंमें वह नलिनीकी तारीफ करते। हमारी नलिनी ऐसी है, वैसी है, यों पढ़नेमें तेज है, यों खेलनेमें होशियार है। एकाध बार तो मैंने सुना, फिर तो मुझे झुँझलाहट आने लगी। क्योंकि उसकी प्रशंसा करते वह थकते नहीं थे और मुझे लगता था जैसे उनके कहनेका बस इतना ही मतलब है—तुम चाहे जितने होशियार हो, नलिनी तुमसे लाख दर्जे इंटेलिजेंट है। अक्सर वह पूछते, कुछ तकलीफ तो नहीं है। रोज ही कुछ न कुछ खिला देते। मैंने वहाँ सैकेन्ड-इयर किया, और छुट्टियोंके पश्चात् जब मैं वहाँ गया तो बताया गया कि नलिनी अब वहीं आ गई है। मैट्रिकमें फर्स्ट पास हुई है, सैकेंड पोजीशन है। यहीं पढ़ेगी। कभी-कभी मैं उसके विषयमें सोचा करता, न जाने कैसी होगी। हमलोग सन् छत्तीसमें मिले थे और अब था पैंतालीस। नौ-दस वर्षका अन्तर बहुत होता है। तभी वकील साहबने उसे बुलाया, "चाय ले आओ नलिनी।" और नलिनी चायकी ट्रे लेकर आई। मैं बुरी तरह चौंक गया, पहिली जो धुँधली नलिनी मेरे मानस-पटलपर थी उसकी इससे कोई तुलना नहीं थी। मैंने नमस्कार किया। नलिनीने चायका ट्रे रखकर नम-

स्कारका उत्तर दिया मुस्कुराकर। और बेझिझक वकील साहबके पास बैठ गई।

"भाई साहब, फर्स्ट डिवीजनमे पास होनेकी मिठाई तो खिलवाइए।" मै चकित रह गया, लाख बचपनमें मिले सही लेकिन मै तो एकदम किसी लडकेसे भी इस तरह नही बोल सकता। फिर वह तो पन्द्रह वर्षकी एक लडकी थी जो धोतीमे सिमटी सिमटाई-सी अपनेमे ही लीन हो जानेकी चेष्टा किया करती है। पर न तो उसकी वाणीमे, न व्यवहारमे, किसी प्रकारकी झिझक, सङ्कोच या लज्जा मुझे लगी, इसके विपरीत मै स्वय ही सोचमे था कि क्या उत्तर उसे दूॅ। चाय बन गई थी तभी अपना कप उठाकर वकील साहबने कहा—"तुम तो इसे भूल-भाल गये होगे। यह तो वही नलिनी है जो तुम्हारे यहॉ गई थी, यह चुडैल कुछ भी नही भूलती—न मालूम बचपनसे ही ऐसी याददाश्त लेकर पैदा हुई है। छोटी-से-छोटी बात सब इसे याद है।"

"इन्हे क्यो याद होगा—हारते थे न, जिस खेलको देखो उसीमे गोल रखे थे। मिठाई चाहे जब खिलवाइए, लेकिन चाय क्यो ठण्डी किये डालते है?" और वह कुटिलतासे मुसकराकर कपपर झुक गई। मै उसकी ओर सीधा देखनेका साहस नहीं कर सका। इधर-उधर भागती दृष्टिको समेटकर उस ओर लानेकी चेष्टा करता, पर जैसे वह वहॉ पहुॅचकर किसी शक्तिसे छिटक उठती। उसके इस उत्तरपर भी मै कुछ नहीं बोला।

"भाई साहब! आप तो बहुत ही शर्माते हैं।" उसने फिर कोचा। इस बार मेरा सारा सङ्कोच जैसे इस वाक्यकी प्रतिक्रियासे क्षोभ बन उठा। बडी असभ्य लडकी है, मनमें सोचा, जबसे आई है कुछ-न-कुछ बोले ही जा रही है। जब मै नही बोलना चाहता तो मेरे पीछे क्यो पडी है? मैने कहा—"आप तो मुझसे अच्छी तरह पास हुई है, आप पहिले खिलाइए न।"

"या तो बिल्कुल ही नहीं बोल रहे थे, और अब बोले तो ऐसी शिष्टता से बोले कि छोटे-बडे सबका ध्यान भुला दिया।" जल्दीसे चायकी घूँटको घूँटकर वह हँस पडी। हाथका कप कॉप गया और चाय छलक गई। वकील साहब इस सारे वातावरणका आनन्द ले रहे थे। बनावटी क्रोधसे बोले—'क्या कर रही है ? तमीजसे बात कर। सारे कपडे खराब किये लेती है।' मुझे वकील साहबपर क्रोध आ रहा था। यह तो नही कि ठीकसे डाटे, तभी तो इतनी बेशर्म हो गई है। लडकियोंके इतने निर्लज्ज होनेके मै खिलाफ हूँ। यही चीज तो उनमे अन्य चारित्रिक दुर्बलताओंको जन्म देती है. . और भी मैंने उसके विषयमे न जाने क्या-क्या उलटा-सीधा सोच डाला। बातोका उत्तर तो मैंने उस समय दिया, पर मुझे उसका बेझिझकपन अधिक पसन्द नहीं आया, और वकील साहब थे कि अपनी बेटीकी इस बहादुरीपर फूले पडते थे। मॉ-बाप ऐसा लाड-प्यार करते है तभी तो लडकियॉ बिगड़ जाती है। सामने तो वडी इतराती रहेगी और सैकड़ो सिनेमा-उपन्यासोंके दृश्य उस समय मेरे सामने आये। जब वही इतनी बेशरम है तो मैं ही क्यों हयादार बना रहूँ—सोचकर मैंने सारा सङ्कोच छोड दिया। उसकी ओर देखा, वह सुन्दर थी पर स्त्रियोंमे एक स्वाभाविक लज्जा, हलका-सा संकोच रहता है, वह असुन्दरको तो सुन्दर बनाता ही है, वह जैसे सुन्दर पर भी कलई कर देता है—पर वहॉ कुछ नहीं, वही सपाट मुँह। हाथमे केवल दो सोने की चूडियॉ। ऊपरसे नीचे तक कुछ नही। उल्टे पल्लेकी धोती, सो भी कन्धे पर झूल रही थी—नये आदमीके सामने जाते है तो थोड़ा सिर पर रख लेते है। मैं सोचने लगा इस लडकीको इतना निर्लज्ज बना देने मे इसके इस सौन्दर्यका कितना हाथ है। जब चलने लगा तो बोली—"देखिए भाई साहब, मुझे इस बार तीन इम्तहान देने है। कॉलिजमे इन्टरका तो है ही, एक विशारद और दूसरा सगीतका। कहिए कैसा रहेगा ?'

"बडा अच्छा रहेगा।" कहा, पर सोचा, शायद यह दिखाना चाहती है कि मै कितनी पढ़ाकू हूँ।

"संगीतके लिए हमने एक ट्यूटर लगा लिया है, सत्तर रुपये लेगा। विशारद हमे आप करायेंगे।" उसने एक बार वकील साहबकी ओर देखा। मैं इस अप्रत्याशित बोझसे जैसे अचकचा उठा। वकील साहब बोले—"हॉ दिलवा दो भई। पास तो यह हो ही जायेगी, लेकिन तुम तैयारी करा दोगे तो जरा अच्छी तरह पास हो जायेगी। हिन्दीके तुम विद्वान् भी हो, सब जानते हो। ठीक रहेगा। सन्ध्याको चाय यही पिया करो।"

"हॉ-हॉ।" करके मैंने स्वीकृति दी। उस समय तो मुझे यह विश्वास हो गया था, इस लडकीको अपने सौन्दर्यका गर्व है। इसीलिए यह इतनी निर्लज्ज है। उसे गर्व है तो रहा करे—गर्व करनेवालोंके लिए यहॉ भी गर्व कम नहीं है। दो-एक दिन तो पढाऊँगा, ठीकसे पढ़ी तो ठीक है, जरा भी तीन-पॉच की तो उसी दिन छोड़ दूँगा, कोई बहाना बना दूँगा। ज्यादासे-ज्यादा वकील साहब बुरा ही तो मानेंगे। इस क्षोभ और द्वन्द्वके भीतर कभी मुझे लगता जैसे कोई बड़े मृदुल स्वरमे पूछता—"किन्तु यह नलिनी है कैसी लडकी?" खैर उस दिन, दिन भर मैंने उसके विषयमे जो भी सोचा वह अधिक अच्छा नही था।

"और सन्ध्याके समय मै उसके पास जाने लगा, उसे पढाने। भाभीजी, जब आज भी उन बातोंको सोचता हूँ तो शर्मसे गर्दन झुक जाती है। किसीके विषयमें इतनी जल्दी सम्मति बना लेना कितना खराब है। सच कहता हूँ, उस जैसी बुद्धिवाली लडकी मैंने जिन्दगीमे एक भी नही देखी। ओफ! क्या दिमाग़ पाया था उसने। किसी भी बातको एक बार समझा दो, कमसे-कम इस जिन्दगीमे दूसरी बार समझानेकी जरूरत ही नहीं। कभी कापीमे मीनिंग या नोट्स नही लेती थी। और इतनी सुन्दर

लिखाई कि क्या कहूँ। एक किताब पढ लेती तो शब्द-प्रतिशब्द वह उसे महीनो याद रहती। बहुतसे स्थानोंपर वह मुझे पढाती थी या मैं उसे, यह मै आज तक नहीं जान पाया। मै उसे बडे ध्यान और गम्भीरतासे पढ़ाता और वह बडे आनन्दसे पेन्सिलसे खेलती या पेनसे नाखून रँगा करती। मै झुँझलाकर एकदम पूछ बैठता, "बताओ मैने क्या बताया?" और वह मेरा प्रत्येक शब्द दोहरा देती। मैं आश्चर्य करता यह लडकी है या आफत! पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी, और भी न जाने कितने कवियोकी सैकडो कविताएँ उसे याद। उसके निबन्ध देखकर उसके मनन-पर सिर खुजाना पडता था। उसकी कहानियाँ देखकर आँखे फटी रह जाती थीं। मैंने उसे तीन वर्ष पढाया। इस बीचमे उसकी प्रत्येक अच्छी-बुरी बात देखनेका मौका मुझे मिला। अब इसे आप चाहे जो कुछ भी कहिए—मेरी दुर्बलता या बुद्धिमानी—मै उसकी एक-एक बातका भक्त बन गया।" कहकर सुधीन्द्र भाई कुछ देरके लिए रुके कि उनकी यह प्रशसा अति पर तो नहीं पहुँच गई है। माताजी की ओर देखकर उन्होने खिलौना लेनेके लिए अपनी मूक जिद जारी रखते पापाको शून्य आँखो से देखा। फिर कहा—"भाभी जी, आप सोचेगी मै व्यर्थ ही उसकी इतनी प्रशसा करके उसे आसमान पर क्यो रखे दे रहा हूँ। लेकिन मुझे वास्तवमे ऐसा लगता है उसकी पूरी बात कह ही नही पा रहा हूँ। खैर तब मैंने जाना कि क्यो यह लडकी निडर, निर्भीक और बेझिझक है, क्योकि उसके हृदयमे भय, कलुष, या उलझन नहीं है। वह उन लडकियोमे से नहीं है जो मनमे हजार उल्टी-सीधी बाते रखते हुए भी ऊपरसे अपनेको बिल्कुल निर्लिप्त दिखाया करती है। और उसके स्वभावकी वह सबलता, वाणीकी तीव्रता, मुक्त हास्यकी चचलता उसके रूप-गर्वके प्रतीक नहीं है, वरन् वह उसकी प्रखर प्रतिभाका प्रचण्ड विस्फोट है, जो उसके व्यक्तित्वके इन सब रूपोंमे दिखाई देता है।"

"तो ऐसी वह लड़की थी।" सुधीन्द्र भाई ने फिर बोलना प्रारम्भ किया, "मै उसे पढ़ाता था किन्तु इस बातका निश्चय मुझे हो गया कि यह केवल संयोग है, जो मै उससे पहिलेसे पढते होनेके कारण उससे आगे हूँ और उसे पढ़ा रहा हूँ, नहीं तो इसे स्वीकार करनेमे मुझे कोई झिझक नही कि वह मुझसे कई गुनी अधिक बुद्धिमान्, प्रतिभा-शालिनी थी। सबसे बडी बात जो मैने उसमे नई देखी वह यह कि किसी की अप्रत्याशित बातसे एकदम प्रभावित नही होती थी, इसीलिए प्रायः वह भावुक नही थी। जब मै उसकी उन बेझिझक खुली आँखोमे देखता तो लगता न मालूम कितने गहरे खुले आकाशको मै देख रहा हूँ, जिसका कही भी ओर-छोर नही है। मुझे निश्चय हो गया कि यह लड़की किसी दिन सारे देशको अपनी विलक्षण प्रतिभासे चकित कर देगी।"

"खैर, मै उसे पढ़ाता रहा। एक दिन उन चाचीने बताया कि अपने जिन सम्बन्धीके यहाँ वह पहिले 'मैट्रिक' तक पढने को रही थी, उनका पत्र आया है। उन्होने लिखा है कि नलिनीके लिए लडका उन्होने ठीक कर लिया है, लेकिन नलिनीने स्पष्ट कह दिया कि उसका विचार अभी शादी करनेका कतई नही है। अभी वह थर्ड ईयरमे ही पढती है, कम-से-कम एम० ए० तक वह इस विषयपर सोचेगी भी नही। फिर दूसरा पत्र आया—वह लडका इसी मुहल्लेका है, हमारी ही जातिका है, पिछले आठ-दस सालसे मै उसे देख रही हूँ—बडा सुशील और सीधा लडका है। उसीने नलिनीको मैट्रिकके लिए इङ्गलिश पढ़ाई थी—नलिनी भी उसे जानती है। घर काफी सम्पन्न है—वह सुखी रहेगी, पास रहेगी। लेकिन नलिनी भी एक नम्बर की जिद्दी लडकी—एक नहीं मानी। फिर तीसरा पत्र आया—उस लड़केने नलिनीमे पता नहीं क्या देखा है कि अपने बापसे स्पष्ट कह दिया है कि शादी करूँगा तो इसी लडकीसे, नही तो बिलकुल नही। इसी विषयमे वे मुझसे सलाह लेने आई थी कि अब क्या

करे ? नलिनी पास बैठी सब सुन रही थी। मै कुछ राय जाहिर करूँ इससे पहिले वह स्वय बोली—"पता नहीं क्यो लडकोको शादी करनेकी ऐसी जल्दी पडती है। लाइए मै उन्हे लिख दूँ सीधा, कि मै आपसे शादी नही करना चाहती।" मैने उसकी ओर देखा, शायद वह मजाकमे कह रही हो, पर उस समय वह काफी गम्भीर थी। मैं उस ओर देख नहीं सका। वकीलनीने कहा, "समझाओ इसे।" यद्यपि मन-ही-मन मैंने स्वीकार किया कि बात ठीक है, जब वह पढना चाहती है तो उसे पढने देना चाहिए। तो भी मैंने यो हीं कहा—'जब वह इतना हठ पकड रहा है तो मान जाओ न, कर-करा लो उसीसे शादी।"

"उसने मुझे ठीक इस तरहसे देखा, जैसे किसी बच्चेको देखती हो और वह झिडककर बोली—'आप भी क्या बात करते है भाई साहब, बच्चों-जैसी। अब अचानक मै ही आपसे कहने लगूँ कि मुझसे शादी कर लीजिए, तो कैसे हो सकता है। न मैंने उन्हे कभी इस दृष्टिसे देखा, न मेरे मनमे कभी ऐसी बात आई।' उसके मुखपर उत्तेजना थी। उसका मुख-मण्डल प्रदीप्त था।

"मुझे हँसी आई,—कैसी मूर्खताकी उपमा इसने दी है। कहा—'न सोचा न सही, तब भी इसमे हर्ज क्या है?'

'हर्ज क्या है?' उसने बच्चोकी तरह मुँह बिरा दिया—"हर्ज है कैसे नही, ऐसा हो नहीं सकता। मैने उन्हें सदैव गुरुकी भाँति पूजा और भाई की पवित्र दृष्टिसे देखा है। जिस तरह आप हम लोगोमे काफी घुल-मिल गये है न, ठीक वैसे ही उनकी बात है वहाँ। मैने कभी सोचा भी नही था कि एक दिन वे इस प्रकार हठ करके बैठ जायेगे कि मै शादी करूँगा तो इस नलिनीसे ही करूँगा।" वह थोडी देर चुप रही, फिर जैसे स्वय ही सोचती-सोचती बोली—"हिश्, मै नहीं करूँगी शादी-वादी।"

"खैर, मैं चुप रहा। दो-तीन दिन फिर उसी स्वाभाविकतासे कटे। एक दिन गया तो पता चला कि उसके वही चाचाजी आये हुए है। उस दिन नलिनी बडी चिन्तित-उदास थी। उसने बताया, 'आज रात-भर मै ठीकसे नही सो पाई। चाचाजी आये है, बता रहे है कि लड़केको भी जिद आ गई है कि शादी बस नलिनीसे होगी। उसने तीन-चार दिनसे अनशन कर रखा है। जब मै शादी नही करना चाहती तो क्यो ये लोग मुझे विवश कर रहे है कि मै शादी करूँ ही। अब आप ही बताइए मै क्या करूँ? चाचाजी इसीलिए आये है, ये लोग किसीका आत्मविकास होते नही देख सकते। मै बुद्धिमान् हूँ, मै प्रतिभाशील हूँ, मैं सुरीला गाती हूँ, सुन्दर बजाती हूँ और सौन्दर्यशालिनी हूँ,—फिर? कहिए, आपको इन सब बातोसे क्या मतलब? आपको यह कैसे विश्वास हो गया कि मैने यह सब चीजे आप के ही लिए सहेज कर रखी है। इसमे मेरा अपना कुछ नही है? अजब आफ़त है।' और क्रोध अथवा घृणासे उसने अपना निचला ओठ जोरसे चबाया। मै चुपचाप देखता रहा। उसके वाक्यमे सत्यकी ज्वालाएँ थी। लेकिन मैं, उस समय, क्या कर सकता हूँ—समझमे नही आता था। उसे समझाया "शादी तो नलिनी तुम्हे करनी ही है। अब नही तो वर्ष बाद। फिर तुम्हे अब ही ऐसी क्या आपत्ति है?"

'तो आपको ऐसा अधिकार किसने दे दिया कि आपने तो मुझे देखा, और खटसे मचल पड़े, अनशन कर दिया कि मै तो इसीसे विवाह करूँगा— और हम सोच भी नही पाये कि सारे घरवाले चील-कौवोकी तरह नोचने-खोचने लगे—कर इसीसे, कर इसीसे।' उसकी आँखोमे, पहिली बार मैने देखा आँसू आ गये थे, जिन्हे वह एक घूँट-भरके पी गई, फिर बोली—'भाई साहब, आप तो समझेगे, मै और लडकियोंकी तरह बहाने-बाजी कर रही हूँ पर मै हृदयसे कह रही हूँ, मुझे शादी करनेकी इच्छा ही नहीं है।' वह चुपचाप कुछ सोचती रही, फिर बोली—'चाचाजी ने मुझे

रातको कोई दो घण्टे लेक्चर पिलाया, नाश्तेके समय सुबह समझाया और अभी बाहर गये है। आकर फिर भाषण देगे—माताजी, बाबूजी—सभी मेरे पीछे पडे है। अब आप भी . ...मै क्या करूँ भाई साहब, इससे अच्छा तो मै कही मर जाती।' उसकी इस अन्तिम बातसे अचानक मै चौंक गया। यह उसके मुँहसे निकला हुआ पहिला वाक्य था जो उसने जैसे व्यथासे तड़पकर कहा था। मै स्वयं भी उन दिनो काफी उद्विग्न, बेचैन, व्यथित रहा था। मेरी स्थिति बडी विचित्र थी, यदि मै शादीका विरोध करता तो वे लोग मेरे और नलिनीके विषयमे न जाने क्या-क्या सोचते। पर फिर भी, बार-बार जैसे कोई ललकारकर पूछता—'क्या मै उसके लिए कुछ नही कर सकता ?—क्या नही कर सकता कुछ ?' और यह प्रश्न ही धमककर ध्वनि-प्रतिध्वनिके रूपमे व्याप्त हो जाता कि उसके उत्तरके विषयमे मै सोच ही नहीं पाता था। बडा खिंचाव शिराओमे था। मैने दु:खी स्वरमे कहा—'क्या बताऊँ नलिनी, मै स्वय भी कोई राह नही सोच पाता! तुम्हारी प्रतिभाका मै शुरूसे ही कायल हूँ। मेरा विश्वास था कि यदि यो ही तुम्हारा स्वाभाविक विकास होता गया, तो तुम एक दिन अपनी प्रतिभासे ससारको चकाचौंध कर दोगी। पर अब. .''

अचानक सुधीन्द्र भाई अपनी बात कहते-कहते रुक गये, क्योकि मैने आगे बढकर उस जिद्दी पापाके दोनो कान पकड लिये थे। गुस्सा तो ऐसा आ रहा था कि दो मारूँ तान कर चॉटे—तबियत ठिकाने आ जाय। बडे लाडले बने है, जबसे मना कर रहे है कि मान जा, मान जा, तो समझमे ही नही आता। सब बच्चे बाहर खडे है और ये बेचारे यहाँ खड़े है, अकेले, यहाँ खिलौना लेनेको। ले खिलौना, अब तुझे कैसा खिलौना देता हूँ। दोनो कान खिंचते ही पापा जोरसे चीखा, एक बार उसने मेरी क्रुद्ध सूरत देखी और जीजीका पल्ला पकड़ लिया।

"अरे क्या कर रहा है रे..." माताजी चिल्लाईं—"क्यों उसके कान उखाड़े ले रहा है?" मैं उसके कान यो ही खींचे-खींचे बाहर ले चला।

"हाँ ले जा, ले जा, जबसे समझा रहे है तो मानता ही नहीं है।" जीजीने बनावटी गुस्सेसे कहा, वास्तवमे उन्हें मेरा यह व्यवहार अच्छा नही लगा था। जिद करता हुआ पापा बुरा माताजीको भी लग रहा था, पर जीजीकी ओर देखकर वे एक दम उठीं, पापाकी बाँह पकडकर मुझे एक ओर धक्का दे दिया। "मानता ही नही है।" पापाको उन्होने गोदमे उठा लिया—"भैया जिद नहीं करते।"

मुट्ठी बनाकर आँखोको मलते हुए उसने सिसक-सिसककर मूर्तिकी ओर एक हाथ बढाकर कहा—"अम्मा, वो लेगे।"

"अच्छा ले।" माताजी उसे उठाये-उठाये मेटलपीसके पास गई और वहाँसे गेरुए रंगकी चमकदार चीनीकी बनी वह मूर्ति उसे दे दी। उसने दोनो हाथसे कसकर पकड़ लिया।

मै भुनभुनाया, "उसका क्या है, वह तो जरा-सी देरमे तोड देगा। ग्यारह रुपयेकी एक मूर्ति लाया हूँ—सो भी अब मिलती नही है—ऐसी सुन्दर और गठी हुई।"

"हाँ-हाँ नहीं तोडेगा।" माताजीने कहा—"हम दे देंगे पैसे, दूसरी ले आना।" फिर उन्होने पापाको जीजीके पास बैठा दिया फर्शपर ही। जीजीने उसे समझाया—"हाँ भैया, तोडियो नही।"

"अब मिली जाती है दूसरी!" मै मन ही मन दाँत पीसकर रह गया। चुप रह गया यह सोचकर सुधीन्द्र भाई न जाने क्या सोचेंगे, उनकी बात सुनते-सुनते ऐसा बखेड़ा मचा दिया। उसकी ओर एकाध बार देखकर

उनकी बातके प्रति उत्सुकता दिखाई—"हॉ फिर क्या हुआ?" पापा मूर्तिको फर्शपर रखकर खेल रहा था—कभी इधरसे झॉककर देखता, कभी उधरसे।

सुधीन्द्र भाई बडी विचित्र-सी दृष्टिसे यह सब देख रहे थे। हो सकता है उन्हें बुरा न लग रहा हो, पर उन्हें विशेष अच्छा भी न लग रहा था—मैंने तत्काल अनुभव किया। इसीलिए ऐसा भाव दिखाया जैसे कुछ हुआ ही नही—हमने अधिकसे अधिक अपना ध्यान उनकी ओर केन्द्रित कर दिया।

"हॉ तो दूसरे दिन जब मै गया तो चाचीजी बडी दुखी-सी आई—'तुम्हीं बताओ सुधीन्द्र, मै क्या करूॅ? उसे लाख समझाया। मैंने समझाया, तुम्हारे वकील साहबने, लालाजी ने, लेकिन वह तो एक ही रट लगाये है—मै तो पढूॅगी—मै तो पढूॅगी। लडका कहता है तुम जिन्दगी-भर पढ़ोगी तो मै जिन्दगी-भर पढाऊॅगा, अपना घर-बार सब बेचकर पढाऊॅगा। जो तेरी इच्छा हो सो कर, पर वह मानती ही नही है।' 'कहॉ है?' मैंने पूछा। बताया, 'भीतर पडी है पलगपर, न खाती है, न नहाती है। बस रोये जा रही है, अब हमारी तबियत तो इससे बडी हलकान होती है। इतनी बड़ी हो गई, आज तक नही रोई और अब तुम्हीं समझाओ।' मैंने पूछा, 'चाचाजी गये?' उन्होंने जिस ढंगसे हॉ कहा मै कुछ-कुछ समझ गया। कुछ नही कहा। चुप भीतर गया। कमरेमे पलगपर वह चुपचाप औंधी पडी थी—रह-रहकर उसका सारा शरीर कॉप उठता था। मै कुछ देर चुप रहा, फिर पुकारा—'नलिनी, नलिनी।' उसने कुछ नहीं कहा। मै उसके पास ही पलगपर बैठ गया। दोनो कन्धे पकडकर उसे सीधा किया—देखा, वह रो रही थी। उसके खिले गुलाबसे चेहरेको जैसे पाला मार गया था, सारा मुॅह उसका लाल हो गया था, और ऑखे बीरबहूटीके सुर्ख रंगकी तरह जल रही थी। उस समय एक क्षणको भाभीजी, सच मुझे

ऐसा लगा कि इस दहकते चेहरेके लिए मै क्या न कर दूॅ। किस आसमानके नीले और मनहूस पर्दोंको चीर दूॅ जो उसपर अपनी काली छाया डाले है और कौन-सा पहाड है जिसे उठाकर फेक दूॅ, जो इसका रास्ता रोके हुए है। उस समय मुझे अपनी बाहोमे वज्र-जैसी शक्ति लहरे लेती अनुभव हुई। मैने उसका सिर लेकर अपनी गोदमे रख लिया—बाल उसके चेहरेपर फैल आये थे उन्हे एक हाथसे इधर-उधर कर दिया। बडे दुखीसे स्वरमे कहा—'नलिनी ऐसे क्यो रो रही हो?' उसका रोना बन्द हो गया था, केवल कभी-कभी एक हिचकीसे उसका सारा शरीर सूखे पत्तेकी लडखडाहटको भॉति कॉप उठता था। मेरी समझमे नही आता था मै क्या कहकर उसे सान्त्वना दूॅ। फिर कहा—'नलिनी, रोओ मत।' लेकिन नलिनीकी इतनी देरसे सचित रुलाई फिर फूट पडी और वह फिर बुरी तरह रो उठी। मेरा कण्ठ स्वय भीग गया था और ऑखोमे ऑसू बडी मुश्किलसे रुक पा रहे थे। फिर भी मैने उसे समझाया—'नलिनी जो हो गया सो हो गया। वह तुम्हें विश्वास दिलाता है कि पढने इत्यादि की पूरी सुविधा देगा। क्यो व्यर्थ रो-रोकर अपना स्वास्थ्य खराब करती हो।' लेकिन जैसे वह कुछ सुन ही नहीं रही थी। उसे तो इस समय जैसे रुलाईका दौरा आ गया था—बस रोये जा रही थी। उस दिन मै भी रोया। लेकिन उस दिनके बादसे उसके शरीरकी स्फूर्ति, उसके चेहरेकी उत्फुल्लता, उसकी भोली ऑंखोका उल्लास जैसे किसीने मन्त्रके जोरसे खीचकर फेक दिये और वह एक साधारण ककाल मात्र थी—निस्तेज और उदास। किसी ओर देखती तो बस देखती रहती।

"और पिछले साल उसका विवाह हो गया। जिन्दगीमे शायद दूसरी बार वह जी खोलकर रोई। उस दिन उसने मुझसे कहा—'बस भाई साहब, अब नही रोऊॅगी, क्योकि जो चीज मेरे पास असाधारण थी, जिसका मुझे गर्व था और जिससे मुझे इतना मोह था—अब सदाके लिए उसकी चाह

छोड दी है। बस, अब मै एक साधारण लड़की हूँ—दुर्बल और कमजोर।"

वह ससुराल चली गई। थोड़े दिन बाद आई। जब मैने फाइनलकी परीक्षा दी तभी उसने बी० ए० की परीक्षा दी—जैसे बिल्कुल निरुत्साहित और निर्लिप्त होकर। आपको आश्चर्य होगा, तो भी बी० ए० मे उसने टॉप किया। विभिन्न पत्रोमे जब उसके चित्र छपे, और उसने देखे तो मुझे लगा उसका वह उन्मुक्त उल्लास फिर उसे कुछ समयको मिल गया है। बहुत प्रसन्न होकर उसने कहा—'भाई-साहब, चाहे कोई कितना ही विरोध क्यो न करे, मै तो खूब पढ़ूँगी।' पर तभी फिर अचानक कुछ क्षणको उदास हो गई। उन दिनो उसने सगीतका अभ्यास खूब बढा लिया था। रोज मुझे कुछ-न-कुछ सुनाती—उन दिनो वह बडी प्रसन्न रही। ओफ, कितना सुन्दर वह गाती थी! आज तक मै निश्चय नही कर पाया कि उसकी प्रतिभा सगीतमे अधिक अभिव्यक्त होती थी या लेखनमे। उन दिनो उसने कुछ सुन्दर निबन्ध और कहानियाँ लिखी। छुट्टियो भर इस बातपर बहस होती रही कि वह एम० ए० कहाँ 'जॉइन' करे। ससुराल वालोके पत्र आते कि बनारस ही सबसे अधिक ठीक रहेगा और वह कहती कि मै तो यही पढ़ूँगी। एक दिन वहम हाशय स्वय आ धमके लेनेके लिए। वे आकर हठ पकड गये कि लेकर जाऊँगा तो अभी, नहीं तो आप अपनी लडकीको रखिए, फिर मेरे यहाँ भेजनेकी जरूरत नही है। हम लोगोने लाख समझाया कि वह बी० ए० में ऐसी अच्छी तरह पास हुई है, और उसकी ऐसी उत्कट लालसा है कि आगे पढे तो क्यो न पढने दिया जाय। वे बोले, पढनेका इन्तजाम क्या वहाँ नही है। बनारस यूनिवर्सिटीमे वह बडे आरामसे पढ सकती है। खैर, वे महाशय उसे लेकर ही टले, बस, वही मेरी और उसकी अन्तिम भेट थी। एम० ए० वह जॉइन नही कर सकी। लिखा, 'यहाँसे आकर इनकी तबियत खराब हो गई है। मै रात-रात

भर जागकर भगवान्‌से मनाती हूँ कि ये ठीक हो जाये तो कॉलेज 'जॉइन' करूँ—एडमीशनकी तारीखें निकली जा रही है।' लेकिन वह सज्जन तो शायद प्रण करके ही बीमार हुए थे कि दो महीनेसे पहले ठीक ही नहीं होंगे। सो वह एडमीशन ले ही नहीं पाई। उसने लिखा, 'भाई साहब, कभी-कभी तो इच्छा होती है पडा रहने दूँ बीमार और जाने लगूँ पढने। पर सोचती हूँ ये लोग मुझे खा जायेंगी।' इसके बाद और भी, समय-समय पर पत्र आते रहे, उन सबमें जो कुछ लिखा था, उसका तात्पर्य था, 'भाई साहब, मैं क्या करूँ, यह मेरी समझमें नहीं आता। यहाँ कोई काम मुझे करनेको नहीं है, दिन-रात यह बात जोंककी तरह मेरा खून सुखाये देती है कि जिस प्रतिभाकी आप यों तारीफ करते नहीं अघाते थे, जिस बुद्धिपर मुझे गर्व था, जिस सौन्दर्यसे मेरी सहेलियाँ ईर्ष्या करती थीं, मेरे जिस सगीतपर बाबूजी झूम आते थे, जिस शैलीपर लोग दाँतो तले उँगली दबाते थे, क्या वह सिर्फ इसलिए है कि निरर्गल और व्यर्थकी प्रेमकी बातोंमें भुला दी जाय? वे समझते हैं कि अधिक-से-अधिक प्रेम-प्रदर्शनसे वे मुझे प्रसन्न कर रहे हैं, दिन-रात, तुम परी हो, तुम अप्सरा हो, तुम यह हो, तुम वह हो और मैं तुमपर भौंरे, परवाने और पपीहेकी तरह मरता हूँ। सच कहती हूँ भाई साहब, इन बातोंमें मेरा मन नही लगता। हाँ मैं सुन्दर हूँ—तुम मरते हो, फिर? लेकिन वे है कि दफ्तर जायेंगे—जो घरसे एक मील है—तो चार खर्रे भरकर प्रेमपत्र लिख भेजेंगे, जैसे न जाने कितने वर्षोंके वियोगमें जल रहे है। उसमें सैकडो सिनेमाके गीत लिखे होते है, तकदीर कोसी गई होती है, दुनियाको लानत दी जाती है कि भाग्यका खेल है, दुनियाने हमें यों अलग कर दिया है, वह हमारा मिलन यों नहीं सह सकती। पता नहीं वह दुनिया कहाँ रहती है? अब आप ही बताइये इन मूर्खतापूर्ण बातोंसे क्या फायदा? कोई कहाँ तक अपनेको इन बेवकूफियोंमें उलझाये रखे।' और भाभी, नलिनीका अन्तिम पत्र तो बडा ही करुणापूर्ण है।

लिखा है, 'मेरे चारो ओर भीषण अन्धकारकी एक अभेद्य चादर आकर खडी हो गई है, भाई साहब, मै तब कितनी रोई-चीखी थी कि मुझे इस अन्धकारके गर्तमे मत धकेलो, मै वहॉ मर जाऊँगी। इस अन्धकारके खूनी पञ्जोने मेरी अभिलाषाओ और उच्चाकाक्षाओकी गर्दन मरोड दी है, और अब मै इतनी अशक्त हो गई हूँ कि छटपटा भी नही सकती। खाने-पीने और प्रेमकी इन झूठी-सच्ची बातोके बाद बचे हुए समयमे कभी शॉपिग करने, घूमने या सिनेमा जाने या दिन-भर औरतोकी इस-उसकी बुराई-भलाई करनेवाली बातोमे अपनी जिन्दगीको बॉध देनेमे मैं अपने आपको बिल्कुल असमर्थ पा रही हूँ। इन दिनो यह मानसिक भर्त्सना मुझे खाये जा रही है। भाई साहब, मैं क्या करूँ? मै मानती हूँ, हजारो लडकियोको यही चरम और परम सुख है—पतिका अन्धाधुन्ध प्यार, सोने और चॉदीसे भरा-घरबार, और निश्चित दिन। लेकिन इतने दिन मैंने जो कुछ भी पढा, जो कुछ भी सीखा, जो आज भी मै समझती हूँ, लाखो लडकियोसे अच्छा था, क्या केवल इसीलिए था कि यहॉ आकर सड जाय? यहॉ करने बैठूँ भी तो ज्यादा-से-ज्यादा खाना बना लूँ, चौका-बर्तन कर लूँ। हो सकता है इन बातोमे मेरा सारा समय लग जाया करे—लेकिन बस? इसीलिए मैंने उस देवदुर्लभ प्रतिभाको सँजोया था? भाई साहब, ये शादी करनेवाले लडकियोके यहॉ जाकर पूछते है—तुम्हारी लडकी गाना-बजाना जानती है, कसीदाकारी जानती है, मिठाई बनाना जानती है?—उस समय उनकी इच्छा होती है, कि ससारका कोई काम क्यो बच जाय जिसे यह लडकी न जानती हो? लेकिन कोई इनसे पूछे, विवाहके फेरोंके बाद सिवा चौके-चूल्हेके कौन-सी कलाकारी लडकीके काम आती है। कोई मुझसे पूछे, मेरी सारी किताबोको कीड़े खाये जा रहे है। पढनेके प्रति किसीमे रुचि नही है। यो शौक सभीको है कि लडकीके सामने एजूकेटेड शब्द लगा सके। वैसे सभीको पाउडर, लिपस्टिक और बुनाइयोंकी बाते

करनी उससे अधिक आवश्यक लगती हैं। बुनाई इसलिए नहीं कि कला है, बल्कि इसलिए कि फ़ैशन है, इसलिए कोई नई बुनाई देखी सब उसकी नकल करेंगी। नया ब्लाउज़, साडी देखी, वैसी ही लायेंगी—बनवायेंगी। नये कटका गहना देखा, खटसे पहला टूट रहा है नया बन रहा है। रोज चीजें टूटती है, रोज बनती है। किसी-किसीको तो शायद एक बार भी नही पहना जाता, और टूटकर नया बन जाता है, क्योंकि वह पहलेसे अधिक सुन्दर है। और यह क्रम कभी खतम नहीं होता। मेरे वायलिन और सितारमें मनो धूल भर गई है। महादेवी और मीराके गीत मै यहाँ गाकर सुनाऊँ तो सब उल्लुओकी तरह मेरा मुँह देखे। बात-बातमें इनकी इज्जतका ध्यान, बात-बातमे स्त्री होनेकी घोपणा। यह ऊँचे घरोकी बाते है। नीच घरोंको भी देखती हूँ, जहाँ चूल्हे-चौकेसे ही फुर्सत नही मिलती। सच भाई साहब, आज हृदयमे बडी प्रचड शक्तिसे यह भाव उठ रहा है कि काश, मै एक साधारण लडकी होती। मूर्ख और भेड, जिसके बचपनकी सारी तैयारियाँ, शिक्षा-दीक्षा केवल विवाहके लिए होती है, और विवाह होनेके बाद जैसे इन सारे झंझटोसे छुटकारा मिलता है। इस सबके लिए शायद सबसे अधिक दोषी आप हैं। आपने ही मेरी महत्त्वाकाक्षाओको उभाडकर इतना बढा दिया था कि तू यो करेगी, यो करेगी! आपने ही मेरे दिमाग़मे भर दिया था कि मै असाधारण प्रतिभा-शालिनी हूँ, और आपने ही अपने कन्धोपर चढ़ाकर इतना ऊँचा उठा दिया था कि आज जब ये लोग मुझे फिर उस कीचडमे घसीट रहे है, तो टूट जाना चाहती हूँ, बिखर जाना चाहती हूँ, मर जाना चाहती हूँ, पर नीचे नहीं आ पाती। अब बताइये मै क्या करूँ? कैसे मर जाऊँ? मै कब तक यो छटपटाती रहूँ? भाई साहब, मुझे कोई रास्ता बताइये, बताइये न! केवल विवाह करके यो इन चारदीवारियोंमे सड जानेके लिए शायद मैं नहीं जनमी थी, मुझे और कुछ करना था—मुझे कुछ और करना था!'

"खैर भाभीजी, यह उसका अन्तिम पत्र था, फिर तो उसका तार ही आया।"

यह सब बोलनेमें सुधीन्द्र भाईका स्वर न जाने कितनी बार गीला हुआ, कितनी बार भर्राया, पर इस बार तो जैसे वह बोल ही नहीं पाये। गलेमे कफ-सा अटक गया, उसे खाँसकर साफ किया फिर थोडी देर चुप रहे। पापा बुद्ध भगवान्‌की मूर्तिको धीरे-धीरे पृथ्वीपर ठोक-ठोककर खेल रहा था, एक बार हमने उस ओर देखा, पर जैसे भाव-शून्य होकर। सब उत्सुकतासे सुधीन्द्र भाईकी ओर ही देख रहे थे।

"मैं जब वहाँ गया तो पता चला कि वह अस्पतालमे है," सयत होकर सुधीन्द्र भाईने कहना आरम्भ किया।

"अस्पताल ?" प्राय· सभी चौंके।

"हाँ।" उन्होंने कहा, "उसके सारे घरवाले स्तब्ध-से थे। अस्पताल गया—देखा उसका सारा शरीर फफोलोंसे भरा था या जलकर काला हो गया था। वह मर चुकी थी, उसने मिट्टीका तेल छिडककर आग लगा ली थी।"

"है!" जैसे किसीने बडे भारी कॉसेके घण्टेमे समस्त शक्तिसे हथौडा दे मारा—सारा वातावरण झनझनाकर थर्रा उठा।

उसी समय पापाने बुद्ध भगवान्‌की मूर्तिको जोरसे पृथ्वीपर पटक दिया। खन-खन करते हुए सुन्दर खिलौनेके चमकदार टुकडे इधर-उधर बिखर गये. ..

हम सब मन्त्र-जडित थे।

घण्टेकी झनझनाहट गूँज बनकर डूबती जा रही थी।

परदेशी

परदेशीका जन्म १९२३ में हुआ। घरपर सब कुछ था, परन्तु जिजीविषा घरसे बहुत दूर ले गई—बम्बई। "बम्बईमे वह सब देखा, जो न देखना था। वह सब किया, जो न करना था। शहराती जीवनकी विभीषिका और वैषम्यका मनपर गहरा प्रभाव पडा।" कथा-साहित्य और राजनीतिकी ओर प्रवृत्त हुए। क्लर्की, प्रेस-मैनेजरी, मास्टरी, सम्पादन, प्रचार-कार्य—उदर-पूर्तिके लिए अनेक धन्धे अपनाये, किन्तु मन किसीमे रमा नही। आरम्भमे कविताएँ लिखी, अनन्तर कहानियाँ, उपन्यास और राजनीति पर पुस्तके।

परदेशीकी कहानियोंमें चिमनियोकी मायानगरी बम्बईके निम्न मध्यवर्गीय जीवनकी हृदयहीनता, कटुता, क्रूरता और घिनौनेपनका यथार्थ चित्रण हुआ है। ऐसा सजीव चित्रण कि पाठक स्तब्ध रह जाता है। परदेशीकी ये प्रकृतवादी कहानियाँ ('१२६ वी लडकी', 'द्रौपदी') जो बहुधा पाठकके मुँहमे राखका सा स्वाद छोड जाती है, शायद कुछ लोगोंको 'गन्दी' लगें। ऐसी स्थितिमे यह कहना आवश्यक होगा कि परदेशीकी कहानियोकी ये 'गन्दगी' उस अन्धसघर्षमय शहराती जीवनकी गन्दगी है जिससे उनके कथानक उठाये गये है। जो हो, इतना तो मानना ही होगा कि परदेशी हमे झकझोरकर उस दुनियाके प्रति सजग कर देते है जिसकी ओरसे हम शायद सदा आँखे मूँदे रखना पसन्द करते। परदेशीकी अपनी शैली है और उसमे वेग, प्रवाह तथा शक्ति है।

परदेशीका एक कथा-सग्रह 'चम्पाके फूल', दो उपन्यास 'चट्टाने', 'औरत, रात और रोटी'; और तीन कविता-सग्रह 'चित्तौड', 'जयहिन्द', 'परदेशीके गीत' प्रकाशित हो चुके है। सद्यःप्रकाशित पुस्तके है—'भगवान् बुद्धकी आत्मकथाः १' और 'एशियाकी राजनीति'। 'योरपकी राजनीति' यन्त्रस्थ है।

• अवरोध

—परदेशी

मॉने जाने क्या सोचकर उसका नाम समरथ रख दिया था। देहीमे एकदम दुबला, और कायासे कमजोर! स्वभावमे सीधा और भोला। चरित्रमे साधारण।

सारा गॉव कहता—इस विधवा भटियारीको तो देखो, जैसे इसीके लड़का हो और सब औरते निपूती हो! रहनेको सरपर छप्पर नही, पेटका ठिकाना नही, फिर भी बेटेका नाम 'समरथ'! रखनेको यही नाम मिला इसे? और भी तो बहुतेरे नाम थे! इकलौता है, तो 'अमरत' नाम रख देती, समरसे अमर हो जाता! पर समरथ? गॉवके लोगोकी घिसी-पुरानी बुद्धिमे यह नये आकार-प्रकारका नाम कैसे समाता? सो, उन्होने समस्या का हल निकाल लिया, और समरथ—'समा' रूपमे असमर्थ बन गया।

जब बाप मरा तो सवा नौ महीनेका था। दो-तीन साल तो वह बीमार-बीमूर रहा, फिर चगा हो गया और दस तक कभी सिर न दुखा उसका। बुढिया मॉने किसीका पिसना पीसा, किसीके बर्तन मॉजे, किसीका चौक और किसीका पानी पूरा। और यो पतिकी निशानीको समरथ बनाया। चौधरियोंके घरसे कमीज और धोती मॉग लाती। छोटा-सा समरथ लम्बे आस्तीनवाला, घुटनोसे नीचा कमीज पहने स्कूल जाता और हरेक साल, किसी-न-किसी प्रकार अगली कक्षामे बैठ जाता। अध्यापक जानते थे कि यदि समरथ फेल हो गया, तो बुढिया आकर तब तक रोती रहेगी, जब तक उसका लल्ला पास न हो जाय! इस तरह समरथ उत्तीर्ण होकर बढता गया और एक दिन जब समाचार-पत्रमे उसकी तसवीर आ

गई तो जैसे वृद्धाकी मनोकामनाएँ मूर्त हो गई। बात यह थी कि अपनी ग़रीबीके प्रति चेतना जागृत होनेसे सातवें और आठवें दर्जेमें समरथने तन-तोड़ मिहनत की और पूरे सूबेमे प्रथम आकर समरथ कुमार बन गया। इसी साल उसने दो नई मंजिलें और तय कीं। एक तो यह कि वह हाकिमोकी तरह घुमा-फिराकर हस्ताक्षर करना सीख गया और दूसरे जब परीक्षा देने शहर गया, तो स्कूलकी दीवारके नीचे बैठे फोटोग्राफरसे अपना चित्र खिंचवाया, जिसमे वह हवाई जहाजकी खिड़कीमे दिखाई दे रहा था। इस 'छवि' की चार कापियाँ उसने सवा रुपयेमें खरीदीं। उन पर हस्ताक्षर किये और एक कापी अम्माको दी। देखते ही उसका कलेजा धक् रह गया—"अरे लल्ला, कहीं जहाज चीलकी तरह नीचे गिर जाता, तो मैं क्या करती? रो-रोकर अपने प्रान ही दे देती!"—दूसरी कापी उसने खुद रखी। तीसरी अपने साथी को दी, और चौथी—चौथी प्रानको डाकसे भेज दी।

काँपते-हाथो उसने प्रानको पत्र लिखा, कई बार उसे चूमा, उसके बाये सिरेपर गुलाबके फूल और पत्ते बनाये और पेस्टल बॉक्सके रंग भरे। फिर, दोस्तोकी नजर बचाकर उसपर पता लिखा और डाकमे छोड आया। लेटरबॉक्समे खतके गिरनेपर जब 'खट' की ध्वनि हुई तो उसे खटका हुआ, कही प्रान अपने भैयासे कह देगी, तो? या माँसे ही कह दे? डाकघरसे लौटनेपर बडी रात तक उसकी छाती धड़कती रही। उसने खाना नहीं खाया—न खाना ही चाहिए था उसे, इसीमे नैतिकता थी उसकी, क्योंकि उसे प्रेम हो गया था और अब वह बाकायदा प्रेमी और समझदार विरही था!

उसने अपने बिछौनेपर पड़े-पड़े सोचा कि प्रान अपनी छातीसे उस फ़ोटोको चिपकाये सिसकियाँ भर रही है और केसरिया ओढ़नीके छोरसे गुलाबी आँखे पोछ रही है। समरथके हृदयमे भावनाका आवेग उभर

आया और आँखे परिपूर्ण हो आईं—यह आठवींके एक सफल छात्रके रूपमे उसकी प्रथम प्रेम-पीर थी—भय, विनय, संशय-भरी। मधुर और भोली !

फिर तीन साल तक समरथ 'इंग्लिश ट्रान्स्लेशन एंड कम्पोजिशन' मे दिये हुए नमूनेके अनुसार अर्जियाँ लिखता रहा। यहाँ तक कि उसे सारा मजमून कंठस्थ हो गया और गाँवके अन्य छात्र उसके पास आकर अर्जियाँ लिखवाने लगे। दिन भर बेर-अबेर घरपर ताँता लगा रहता, बडे-बूढ़े चिट्ठियाँ पढवाने आते। विधवाएँ 'मनीआर्डरसे लौ लगाये हुए', पतोहूको आशीष लिखाने आतीं। बहुएँ परदेस गये पतियोसे अबकी सावनमे आनेकी शपथ लिखवातीं और पति, जो अहमदाबादकी मिलोंमे लोहेके साँचोंमें अपने सपने ढाल रहे थे, बोनस मिलनेकी आसमे जी रहे थे !—इससे एक लाभ हुआ कि भटियारी माँ के मनसे नौकरी न मिलने का गम समरथकी योग्यताके भ्रमसे कम हो गया और उसे घर आये लोगोंके स्वागत और आवभगतमे गौरव अनुभव होने लगा। लेकिन, इन सबसे काम कैसे चलता, और पेट तो रोटीसे ही भर सकता है—कागजसे नहीं, किताबोंसे नहीं, मान और सम्मानसे नहीं, प्रानके माखनिया चेहरे से नही, उसकी चपल-कजरारी आँखोसे नही !

नतीजा यह हुआ कि जेबमे, कई रातो जागकर लिखी, एक लम्बी अर्जी लिये, गठरीमें खाना बाँधे और प्रानके पितासे इकन्नी-रुपया-सूदपर माँके लाये पच्चीस रुपये लेकर समरथ बम्बई चला। माँने माथेपर दहीका टीका लगाया। बहन थी नहीं, सो-पड़ोसकी एक बालिका शुभ-शकुन रूपमे सामने आई। इसके पश्चात् मित्र और जोडीदार बीस मील दूर पहुँचाने आये, जहाँ विधवाके किस्मत-सा सूना एक छोटा-सा स्टेशन था। दो-एक मित्र साथ ही बसमे बैठ गये। जो मित्र प्रेममे प्रबल और अर्थमें

अव्वल थे, वे अँधेरे-मुँह पैदल प्रस्थान कर गये कि समयपर स्टेशन पहुँचकर प्रतीक्षा करें। आखिर, उनका एक दोस्त और गाँवका पहला जवान—जिसका फोटो अखबारमें छप चुका है, कमाईके लिए दूर परदेस—बम्बई जा रहा है! यह तो एक ऐतिहासिक घटना थी। बेचारे गँवई लोगोंको तो इस अण्डाकार नामका सही उच्चारण भी नहीं आता! न उन्होंने रेडियो सुना था, जिसपर मेम हर शाम गला गुदगुदाती है—'दिस इज बॉम्बे कालिंग...' समरथकी इस यात्रासे गाँवके प्यालेमें तूफान आ गया। उत्साह की लहर व्याप्त हो गई। और यह सारा उत्साह-सार माँके अन्तरमें समा गया और वहाँ बे-तारसे उसका तत्त्वांश समरथके मर्मपर छा गया। बम्बई का सपना सजग खड़ा हो गया—पैंतालीस लाखकी आबादीवाला विराट् नगर! पन्द्रह लाख सड़कपर सोने वाले! मानो फुटपाथके इन वासियोंसे भी बम्बईकी शान और शोभा—उसका दबदबा बढ़ता है।

चौधरीने कहा—"भटियारी माँ, सहर क्या है, समुन्दर है! पूरा सूबा ही समझ। इन्दरपुरी है। मिट्टी भी मोल बिके है, एक आनेमें पाव भर!"

भटियारी माँ—समरथकी असमर्थ माँ—कुछ न समझ सकी। वह क्या जाने कि जमाना बदलनेसे पहले, लोगोंकी नीयत बदलकर मिट्टीमें मिल गई है।

फिर वे लोग आये, जो हरिद्वार या रामेश्वरकी यात्रामें जेब कटवाकर घर लौटे थे, उन्होंने जेबकतरोंसे लड़केको सावधान किया। और पेन्शनर करीम खाँने खुदासे उसके भविष्यकी दुआएँ माँगनेके साथ ही उसे उन 'फेसनवालियोंसे खबरदार रहने' को कहा, 'जो बेसरम होकर दीदे फड़कावे है।' वास्तवमें, करीम खाँ बरसोंसे रँडुआ था और उसकी अतृप्त वासना आये दिन पाँच भले आदमियोंके बीच उपदेशका अमृत बनकर झरती थी।

सो, उस दिन समरथ चला।

प्रान इसके पहले मिली थी। पिछवाडेकी कडी खोल, ठाकुरोंकी बाडी लॉघकर, नीम-नीचे चोरी-चोरी वह आ गई थी। समरथके सीनेसे लग कर वह खूब रोई। समरथको भी असह्य वेदना लगी। न शब्द सूझते थे, न बोल निकलते थे। घरसे जब चला था, राह भर अपनी कमजोरीको दबाता जा रहा था। पर वह टूटी हुई स्प्रिंगकी तरह, ऐन वक्तपर उभरकर ऊपर उठ आई! इसपर भी वह प्रानसे दूरी बनाये रहा, क्योंकि पिछली-बार मेहताओंके बगीचेमे जब वह मिली थी, तब समरथने, जाने भूलसे, जाने-अनजाने, देखे-अनदेखे उसके अधरोंका अमृत छू लिया था। तब तो तुरन्त प्रानके प्राण-पछी जैसे उड़ गये हो—बाँहोंसे छुडाकर और पीठ उसके हाथोंसे हटाकर छूट गई और फुस्फुसकर अचानक सिसकने लगी। समरथने बडी आरजू-मिन्नत की। रूमालसे उसके ऑसू पोछे, हाथ जोडे और मुँहपर हाथ रखकर चुप करनेकी कोशिश की, कि हवा भी न सुन ले।

जब कॉप-कॉपकर समरथ रह गया और प्रेमके ॲधेरेमें कोई मार्ग न सूझा तो उसके मुँहसे निकला—"प्रान, मुझे मरा देखे, जो कारण न बताये, क्यों रोती है?"

प्रानने लम्बी-लम्बी सॉस लेकर, पहले हिचकियॉ समेटी। फिर नजरे नीची कीं और पलकें ढाल दीं और दोनो हाथोंकी अपनी उॅगलियोंसे अपने नाखूनोको छुआते हुए लाजमें बोली—"और हम पूछे, चूमकर तुमने हमे जुठला दिया और अब इससे.. हम कहे, इससे हमारे . बालगोपाल हो गया, तो ..हम कहे. .नदीमें हम डूब मरेंगी!"

"धत् तेरी, इसीके लिए यह बवाल मचाया था कि?" समरथने चौधरीकी दुलारी बिटियाके धौल जमाया। बोला—"हम कहे प्रान, जो किसी नन्हे-मुन्नेको चूमते है, तो क्या उसके बालक हो जाता है?"

लडकी लड़केके समान कुशाग्र बुद्धि नही थी। उसके तर्कसे प्रसन्न हो गयी।

और आज पाँच वर्ष बीत गये !

जीवनकी धारा अनेक पथरीली और ऊँची-नीची जगहोपर बहनेपर भी, अपनी वक्रता छोड़कर सीधी सपाट न बही। आज प्रान नहीं, माँ नही, साथी-सगाती नही। सिर्फ़ यह बाजार है—भरा-भरा, पर सूना-सूना। बंबई है—लंबी-चौड़ी बंबई ! काली-सफेद सडकोवाली, लम्बी डाढों-वाली बंबई—जैसे मृत पूतना देह पसारे पडी है !

बीचमे ८०० मीलकी दूरी है। उधर प्रान है, माँ है; इधर वह है, और है बेकारी और मुफलिसी। बीचमे यह सैकडो मीलोकी लम्बाई फैली है। घर, मकान, कपड़ा, दाल, रोटी और पेटकी सुरक्षा मजबूरी बनकर दूरीमे बदल गई है। प्रतिमास वह माँको दिलासा देता है—'जल्द आऊँगा।' माँका पत्र आता है—'आँखोसे कम दीखता है।' जल्द आऊँगा। प्रानके रेंगते अक्षरो वाली पाती आती है—जल्द आऊँगा। और वह अपनेसे कहता है—जल्द आऊँगा ?

उसकी जल्दीके ये दिन और रातें—ब्रह्माके दिन-रात बन गये है। दूरी कभी खतम नही होती, मजबूरीका अन्त नही। पाँच वर्ष निकल गये और पाँच वर्षों के लगभग दो हजार दिन कडियाँ बन-बन शृङ्खलाके बंधन बन गये है। प्रान तक पहुँचनेका 'कोई खास कारण नही'। माँ के पास जाकर जी जुडानेमे 'कोई विशेष रुकावट नही' केवल यही कि पैसा—राह-खर्च उसके पास नही है।

लेकिन वह माँ को कैसे समझाये कि सचमुच ही पैसा उसके पास जल्द आनेवाला है और वह माँ के पास जल्द आनेवाला है। आखिर वह झूठा नही। एक दिन वह ज़रूर जायेगा, उसे जाना ही है। यहाँ 'कोई

खास अडचन नहीं। बात सिर्फ इतनी-सी है कि पासमे बाईस रुपये छह आने नही है।

और अक्सर रेल्वे ऑफिसमे बुकिंगकी खिड़कीपर वह पूछ-पाछ कर लेता है—"किराया कम हुआ?"

"नहीं!" चश्मा-लगी आँखोसे बाबू उसे घूरकर देखता। बाबूके फूले मुँहसे निकला यह 'नही' पहले सीधा, फिर तिरछा होकर उसके कानोमे प्रविष्ट हो, पेटमें, जिगरमे पहुँचता है। फिर वहाँ पहुँचकर उलट जाता है जैसे नागन डॅसकर उल्टी हो जाती है। तब एक दर्द बाकी रह जाता है।

उस दर्दकी घुटनमे भी वह लिखता है—बड़े आराममे है। लम्बी-लम्बी सडके, ऊँचे-ऊँचे मकान, जिनका छज्जा देखना चाहो, तो सिरसे टोपी गिर जाये। जब बाहर यह हालत है, तो भीतरवालोका क्या हाल होगा? उनका तो सारा सिर ही फिर गया है! जहाँ चाहो इकन्नीमे ट्राममे बैठकर पहुँच जाओ। बडी-बड़ी होटलें, स्टुडियो, दफ्तर, कम्पनियाँ, इमारतें, हेगिंग गार्डन, नेशनल पार्क, और मिल्क कॉलोनी, जूहू, ताज, गेट-वे, एशियाका सबसे बडा स्टेशन—वी० टी०, और कलकी—अमरीकी दुकानमे आज आ बैठा खादी-भण्डार, तेरह हजार महीना जो शो-केसका किराया देता है, सब कुछ तो है—लेकिन एक नौकरी नहीं। पाँच सालोसे वह दफ्तर-दफ्तर और सड़क-सडक और सडकसे दफ्तर तक भटक रहा है। हजारो मील उसने पैदल तय कर डाले है, पर अभी नौकरी नहीं। और घर लौटनेके लिए आवश्यक रुपये भी नहीं। दुनियामे सब कुछ होते हुए भी जैसे उसके लिए कुछ भी नहीं है, क्योकि उसके पास नौकरी नहीं है।

"बाबू जी, बाईस छह आनेसे किराया कम हुआ?"

"नही जी, कम कैसे होगा, अब तो और भी बढ़ेगा।"

उसका चेहरा बदल गया है। आँखें अन्दर, गालोंकी हड्डियाँ बाहर और कदम सुस्त पड़ गये है। दिमाग थक गया है। नजरोमे प्रानका चेहरा

धुँधला पड़ने लगा है, और आँखो-आगे माँकी तसवीर मिटने लगी है !

भटकन, भुखमरी, बेरोजगारी ! कल्पना, चिन्ता, भ्रम ! आशा, निराशा और परेशानी ! समुद्र, रेगिस्तान और दलदल !

समरथ इतना मायूस और फटेहाल दिखने लगा कि लोगोंको दया आती। उसे वे सब स्थान मालूम हो गये थे, जहाँ मुफ्तमे खाना मिल सकता है—नरनारायण-मन्दिर-द्वारपर गुजरातिनें, पारसियोंकी 'अग्यारी'पर पारसिनें और माधोबागमें मारवाडिनें रोटी-चावल बाँटने आतीं। वह जरूरत देखकर सब जगह जाता रहता।

राहगीर एकाध इकन्नी थमाकर चले जाते। खुश होकर वह ले लेता। सिक्केको गौरसे देखता। किङ्ग इम्परर की तसवीरसे उसे भय, विस्मय और आनन्द मिलता। सहेजकर वह पैसा रख लेता। जब तीन-चार-पाँच रुपये हो जाते, तत्काल माँ को भेज देता।

माँ और प्रानकी खुशी उसपर केन्द्रित थी और उसकी खुशी सिक्केपर अङ्कित किङ्ग इम्पररकी छविपर निर्भर थी। काश, उसके पास इतने किङ्ग इम्परर हो जाये कि वह घर—अपने घर—पहुँच सके, जहाँ उसकी बुढिया माँ है और प्रान है और है वह नीम—जिसकी छायाके नीचे हवाएँ धीरे-धीरे बहती है, परछाइयाँ मिलती है और लडकियाँ चोरी-चोरी चलती है !

मनीआर्डर-फार्मपर दो पंक्तियोंमे कंठस्थ शब्द लिखता—"जल्द आऊँगा, बहुत जल्द ! काम ठीक चल रहा है। उन्नतिकी उम्मीद है। चौधरीको पाँलागन।"

चर्नी रोडके प्रार्थना-समाज-कॉर्नरपर अपने जिलेका एक पनवाडी उसे मिल गया और उससे पहचान हो गई। उसीके पतेपर समरथ पत्र मँगवाता, वही प्रानके और माँके लिखवाये चौधरीके पत्र पहुँचते। माँ लिखती—"बेटा, मुझे रुपये-पैसे नही चाहिए, दोनो जून भरपेट खाना और जतनसे रहना। जल्द आना।"

और प्रानको तो एक ही रटन थी—"अब हम कहे, तुम आ जाओ।" ......पाती हाथोमे थमी है। बाईस छह आने बढकर अट्ठाईस हो गये है। स्वराज्यमे सब चीजे मॅहगी हो गई है। एक बेकारी, भुखमरी और वेश्याई ही सस्ती है। उसकी नजर पातीपर है, जिसके अक्षर वृहदाकार हो बढते जा रहे है, बढते जा रहे है...दिमाग कहीं और है.. कोई चिबुकपर अॅगुली छुआये...गैलपर आॅखे लगाये बैठी है! मन और प्राण जिसके आशाका तार बन गये हैं...सपनोपर जो जी रही है...और अट्ठाईस रुपये? वह मुसकरा दिया, विक्षिप्त-सी एक हॅसी उसके अधरोपर फैल गई।

हर शनिवार वह डाकघर जाकर अपनी पत्रियॉ लाता। डाकिया उसके पतेतक रेगता हुआ आये— इतना चैन उसे नही था। दो-तीन मील चलकर वह अपना खत पाता। विन्डो-डिलीवरीके समयसे पहले ही, वह क्यूमे खडा हो जाता। कभी उसका पत्र होता, कभी नही। उसके आगे-पीछे खड़े व्यक्तियोके नाम मनीआर्डर आते, पर शायद पूरे पतेदारोमे वही एक ऐसा था, जिसके नाम कभी मनीआर्डर नहीं आया।

प्रायः इधर-उधर बोझ ढोकर सिनेमाकी खिडकीके 'क्यू'मे होकर, कारोसे उतरनेवाली सुन्दरियोंके द्वार खोल, सलाम बजाकर, फुटपाथपर बैठकर, फुटकल सामान बेचने वालोकी सुरक्षामे गलीके छोरपर दिन-भर खडा रहकर, इस बातका ध्यान रखता कि हलकेका पुलिसमैन तो नहीं आ रहा है—उसको दूरसे देखते ही वह लपककर सौदागरोको सूचना देता, और वे अपना-अपना सामान सिरपर उठाकर आसपासके मकानोके नीचे जा खडे होते—इन सब क्रिया-कर्मसे, महीनोके अथक परिश्रमपर कुछ रुपये वह जमा कर लेता, पर जब उन्हें कल्पनाके अट्ठाईस रुपयोकी बराबरीमें रखकर नापता, तो उसका कलेजा बैठ जाता। और इतने दिनोके उपरान्त इस समयतक, नहाने-धोने और पेट-भरकर भोजन कर लेनेकी उसकी इच्छा बलवती हो उठती। वह बहुत मनाता कि ईश्वर उसकी भूख कम

कर दे और पाचन-शक्तिको मिटा दे, पर ईश्वरने समरथकी अन्य माँगो और विनतियोंके समान इस माँगको भी रद्द कर दिया था। उसे आश्चर्य था कि क्या कारण हो सकता है, बडे आदमियो और सेठोंकी पाचन-शक्ति क्षीण होनेका, बावजूद इसके कि जो चीजे वे हज़म कर जाते है, उन्हे हजारो समरथ मिलकर भी नहीं पचा सकते !

एक दो बार मिलके दफ्तरसे उसे बुलावा भी आया, पर वह समयपर इसलिए नही पहुँच सका कि उसके पास धुली कमीज और कम-से-कम साफ दाढी नहीं थी। चप्पल उसके फट गये थे, और अब उसने उसके नीचे सडकपर प्राप्त दो मोटे पुट्ठे बडी कुशलतापूर्वक सी दिये थे। उसे बडा दुःख है कि उसकी 'न मिली नौकरी' चली गई। और वह अट्ठाईस रुपये का वारिस न बन सका और माँके पैर छूकर प्रानका मुखड़ा देखनेसे वञ्चित रह गया !

पिछले दो हजार दिन अपने चौबीस-चौबीस घटोंकी बरात लेकर उसके सामनेसे गुजर गये और वह उतनी-उतनी बार माँसे और प्रानसे जुदा होकर दूर होता गया! उसके अन्तरतमके मर्ममेंसे कोई झाँककर पूछने लगा—और प्रान तो अब सयानी हो गई होगी...बालास तरुणी ! चेहरा और बदन भर गया होगा।...निबौरियाँ अब भी गदराती होगी और प्रान, तुम, नीम-नीचे अब भी आती होगी?...समरथका रोम-रोम रससे भीग गया और आँखे अनदेखे आनंदसे आर्द्र हो आई।

सेन्ट्रल-सिनेमामे दूसरा शो शुरू होनेकी घंटी बज रही थी। उसके आस-पास ब्लेकवाले मक्खियोकी तरह भिनभिना रहे थे—'वन-फाइव-थ्रवन-ट्वेल, टू एट-थ्री फोर'।

काश, उसे नौकरी मिल जाती, तो सबसे पहले माँको पुष्करजीके स्नान करवा देता! फिर प्रानको लेकर बंबई लौट आता, इस सिनेमामे लाता ! इस भरी भीड़में उसकी प्रान किसी राजकन्यासे कम न जॅचती !

पर जिन्दगी तो नीमकी पत्तीकी तरह है, कडुआपन लिये रहेगी और पीली पडकर एक दिन अचानक झड जायेगी।

और हरेक गुजरते हुए दिनके साथ, घर लौट जाने, प्रानको पाने, और मॉके हाथोकी बनी रोटी खानेकी उसकी आशा क्षीण पडती जाती थी। ऐसा लगता था—ससुरालसे तिरस्कृता, किसी सेठकी लडकी-सी उसकी आशाको क्षय-रोग हो गया है और वह तिल-तिलकर घटती जा रही है और एक दिन उसका हृदय-स्पन्दन रुक जायेगा, ऑखे खुली रह जायेंगी, कि कुछ देखना चाहती थीं, पर देख न सकी, ओठ खुले रह जायेंगे कि कुछ कहना चाहते थे, पर कह न सके—पति-परित्यक्ता-श्रेष्ठि-कन्या-सी उसकी सुकुमारी आशा!...भिखारियोंके सपनो और मुफलिसोंकी आशाओका क्या मूल्य? उनकी क्या वकत? सामने जो खडे है मही-रावण, उन्हें तो ललकारनेवाले चाहिए।

ज्यो-ज्यो दिन जा रहे है, उसका ख्याल बॅध रहा है कि उसे लड़ना होगा। ऐसी-वैसी नहीं, भारी लडाई लड़ना होगा। क्यो, जिधर जाओ उधर पैसा मॉगा जाता है और पैसा ही नहीं, भरपूर पैसा, जैसे कोई लूट हो रही है और इन अगणित लोगोमेंसे अनेक इस लूटमे लगे है और अनेक इसके शिकार है। इस विचारपर समरथको लगा कि उसके ऑखो-आगेका ॲधेरा थम गया है, रोशनी बढ गई है और मनकी घुटन, बेबसी मद पड गई है। ऐसे-ऐसे विचार जब उसे आते हैं, जाने क्यो जी हल्का हो जाता है।

और उसके जल्द आनेकी चिट्ठी पाकर मॉ कितनी पुलकित-प्रसन्न हो उठती होगी! उसके लिए पापड, बडी पकौडीकी तैयारियॉ करती होगी और गॉव-भरमें कहती फिरती होगी—"इस बार लल्ला जरूर आयेगा। इस बार सोनाकी मॉ, बेटा...।"

लेकिन, इस बारका तूफान और उल्कापात पहले उसके सीनेमे उठा और पटरीसे गिरी गाडीकी तरह उसकी सॉसे उलट गई और आवेग इतने वेगसे बढ़ा कि ऑखे पोछनेका उसे मौका न मिला। मॉकी रोती-त्रिलखाती मूरत सामने आ गई और सामने सेन्ट्रल-सिनेमापर लगी 'श्रवण कुमार' की मॉकी तसवीरमे उसकी अपनी मॉका मुख उभर आता लगा—उसने स्पष्ट देखा, वह रो रही है। उसकी ओर समरथका एक हाथ उठा, परन्तु मॉ तक नहीं पहुँच पाया—वह कैसा है, जो मॉके ऑसू नही पोछ सकता है? इतनी विवशता, इतनी मजबूरी? दिन इसी तरह बीतते। शरीरकी शिरा-शिरा और रोम-रोम मॉके लिए विकल हो, मॉ-मॉ पुकारने लगे। और वह सोचता, भोरसे सॉझ तक मॉका कार्य-क्रम—अब वह जगी होगी, गाय दूहती होगी। चौधरीके पानी-सानी करती होगी। छिपी कहीं कोनेमें प्रान पूछ रही है—"मॉ पत्तर आया?"

इस प्रकार वह मॉके पीछे-पीछे फिरा करता और यो ही भूख और उदासीका अपना समय गुजार देता। परेशानियो और परिस्थितियोसे लडते-लड़ते उसका स्वभाव लड़ाका हो गया था। हरदम वह गर्मी लिये रहता। मस्तिष्क अपनी विभिन्न अवस्थाओसे सघर्ष कर रहा था। कभी एकदम शीतल और कभी एकदम उष्ण। कभी वह एक ही जगह बैठा रहता। सपने—सपने और सपनोके सिवाय उसके पास कुछ नहीं रह गया था। लाल बागमें सुने भाषणोकी कल्पना वह किया करता। संघर्षके ये भाषण उसे बहुत पसन्द आते। वह भीतर-भीतर अविक्षिप्त था, बाहर-बाहर विक्षिप्त था।

एक दिन एक लम्बी-सी लाठी वह कहींसे उठा लाया। उसे कधेपर रखे बीच सडकपर खड़ा हो गया। फिर स्वयं फौजी कवायदके आदेश चीखकर उनका पालन करने लगा। पहले 'अटन्शन' चिल्लाकर लाठी कधेपर रखी, सलामी दी। उसे बन्दूककी तरह तानकर नीचे बैठ गया

और लगा, 'फायर' पर 'फायर' के ऑर्डर देने ! दर्शक तालियॉ बजाने लगे। फिर तपाकसे वह उठ खड़ा हुआ, सलामी दी और 'कुइक्मार्च' गुॅजाकर चाल चौगुनी कर दी।

मुहल्ले-मुहल्लेमे वह प्रसिद्ध हो गया !

जब उसकी लाठीपर गूॅजते 'फायर' बहुत बढ गये, तो एक दिन उस मुहल्लेके सूबेदारने उसे पीछेसे आकर पकड़ लिया और अशरण-शरण कानूनकी छायामे ले गया।

'अबे, तू क्या करता है ?'

'कुछ नहीं।'

'फिर, खाता क्या है ?'

'कुछ नहीं।'

'तेरा नाम क्या है ?'

'कुछ नही।'

'कहॉ रहता है ?'

'सडकपर।'

—आवारागर्दीमे उसे गिरफ्तार कर लिया गया।

जेलमे समरथको बडा अच्छा लगा। जगह बहुत तंग और छोटी थी, पर उस छोटी जगह रहनेवालोंके दिल उतने तग न थे, जितने बडी जगह रहनेवालोंके होते है। समरथ जल्द ही सबसे हिलमिल गया। कितने भोले और सीधे लोग है वे ! उनमेसे कुछने कुछ अपराध जरूर किये थे, परन्तु अधिकाश निरपराध थे—जो उसकी तरह 'कुछ न करनेके लिए' पकड़ लिये गये थे। न्यायपतिने सबसे एक ही प्रश्न पूछकर स्वयं ही उत्तर दिया था—'कुछ नही करता, तो साला खाता किधरसे ?'

और समरथ अपने साथियोसे कहता—

"कहें भीख माँगकर—तो बम्बई में भीख माँगना भी जुर्म। लेकिन वे, जो भीख माँगनेके लिए लोगोंको मजबूर कर रहे है, उनके लिए कोई क़ानून और कोई सजा नहीं। कानून अमीरोंकी शातिके लिए है, ताकि हमारे क्रन्दन और क्रोधसे उनके आराम मे खलल न पड़े! रोटीकी हमारी माँगे उन्हें कर्णकटु लगती हैं। उन्हें यह समझ मे नहीं आता कि रामराज्य मे कोई भूखो भी मर सकता है! कहते है, ये लोग "कुछ काम क्यो नही करते, आखिर हम भी तो दिन भर काम करते है!"

जेलमे समरथने दस्तकारी सीखी। अपने अपढ़ साथियोको अक्षर-ज्ञान दिया। दस्तकारीसे उसके पास तीस रुपये जमा हो गये! अवधि पूरी होने पर वह छूट गया।

जजने छोड़ते हुए कहा—"आगे गुडागीरी मत करना माँगता। कुछ काम करने सकता। काम करो।"

समरथ क्या कहता? सो चुप रहा। मन ही मन मुसकराया और बाहर आया।

दरवाजे पर पीपल सूख गया है। जामुनका पेड बड़ा हो चला है। खपरैल पिछली आँधी-बरखामें उड गई लगती है। कजरी गैयाकी ठठरियाँ निकल आई है—फिर भी, वह आदमीको पहचानने मे बम्बईके लोगोसे अधिक कुशल और सदय है। जब रँभाने लगी तो समरथसे न रहा गया, उसके गलेमे दोनो बाँहे डाल दीं।

वृद्धा अपने, हड्डियाँ-निकले-जवान बेटेका चेहरा देखकर थम-थमकर रो रही थी, जैसे किसी अबलाकी लहराती फसल पर पाला पड जाये! नैन नीचे किये प्रान पास में खडी थी, वह न राज़ी थी, न नाराज थी। बस, उसके दिलमे कुछ-कुछ हो रहा था। वह कहना चाहती थी—'हम कहें... बरज दिया था, हम कहे न जाओ.'

समरथ बोला—"न रो माँ, और यो न देख प्रान ! कुशासनकी वेदी पर बलि होने वाले हमी अकेले नहीं है। देशके मरघटपर परिवारके परिवार मिट रहे हैं ! जो सरकार अपने बच्चोको रोटी नही दे सकती, वह उन्हे 'कुछ भी' करने को मजबूर करती है, और दुनियाका कोई भी कानून उन्हें दोषी नहीं बता सकता।"

माँको समरथ इस बार अधिक पागल लगा।

फिर भी माँ, बेटा और प्रान—इसलिए जी रहे थे कि वे अपनी मिट्टी पर खड़े थे। उनके शरीर सूखे थे और पेट खाली थे। उनकी विषमावस्था पर सूखे नीमपर रहने वाला अर्थ-पिशाच अट्टहास कर रहा था ! उसे कदाचित् इन्सानकी सघर्ष-परम्पराका बोध नहीं था, इसीलिए वह हँस रहा था।

मोहन राकेश

कबीरपंथी वृत्ति और विषम परिस्थितिके द्वन्द्वने मोहन राकेशके कथाकारको जन्म दिया है। अभी सोलहवें वर्षमे क़दम रखा था कि पिताका साया उठ गया। फिर जो अराजक संघर्षका दौर शुरू हुआ वह आज भी समाप्त होनेका नाम नहीं लेता। जन्म अमृतसरमें सन् १९२५ मे हुआ, संस्कृतमे एम. ए. कर छात्रवृत्ति पाई, दो साल होटलोमे तफरीह करते रहे, एक साल फ़िल्मोके चक्करमें बिताया, बेकारीके कमर तोड देनेपर, जीविकोपार्जनके सिलसिलेमे बहते हुए तिनकेकी तरह, इन नौ वर्षोमे, अनेक किनारे छुये। सम्प्रति डी. ए. वी. कॉलेज जालंधरमे प्राध्यापक नियुक्त हैं।

किन्तु ये नीरस तथ्य, उस व्यक्तिके जीवन और चरित्रका चित्रण करनेमे सर्वथा असमर्थ है, जिसका घर कही भी न होते हुए सर्वत्र है; जो स्थायी रूपसे विस्थापित है, पर फिर भी निराधार नही; और जिसकी रचनाओमे उसका अपना व्यक्तित्व परोक्ष रूपमें इस कदर विद्यमान रहता है कि उसकी कहानियाँ पढ़ यही अनुभूति होती है मानो जाडेकी किसी कुहरीली रातमे अलावके पास बैठे कोई किस्सा सुन रहे हो। मोहन राकेशकी कहानियोको विशेषणोकी अपेक्षा नहीं— वह सच्चे मानोमे कहानियाँ है और कुछ नही। कदाचित् यही कारण है कि मोहन राकेश नये कहानीकारोमे अग्रणी हो गये है।

आपका एक यात्रा-वर्णन 'आख़िरी चट्टान तक' और दो कहानी-सग्रह 'इन्सानके खण्डहर' तथा 'नये बादल' प्रकाशित हो चुके है।

• वासनाकी छायामें

—मोहन राकेश

यह जालन्धर है।

मुझे इस बातसे सरोकार नही कि यह शहर कितना पुराना है, और यहाँ कौन-कौन-सी तरकारियाँ पाई जाती हैं। मेरा इस शहरसे इतना ही वास्ता है, कि मै यहाँ हूँ और यहाँ रहते हुए इस शहरका एक नागरिक हूँ।

मै जालन्धरका नागरिक हूँ क्योंकि नागरिक होनेके सभी कष्ट आजकल यहाँ रहकर झेल रहा हूँ। सवेरे-शाम ग्राडट्रक रोडकी धूल फॉकता हूँ। दूधकी बजाय दो आने गिलास वाली चाय पीता हूँ। घरसे दफ्तर तक पहुँचनेके लिए एक मील पैदल चलता हूँ और दो मील बसमे जाता हूँ। यही मेरी नागरिकता है। जिस नगरमे यह नागरिकता ढोई जा रही है, उसका नाम है जालन्धर।

अजीब है। कहते है कभी कोई जालन्धर नामका राक्षस था। उसने यह नगर बसाया था। बसाया होगा। मुझे क्या? न बसाया होता तो मै होशियारपुरमे रहता, लुधियानामें रहता या फगवाडामें ही जा बसता। जहाँ कही भी रहता, मेरा गढवाली नौकर रोटियाँ इसी तरह जलाता जैसे यहाँ रहकर जलाता है। पर खैर जी, राक्षसराज जालन्धरने यह नगर बसा दिया, और उसकी सन्तानने यहाँ गलियाँ बनवाई, गलियोमे घर बनाये, घरोंमे सूराख रखे, जिनसे धूलमे भुनी हुई हवा छन-छनकर उनके कोठरोमे आती रहे, और उस हवासे गैस लेकर वे नई नस्लोका निर्माण करते रहे, और राक्षसराज जालन्धरका नाम इतिहासमे नहीं, तो कमसे कम भूगोलमे ही अमर रहे।

दो-तीन दिन मैं पुष्पाकी बात सोचता रहा हूँ, जिसे उस दिन घरके सामने पम्पपर पानी भरते देखा था। पुष्पाकी आँखें मोटी कौडियो जैसी है। पहले दिन उसने दो-तीन बार आँख भरकर मुझे देखा, तो मुझे लगा था कि या तो मेरे बाल बहुत अधिक सफेद हो गये है या मै अपनी आयुसे चार-पाँच साल छोटा लगता हूँ। नहीं तो कोई कारण नहीं था कि वह सहज विश्वास भरी दृष्टिसे मुझे देखती मानो कह रही हो, चलो, आँख मिचौनी खेलते हो?

पुष्पाकी आयु तेरह सालकी होगी? अधिक-से-अधिक चौदह साल होगी। उसका रङ्ग गोरा पञ्जाबी है। उसके शरीरको पूरा खिलनेमें अभी दो-तीन साल है। फिर भी उसकी आँखोंमे वह विस्मय भर गया है, जो यौवनका अर्थ पहले-पहल समझनेपर कुछ दिनोके लिए रहता है। उसे आश्चर्य है कि क्या वह अकेली ही जानती है कि गुलाबका रङ्ग गुलाबी क्यो है?

"पानी ले लीजिए" पुष्पाने अपनी बालटी हटाकर मुझसे कहा।

"नहीं तू भर ले!" मैंने इस विश्वासके साथ कहा कि वह मेरे सफेद बालोंका सम्मान कर रही है।

"आपको दफ्तर जाना है, भर लीजिए," उसने फिर कहा। मुझे खुशी हुई कि उसे मेरे अस्तित्वका पता है, काम-काजका पता है और उसका लिहाज मेरे सफेद बालोतक सीमित नही।

"तेरा नाम क्या है?" मैंने अपनी बालटीमे पानी भरते हुए पूछा।

"पुष्पा" उसने सङ्कोचके साथ उत्तर दिया।

"किस श्रेणीमे पढती है?"

वह और भी सकुचित हो गई! बिना मेरी ओर देखे बोली—"मै स्कूल नहीं जाती।"

"क्यो ?" मुझे आश्चर्य हुआ कि इतनी अच्छी आँखोवाली लडकी स्कूल क्यो नहीं जाती ? वैसे तो मै किसी लडकीसे लगातार तीन सवाल नही पूछता, क्योकि वे इसे घनिष्ठता समझ बैठती है। पर पुष्पा अभी उस रेखासे दूर है, जहाँ जाकर एक लडकी मेरे लिए लडकी बन जाती है।

"मै यहाँ नही रहती," पुष्पाने कुछ इस तरह कहा जैसे मेरा प्रश्न बिलकुल असगत रहा हो। "मै बापूके साथ गाँवसे आई हूँ। बापूको यहाँ काम है। काम हो जाये, तो फिर हम अपने गाँव चले जायेगे।"

मैने देखा कि उसकी आँखोने अभी लजाना नही सीखा। उसके अन्दर अभी वही ताजगी है, जो नई बहारकी गोभी मे होती है। वह गाँवसे आई है और गाँव चली जायगी। वहाँ जाकर वह सरसोके पीले-पीले फूलोसे खेलेगी और मीठा नरम-नरम साग खायेगी। कोई रातको आगके पास हीर गायेगा, तो वह विभोर होकर सुनेगी। नही तो सरसराती हवाका गीत ही सही—वह उसके रोम-रोम मे नींद भर देगा। वह अपनी अगूरी आँखोको तारोकी किरणोंमे नहलाती हुई सो जायेगी।

सवेरे उठकर वह पशुओंको चारा देगी। प्रभातीके गीत उसे फुसलायेगे, तो वह नगे पैरो नदीकी ओर भाग जायेगी। वहाँ जब तक मन मे आयेगा, तैरती रहेगी। फिर लौटती हुई धानके खेतसे मूलियाँ और शलजम उखाडती लायेगी। उसके गीले बाल रूखे ही सूख जाये, तो सूख जाये। उसके फटते हुए वस्त्र चाहे उसकी कमीजमे कटोरियाँ-सी निकाल दे, उसकी आँखोकी माधुरी रस घोलती ही रहेगी। वह गणितके प्रश्नोसे नही उलझेगी। वह भूगोलकी रेखाएँ नहीं याद करेगी। वह कोष लेकर कविताओके अर्थ नही ढूँढेगी। वह जिधर देखेगी, उधर कविताएँ बिखर जायेंगी।

अचानक मैने देखा कि मै पप चलाये जा रहा हूँ, हालाँकि बालटी भर चुकी है और पानी इधर-उधर बिखर रहा है। अपनी अन्यमनस्कता

छिपाने और पुष्पाके सौजन्यका बदला चुकानेके लिए मैने अपनी बालटी उठाई और उसका सारा पानी पुष्पाकी बालटी मे डाल दिया।

"ऊई !" मैने उसे कहते सुना। "मेरी बालटी छू गई।"

"छू गई ?" मैने कुछ लज्जित और अपमानित होकर पूछा। यह नही कि मेरा पहले कहीं तिरस्कार नहीं हुआ। तिरस्कार तो प्रायः हो जाता है, पर वहीं, जहाँ मै अपने तीनके पाँच करता हूँ। वहाँ मुझे तिरस्कारकी आशा भी रहती है। पर उपकारके बदले तिरस्कार मुझे उतना ही चुभता है जितना तिरस्कारके बदले उपकार।

पुष्पाने शायद मेरे छिले हुए भावको भाँप लिया, क्योंकि उसने क्षमा माँगनेके ढंगसे कहा—"मै बालटी माँजकर लाई थी। आपकी बालटी मँजी हुई नही थी।"

यह सुनकर मेरी आत्मा पुनः उदार हो गई। मैने मन मे दोहराया कि बालटीको राखसे मला जाये, तब जाकर वह पवित्र होती है। फिर चाहे ग़लीज फरशपर रखकर उसमे पानी भरो, चाहे चबाई हुई दातुनोके ढेरपर।

"मेरी बालटी मँजी हुई थी। मैने सवेरे माँजी थी," मै झूठ बोला। झूठ बोलना मेरी आदत है। बिना कारणके झूठ बोलता हूँ। दिनमे कई-कई बार बोलता हूँ। यह मुझे अच्छा लगता है। मै आपसे सच कह रहा हूँ।

जो मुँहसे झूठ नही बोलता, वह मनमें झूठ बोलता है। जो मनमे झूठ बोलता है, वह मुझसे ज्यादा खतरनाक है। क्योंकि वह सचका दावेदार है, इसलिए वह और भी झूठा है।

मेरे झूठका परिणाम ठीक निकला। पुष्पाने विश्वास नही किया। झूठ बोलनेका सबसे बडा लाभ यह है कि लोग उसपर विश्वास नहीं करते। पुष्पाने मुसकराकर बालटीका पानी गिरा दिया और जमीनसे

मिट्टी उखाड़कर बालटीको मलने लगी। मै अपनी बालटीमे फिरसे पानी भरने लगा।

किसीने दूरसे पुष्पाको पुकारा, "पप्पी !"

"आई बापू !" उसने पुकारका उत्तर दिया।

"पानी नहीं भरा ?" आवाज आई।

"नहीं बापू !" उसने उत्तर दिया।

"जल्दी कर, सिरमुडी !"

मैंने उधर देखा तो एक लबा बूढा जाट एक कोठीके बरामदेमे खडा सिरपर पगडी लपेट रहा था। एक तो उसकी आवाज ही कर्कश थी, दूसरे उसकी सफेद दाढी ऐसी नोकदार थी, जैसे उसीसे वह मुर्गियाँ झटकता रहा हो। उसकी आँखोका रग बतलाता था कि उसने रातको खूब शराब पी थी, क्योंकि नशा अभी तक उसकी पुतलियोंमे तैर रहा था। पगडी लपेटकर उसने दाढीपर हाथ फेरा और पुनः पुष्पाको आवाज दी—"जल्दी कर, लाडकी बच्ची, नहीं तेरा झोटा सेकूँ।"

यह देखकर कि मेरी बालटी अभी आधी भरी है, मै जल्दी-जल्दी पंप चलाने लगा। जाटने पीठ मोड ली। पुष्पा मेरी ओर दो कौडियोंका एक दॉव फेंककर मुसकराई। उसकी मुसकराहटने मुझसे कहा—तुम बेवकूफ हो। बापूकी गालियॉ बेटीको नहीं लगा करतीं।

उसके बाद दो-तीन बार मैंने पुष्पाको देखा। न जाने क्यो उसे देखकर मुझे गहरे लाल रगके मखमली फूल याद आ जाते। उन फूलोंको मैं बचपनमे अपने कोटपर लगाया करता था।

दो-तीन बार पुष्पाके बापूको भी मैंने देखा—दातुन करते, जूडा बॉधते या गालियॉ बकते उसकी मुझपर कुछ ऐसी छाप पडी, जैसे बरसात होकर हटी हो, और पुराने गले हुए टीनके छप्परपरसे महीनोका सूखा बीट पानीके साथ गल-गलकर टपक रहा हो।

आज दफ्तरसे लौटते हुए मै अड्डा नकोदरसे फरलॉग भर ही आया था कि मैने देखा सफेद दाढीवाला वह जाट मुझसे दो कदम हटकर साथ-साथ चल रहा है। मै जरा तेज चलने लगा। वह भी तेज चलने लगा। मैने चाल धीमी कर दी। उसने भी चाल धीमी कर दी।

मुझे यह कभी सहन नही कि मै किसीके साथ चलूँ, क्योकि जिसके साथ मै चलता हूँ, वह अपेक्षा करता है कि मै उसीकी तरह चलूँ और उसीकी तरह सोचूँ। पर कोई मेरे साथ चले तो यह मुझे भला लगता है, क्योकि वह मेरी तरह चलता है और अपनी तरह सोचता है।

"कहाँ चल रहे हो, बाबूजी?" पुष्पाके बापूने मेरा ध्यान अपनी ओर खीचनेके लिए पूछा।

"मॉडल टाउन," मैने इस अन्दाजमे कहा कि वह जान ले कि मै एक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हूँ, और सिर्फ इसलिए पैदल चल रहा हूँ कि मुझे संध्याके समय पैदल घूमनेका शौक है।

"हम भी वही चल रहे है। डाक्टर गुरबख्श सिंह मदानको जानते है? वह हमारे ही गॉवके है। शहरमें आकर हमारा उन्हींके घर डेरा होता है।" फिर मेरे बराबर आकर वह बोला, "चलो राह चलते एकसे दो भले।"

मैने कहना तो चाहा कि मेरे साथ चलनेमे उसे चाहे लाभ हो, उसके साथ चलनेमे मुझे कोई लाभ नही, पर इसलिए नही कहा कि कही दोआब का जाट जोशमे आकर मेरे सिरका पंजाब बना दे।

"आप इधरके ही है?" जाटने अब परिचय बढानेकी चेष्टा की।

"नही," मैने उत्तर दिया।

"आप जालन्धरमे कबसे है?" मेरे साथ चलते हुए जाटने फिर पूछा। मैने उचित समझा कि वह जितने सवाल पूछ सकता है, उन सबका

उत्तर एक साथ ही दे दूॅ, ताकि उसकी जिज्ञासा पूरी तरह शान्त हो जाय। इसलिए मैने कहा:—

"मै दो महीनेसे यहॉ हूॅ। सेक्रेटेरियटमे असिस्टेण्ट सुपरवाइजर हूॅ। वेतन एक सौ बीस रुपये है। ऊपरी आमदनी हो जानेकी आशा है। अभी ब्याह नही हुआ। लडकी देख रहा हूॅ। पढाईकी चौदह जमाते पास की है। तरकारियोमे मुझे गोभी पसन्द है। फलोमे मै आम पसन्द करता हूॅ। हर इतवारको शरीरपर कडवे तेलकी मालिश करता हूॅ। मेरी रोटी एक गढवाली पकाता है। उसकी उमर चालिस साल है। मेरे बरतन उसकी लडकी मलती है। उसकी उमर बीस साल है।"

यह सब उसे सुनाकर मैने मनमें कहा : अब पूछ ताऊ, क्या पूछता है?

पर जाटने फिर पूछा ही, "क्यो, जी, गढ़वालीने अभीतक लडकीका ब्याह नहीं किया?"

यह सीमा थी। पर मैने धैर्य नहीं छोडा जहॉ बिगडैलसे वास्ता पड़े, वहॉ मै धैर्य नहीं छोडता। सन्तोप-असन्तोप अपने घरकी चीज है। पर पीठका दर्द जाकर डाक्टरको दिखलाना पडता है। मुझे अपनी आत्मापर इस बातका गर्व है कि वह हवाका रुख देखकर फौरन तिरछीसे सीधी हो जाती है। मैने जाटका प्रश्न बिलकुल स्वाभाविक समझकर उसका स्वाभाविक-सा उत्तर दिया, "उसकी लडकी विधवा है।"

"अच्छा, जी, विधवा है। फिर तो वह उसे दूसरी जगह बिठायेगा?"

मै इतिहासका विद्यार्थी होता, तो गढवालीसे पूछ सकता था कि वह अपनी लडकीको दूसरी जगह बिठायेगा या नही? पर इतिहासमे मेरी रुचि तैमूरलङ्गकी लडाई तक ही रही है, उससे आगे नही। फिर भी जाटको तो उत्तर देना ही था। उसकी मूॅछोके बाल ॲंगडाइयॉ लेने लगे थे। मैने रास्ता काटनेकी नीयतमे कहा, "वह देखभाल तो कर रहा है। आगे लडकीकी तक्दीर है।"

"लड़की देखनेमें अच्छी है ?" जाटने पूछा।

"देखनेमे भी अच्छी है, और स्वभावकी बहुत मीठी है।" मैंने यह इसलिए कहा कि कम-से-कम बातमें तो रोमास रहे।

"अच्छा, जी ?" जाट बोला, "सच पूछो तो सबसे बडा गुण यही है। काम अच्छा करती है ?"

"काममे वह सुस्त है। हॉ, बाते बहुत करती है।"

"अच्छा, जी ?" जाट बोला। "रगोमें जवानी हो तो काम नही सुहाता।"

उसकी टिप्पणीका मजा लेते हुए मैंने उसकी ओर देखा तो उसकी ऑखोमे भूखी बिल्लीकी-सी जलन थी। उसके हाठ बूढी वासनाकी लारसे गीले हो गये थे। उसका रसभङ्ग करनेके लिए मैंने रुककर जूतोको झाडा और कहा, "इन कच्चे रास्तोपर, सरदार जी, जूतोका तो कचूमर निकल जाता है।"

जाटने मेरे अभिनय और शब्दोकी ओर ध्यान नहीं दिया। अपनी ही धुनमे कहा, "बाबूजी, आज आपके गढवालीसे मुलाकात हो सकती है ?"

"क्यो ?" मैने उसकी ओर देखकर पूछा। मुझे लगा कि वासनाकी लार चू-चूकर जम गई है और इन्सानके आकारमें धरतीपर रेंग रही है। अगर इसे आग दिखा दी जाये, तो यह यही पिघलकर तेल हो जाये।

"मुझे एक जमीदारनीकी जरूरत है, बाबूजी," जाटने कहा। "मै जमीदार हूॅ। पासके गॉवमे मेरी चार एकड जमीन है। पॉच एकड जमीन जिला करनालमे है। मै यहॉके गॉवका नम्बरदार हूॅ। घरवाली मर गई है। एक जवान लडकी है। उसका ब्याह कर दूॅ तो मेरी देख-भाल करनेवाला नहीं। घरमे एक गाय और दो भैसे हैं। घरवाली आ जाये तो उनका चारापानी हो जायेगा, और मेरी भी दो रोटियॉ हो जायेगी।" फिर उसने

मेरी बाँह पकड़कर मिन्नतके लहजेमे कहा, "आपके गुण गाऊँगा, सरकार, मेरा यह काम जरूर करा दीजिये।"

वह बोल रहा था तो उसके शब्दोंकी गूँज अपना अर्थ मुझे और ही तरह समझा रही थी। वह कह रही थी, मुझे औरतके गरम मासकी जरूरत है, बाबूजी। मै बूढा चाहे हूँ, पर मेरे अकेलेके पास नौ एकड जमीन है। घरमे गाय, भैंस और सब कुछ है, सिर्फ औरत ही नहीं है। मेरी अपनी हड्डियोपर गरम मास नही रहा, पर बूढी हड्डियाँ गरम मासका चारा अब भी माँगती है। इनके लिए चारा चाहिए, सरकार। एक गरीबकी जवानीका भुर्ता कर दीजिये।

किसी तरह गला छुडानेके लिए मैने जाटसे कहा—"गढवाली पजाबियोके साथ ब्याह नहीं करते, सरदारजी। उसका बाप उसे किसी गढवालीके ही घर बिठायेगा।" मेरी बात सुनकर जाट जरा ढीला हो गया। उसके मूँछोके बाल, जो अब तक अँगडाइयाँ ले रहे थे, अब सुस्त होकर बैठ गये। वह ठढी साँस लेकर बोला—"कहीं भी कामयाबी नजर नहीं आती। लोग कहते थे कि रिफ्यूजी कैम्पोसे मिल जाती है। पर मैं सवा सालसे चक्कर लगा-लगाकर हार गया, कोई नही मिली। डाक्टर साहबने एक पहाडन चार सौ मे ठीक की थी, वह मेरा दाढ़ा देखकर मुकर गई।"

"पर तुमको तो घरकी देख-भालके लिए ही जरूरत है न, सरदार जी?" मैंने कहा—"एक नौकर क्यो नहीं रख लेते?"

"नौकर उतना काम नहीं दे सकता, बाबूजी। जमीदारका घर है। चार आनेवाले, चार जानेवाले। फिर सेवाके लिए एक गाय, दो भैंस। इतना कुछ तो घरवाली ही सँभाल सकती है।"

"तो तुम चाहते हो कि जवान लडकी आकर तुम्हारे गुर्दे भी ठीक करे और तुम्हारी गाय भैंसोका दूध भी दोहे?"

"वह क्यों दोहे, सरकार, वह आरामसे बैठे। दूध दोहनेको हम क्या मर गये है?"

यह उसकी सौदेबाजी थी। इन्सानकी सोदेबाज़ी आदमके कालसे यो ही चली आ रही है। धरती फल-फूल और धान उगलती है, वह उन्हे उखाड लेता है और सौदा करता है। धरती धातु-पत्थर छिपाकर रखती है, वह उन्हे खोद लेता है और सौदा करता है। और वह न चले, तो धरतीका सौदा करता है। वह भी न चले, तो अपना ही सौदा करता है।

यह आज़मानेके लिए वह अपने आपको कहाँ तक सौदेमे डालता है, मैने उपदेशके रूपमे कहा, "इस उमरमे कोई मिलेगी भी तो ऐसी ही मिलेगी, सरदारजी, जो पहले कई घरोमे घूम चुकी हो, और जिसे दूसरा ठौर ठिकाना न हो। ऐसीको घरमे डाल लोगे?"

मैने देखा जाटकी मूँछोंके बाल फिर अंगडाइयाँ लेने लगे है। उसने आगे बढकर मेरी बाँह पकड ली और बोला—"आपके पास है बाबूजी? जरूर आपके पास कोई है।"

मैने नही सोचा था कि मेरे शब्दोका यह अर्थ निकल सकता है। थोड़ा भद्दा पडकर मैने स्पष्ट करनेके लिए कहा—"मेरा यह मतलब नही सरदारजी, कि मेरे पास कोई है। मै तो केवल बातके लिए बात कर रहा हूँ।"

"नहीं, बाबूजी, आपके पास जरूर कोई है।" जाटने विनय और अनुरोधके साथ कहा। मेरी पगडी अपने पैरोपर समझो और मेरा काम करा दो। दो चार सौ मै आपके सिरपर वार दूँगा—एक बार अपने मुँहसे कह दो कि है।"

मैने जाटको फिर सिरसे पैर तक देखा। उसकी भौहें सफेद हो रही थी। आँखे छोटी होकर केवल दाग रह गई थी। गालोंका माँस लटक आया था। दाँत आधे टूट चुके थे। जो दाँत शेष थे, उनकी जडो मे लहू रिस-

रिसा रहा था । बोलते-बोलते उसका थूक दाढीके सफेद बालोंमें फैल गया था फिर वह मुझसे विश्वास मॉग रहा था कि मै कह दूँ कि है—एक नारी है जो उसके लिए चारा बन सकती है, जो अपना यौवन रॉधकर उसे खिला सकती है, क्योकि वह जमीदार है और उसके घरमे एक गाय और दो भैसे है, उसकी हड्डियोमे जितना जोर है, उससे कही अधिक उसकी गॉठ मे पैसा है ।

"बोले नही, बाबू जी ?" जाटने व्याकुल उत्सुकताके साथ पूछा ।

"मै किसीको नही जानता, सरदार जी" मैने धीरेसे उत्तर दिया ।

मॉडल टाउन अब सामने ही था । पक्की सड़कपर आकर मेरी नजर पुष्पापर पडी, जो बरामदे मे खडी शायद अपने बापूकी प्रतीक्षा कर रही थी ।

मुझे फिर लाल फूल याद हो आये । मैने जाटकी ओर देखकर पूछा—"तुम अभी कुछ दिन तो हमारे पडोसी हो न, सरदार जी ?"

"नही जी, हम कल गॉव जा रहे है," जाटने कहा । "यहॉ अब किसके भरोसे बैठे रहे ? वहीं चलकर देखभाल करेगे और नही तो बदले मे तो लडकी मिल ही जायगी ।"

"बदले मे कैसे ?" मैने हैरान होकर पूछा ।

"गॉवका रिवाज है, बाबू जी । बराबरकी उमरके वर हो, तो वहॉ दो घर आपस मे लडकियॉ बदल लेते है । मै जाकर अपने जैसे ही कोई घर देखूँगा ।"

मैने देखा, पुष्पा प्रतीक्षा कर रही है । बापू जो गाली देता है वह गाली उसे नही लगती । पर बापू जो गाली नही देता, वह गाली उसे लग रही है ।

सत्येन्द्र शरत्

१९४९ में प्रयाग विश्वविद्यालयसे एम० ए० की डिग्री लेकर बीस वर्षीय सत्येन्द्र शरत्ने महसूस किया कि हिन्दुस्तानी फिल्मोंका उद्धार किये बिना निस्तार नही। सो 'प्रतीक' द्वैमासिकके (जिसके वह सहायक सम्पादक थे) बन्द होनेपर वह १९५० में फिल्मोकी मायानगरी बम्बई जा पहुँचे। चार वर्ष वहाँ झक मारी; 'जिन्दगीको विभिन्न एङ्गल्ससे लिए विभिन्न क्लोज-अप्समें देखा'; तथा एक असफल फिल्म (नाज) और एक सफल फिल्म (पहली झलक) के असिस्टेण्ट डायरेक्टर रह १९५४ मे वापस लौट आये। शरण-स्थल बनाया आकाशवाणीके दिल्ली-केन्द्रको, जहाँ आजकल नाटक लिखते है और उन्हे निर्देशितकर हवामे उडा देते है। यह काम कबतक मन बाँध रखेगा, ये कहना कठिन होगा, क्योंकि इससे पहले किये गये सभी पेशे—क्लर्की, टेलीफोन ऑप्रेटरी, सहायक सम्पादकी मन देरतक बाँध रखनेमे असमर्थ रहे है।

कहानियाँ लिखनेसे अधिक कहानियाँ पढ़ने और उन्हें याद रखनेका शौक है। ये शौक न होता तो प्रस्तुत संग्रह कैसे तैयार होता ? अबतक दो कहानी-संग्रह 'नील कमल', 'कुहासा और किरण' एक एकाकी-नाटक संग्रह 'तारके खम्भे, और एक नाट्य-रूपान्तर 'कुन्दमाला' प्रकाशित हो चुके है। हास्य-रसके नटखट नाटकोका एक सग्रह ' करेसी नोट' प्रेसमे है।

• हमपेशा

—सत्येन्द्र शरत्

अमलसे कहा गया था कि वह इन्तजार करे, सो वह बैठा इन्तजार करता रहा ।

इस तमाम दौरानमें वह क्या-क्या सोचता रहा, अब इस सबका उल्लेख तो फिजूल है, क्योंकि उतनी देरमें न जाने कितनी बातें, कितने विचार, कितनी स्मृतियाँ उसके दिमागमें उछल-कूद मचा एक ओरसे दूसरी ओर निकल गईं । सक्षेपमें इतना ही कहा जा सकता है कि अमल की उस दिमागी हलचलका यदि नकशा बनाया जाता तो 'कर्व' बड़ा बाँगा-तिरछा और गोरखधन्धे-नुमा बनता ।

उन कलाकार महोदयका चित्र अब भी उसी तरह दीवारपर मौजूद था—उसी तरह खिलखिलाकर हँसता हुआ । अमलने जरा उस तरफ देखा और खट्से अपनी दृष्टि हटा ली । क्या ठीक है? उस दिनकी तरह कमबख्त फिर आँख मार दे? या मुँह बनाकर चिढाने लग जाय?...आज वह उन कलाकार महोदयको ऐसा अवसर ही न देना चाहता था, क्योंकि वह अपनी हार स्वीकार कर चुका था । अगर स्वीकार न करता तो चालीस ही रुपयेपर अपने उन तीनों पेंसिल-स्केचोंको भार्गवजीके पास बेचने न आता । उस दिन तो वह बडी शानसे (हालाँकि रास्तेमें रोते हुए) अपने स्केचोंको वापस ले आया था । लेकिन एक सप्ताहके अन्दर ही अन्दर उसे मजबूर होकर उन्हें भार्गवजीके पास बेचने आना पड़ा था । (उसके छोटे भाईका पत्र आया था कि अमल फौरन ही तीस रुपये भेज दे—कॉलेजकी फीसके लिए । अब अधिक नहीं टाला जा सकता । तीन माह हो गये हैं—अब

ग्राम कट जायगा । और तब अमलको विवश हो अपनेको तोडना पडा था । विवशता कितनी बड़ी चीज़ है ।. ...)

उस दिनकी तरह आज मिसेज भार्गव नीचे नही आईं—अमल सोचने लगा । शायद है नही इस समय कोठीमे.. तभी उसे ख्याल आया, आज सुबह उसने अखबारमे देखा था—शामको मिसेज दत्तके बॅगले पर 'होम डेकॉरेशन क्लब'की मीटिंग है । 'ठीक है । वही गई होगी ।' उसने मन मे आप ही आप कहा और सोफेपर वड़े इतमीनानसे पीठ टिका ढुलक-सा गया ।

अचानक उसे किसी साडीकी सरसराहट सुनाई दी । मिसेज़ भार्गव आ गई है—यह ख्यालकर हाथोको नमस्तेकी रिहर्सल कराते हुए वह झटकेके साथ सोफेसे उठ खडा हुआ और पीछे घूम गया । लेकिन उसी तेजीसे उसे अपने हाथ नीचे करने पड़े, क्योकि आगन्तुका मिसेज मृदुला भार्गव बी. ए. नहीं, कोई और कुमारी जी थीं जो अपने मे ही सिमटी-सिमटी-सी थीं, जैसे कोई उन्हे छूने जा रहा हो· और जो अमलको देख एक अनोखे अंदाजसे झेंपी थीं—इस अदाजसे कि अमलके उस बुझे हुए से चेहरेपर मुसकराहटकी एक चचल रेखा दौड़ गई थी और उसका चेहरा ठीक ऐसे ही चमक उठा था जैसे किसी छोटी-सी वर्षाके समाप्त होते ही सुहावनी-सी धूप निकल आई हो ।

कुमारीजीके पीछे भार्गवजीका दरबान था—हुकुमके गुलाम-सा । वह युवतीसे बोला, "आप यहीं बैठिये । बाबूजीके पूजासे उठते ही मै आपकी खबर कर दूँगा । इतने आप बैठिये ।"

युवतीने सिर भर हिलाया, जिससे उसके कानोके बुंदे अत्यत सुदरता-पूर्वक हिल उठे और साड़ी सॅभालती हुई वह बड़े एहतियातसे सोफे पर बैठ गई ।

युवती काफी सुंदर थी। साथ ही कुछ फिल्मी फैशनके साथ सजी हुई थी। अमल कुछ देर तक उसकी ओर देखता रहा—सरसे पैर तक। "कॉलेजी गुड्डी" बहुत निष्कपंमय ढंगसे तब उसने मन ही मन कहा और कुछ उपेक्षाके साथ अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया।

कॉलेजी गुडियाओसे अमलको कोई खास हमदर्दी नहीं है, बल्कि एक तरहसे उनके प्रति कुछ उपेक्षाका ही भाव उसके मनमें है। फैशनेबल लड़कियोंको देख वह हमेशा मन ही मन कुढा है। कपडो, बनाव-शृगार और सिनेमा आदिके खर्चोंको देखिये तो लगता है कि इनके पिता छः सात सौसे कम तो क्या ही पाते होगे—तभी तो घर-परिवारके खर्चोको निपटाकर वह इनकी 'शिक्षा-दीक्षा'के लिए (या ज्ञान-प्राप्तिके लिए) सौ-डेढ सौ भेज पाते है, जिनकी होली या नुमाइश ये इस प्रकार करती हैं। साथ ही पोज इतना करेगी कि बस। . और इस पोजको देख अमल इन 'इण्टलैक्चुअल्स'की 'इण्टलैक्ट' पर हमेशा ही हँसा है। कितनी कमजोर भित्तिपर ये नेकबख्त गुमान करती है ?...पिता (और विवाहके बाद पति)के पैसोंपर। कल यदि आयका यह साधन हट जाय तब ?. फिर कैसे जीवनसे समझौता होगा ?... तब शायद. (हटाओ जी, मै भी क्या बेकारकी बाते सोच रहा हूँ ?). 'दीज सोशल पैरेसाइट्स!' उसने युवती को देखते हुए आप ही आप गुनगुनाते-से स्वरमे कहा और फर्शपर बिछे कालीनके अकनको देखने लगा।

"भार्गव जी कितनी देरमे नीचे आयेगे ?" यह प्रश्न सुन अमलने सिर ऊपर उठाया। देखा, प्रश्न उसीकी ओर डरते-डरते-से देखकर किया गया था। जाने क्यो उसकी उपेक्षा और घृणा जाग उठी, और उसने बहुत ही उजड तरीकेसे लट्ठमार रूपमे जवाब दिया, "किसे मालूम साहब ? मुझे कह कर तो वह पूजा पर बैठे नहीं थे कि इतनी देर तक पूजा करूँगा।

जब आयेंगे तब अपने आप ही पता चल जायगा। कोई सुई तो है नहीं वह, जो दिखायी न पड़े!"

युवती अपनेको अपमानित-सी महसूसकर छतकी ओर जाने वाली सीढ़ियोंको देखने लगी। अमल उसी तरह निर्विकार भावसे (जैसे उसके लिए यह अत्यन्त साधारण बात हो) कालीनका अंकन देखता रहा। (यों मनमें खुश हो रहा था—क्या सिक्सर दिया है बहनको! अब दौड़े न फील्ड में!)

तभी ऊपरसे भार्गवजीकी गूँजती हुई आवाज सुनाई दी—"दर-बान!" और दूसरे ही मिनट वही आदमी—जो अमलको भी बैठा गया था और युवतीको भी—एक हाथसे पगड़ी सम्हालता हुआ, कुछ ऐसी बदहवासीके साथ दौड़ता हुआ सीढ़ियाँ चढ़ने लगा, मानो ऊपर छतपर आग लग गई हो। तीन-एक मिनट बाद वह लौटा और अमलके निकट आकर बोला, "बाबूजीके सिरमें दर्द हो रहा है आज। नीचे नहीं आ सकेंगे। आप ही ऊपर चले चलिये। अपने सोनेके कमरेमें हैं।"

और कोई अवसर होता तो अमल अपने स्वभावानुसार अवश्य कहता, 'नो, लेडीज फर्स्ट!' लेकिन एक तो उसे कुछ जल्दी थी, और दूसरे कॉलेजी गुड़िया होनेके कारण उस युवतीके प्रति उसके मनका आक्रोश व तिरस्कार अभी तक दूर नहीं हुआ था, वह बिना उस युवतीकी ओर देखे खटाखट सीढ़ियाँ चढ़ गया।

अपने सोनेके कमरेमें भार्गवजी पलंगपर अधलेटे थे। अमलके उन्हें नमस्ते करनेपर बोले, "आइये कलाकार महोदय!"

अमल यह बिसरानेकी चेष्टा करता हुआ कि उसका नाम अमल है, और वह कलाकार है और वह मनुष्यके मनुष्यका शोषण करनेके सिद्धान्तसे घृणा करता है, पासके एक मूढ़ेपर बैठ गया। इस समय उसे केवल यही ध्यान रह गया था—छोटे भाईने पत्र भेजा है...फ़ीस देनी है...भार्गवजी

से किसी न किसी तरह रुपये लेने ही है . ...कितने भी सही. .लेने जरूर है...

"तो फिर आपने सोच लिया है न कि आप मुझे स्केच दे रहे है .. अऽऽ चालीसमे ।" भार्गवजी कुछ फुरसतसे बोले ।

"जी हॉ, अच्छी तरहसे । तभी तो आया हूँ । मगर देखिये, रुपयोका प्रबध अगर आज ही हो जाय तो बडी मेहरबानी होगी ।"

"हॉ हॉ, अभी लीजिये ।" भार्गवजीने अत्यन्त तत्परतासे कहा । फिर नौकरसे बोले, "दरबान देखो, दूकानसे मुनीमजी आ गये है या नही ?"

दरबान उसी प्रकार भागता-सा चला गया । भार्गवजीने ऑखोको विशेष प्रकारसे नचाते हुए कहा, "रुपयोकी विशेष आवश्यकता हो तो आप दस-एक रुपये और ले जा सकते है—एडवासके तौरपर । एक-आध स्केच हमे और दे दीजियेगा ।"

अमल सिरसे पैर तक सुलग उठा । वह कोई तीखी बात कहने ही जा रहा था कि रुक गया । उसे अपनी मौजूदा परिस्थितिका ध्यान आ गया । एकदम शान्त हो वह धीमे स्वरमे बोला, "धन्यवाद । फिलहाल तो इतनेसे ही काम चल जायगा । छोटे भाईको भेजने है ।"

"आपकी इच्छा" भार्गवजी मुँह बनाते हुए बोले, "मै तो आपकी सेवा करना चाहता था ।"

सेवा !.. अमलको उस दुःखी मनःस्थितिमें भी हॅसी आ गई । बोला, "आपकी कृपा बनी रहे । सेवाका धर्म तो हमारा है...आप क्यो कष्ट करते है ?"

भार्गवजी इसपर हॅस दिये ।

दरबान इतनेमे लौट आया । उसने बतलाया—मुनीमजी आ गये है और रोकड मिला रहे है ।

भार्गवजीने पास पड़े हुए एक कागजपर—'चालीस रुपये दे दीजिये'—लिखकर कागज अमलको दे दिया और कहा, "जाइये, मुनीमजीसे ले लीजिये। उस तरफवाले कमरेमे है।"

"स्केच तो मै दिनमे ही दूकानपर छोड़ आया था।" अमलने उठते हुए कहा।

"हॉ हॉ, उन्हे तो मे दूकानसे ले भी आया हूँ।" भार्गवजीने उल्लास भरे स्वरमे कहा।

भार्गवजीको नमस्ते कर अमल कमरेके बाहर जा ही रहा था कि दरबान ने कहा, "जी एक, देवीजी भी मिलने आई हुई हैं। मै तो बताना ही भूल गया था। नीचे बैठी है।"

"देवीज़ी ?" भार्गवजीने अपना चेहरा प्रश्न-चिह्नकी तरह बनाया। तब कहा, "यही बुला लाओ।"

न जाने क्यो अमलका कुतूहल जाग उठा। कमरेके बाहर निकल वह गैलरीमे कुछ आगे तक बढ़ आया और तब इधर-उधर देख आहिस्तासे एक स्थानपर अपेक्षाकृत अँधेरेमे खडा हो गया।

कुछ क्षण बाद वह युवती आई और कमरेके अदर झिझकती-सी चली गई। पीछे-पीछे दरबान था। तभी अमलको भार्गवजीका भारी स्वर सुनाई दिया, "तुम बाहर बैठो जी। अगर कोई आये तो हमें खबर करना।"

दरबान कमरेसे निकल सीधा नीचे चला गया।

अमलने वही खड़े-खड़े सुना। भार्गवजी कह रहे थे, "कहिए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?"

युवतीने गुनमुने स्वरमे क्या कहा, यह अमल न सुन सका। थोड़े समय बाद भार्गवजीकी आवाज फिर सुनाई दी, "हॉ, वह तो नहीं है इस समय। क्लब गई हुई है। लेकिन आपको तो कोई पार्ट टाइम काम

चाहिए—सो उसका प्रबन्ध तो हो जायगा। हमारे पास तो हर तरहके काम है। लेकिन देखिए, आप इन फिजूलके झमेलोंमें क्यो पडती है ? सर्विस करनेमे—चाहे वह पार्ट टाइम ही हो—बहुत तबालत होती है। आप देखिये न. . .”

इस बार युवतीका स्वर स्पष्ट सुनाई दिया, “जी हॉ, वह तो आप ठीक कहते है। लेकिन क्या किया जाय, परिस्थितियॉ कुछ ऐसी आ पडी हैं कि. पिताजी आजकल बीमार है और. . .”

“ठीक है। लेकिन परिस्थितियोको तो दूसरे उपायोसे भी अपने अनुकूल बनाया जा सकता है।” भार्गवजीका स्वर सुनाई दिया, “कोई जरूरी है कि पार्ट टाइम सर्विस ही की जाय। आप और बहुत कुछ कर सकती है मसलन...मसलन. ”

अमल अब और अधिक न रुका। ‘हटाओ जी। उसने मन ही मन कहा, ‘मरने दो’। वह किस-किसके रहस्य इकट्ठा करता फिरेगा ?

आगे बढ वह सीधा मुनीमजीके पास पहुँचा जो अपने चारो तरफ नोटो और सिक्कोकी ढेरियॉ लगाये गद्दीपर बैठे थे और उन्हे गिननेमे व्यस्त थे। कोई दस मिनट तो मुनीमजीने अमलकी ओर देखा ही नही। अमल मन ही मन उन्हें कोसता बैठा रहा। जब मुनीमजी पूरा हिसाब मिला चुके तब उन्होने अमलकी ओर मुँह फेरा और उसके हाथसे कागज ले उसे गौरसे देखने लगे। दस-दस रुपयेके चार नोट निकाल, अच्छी तरह गिनकर अमलको देते हुए तब वह बोले—अच्छी तरह गिन लो। और सामनेके कागजपर “चालीस रुपये वसूल पाये” की रसीद लिख दो। तारीख भी डाल देना। दस्तखत रेवेन्यू टिकटपर करना। अगर रेवेन्यू टिकट पाससे न हो तो इकन्नी निकालो, रेवेन्यू टिकट भी मिल जायगा। बिना रेवेन्यू टिकटके रसीद बेकार है—उतनी ही बेकार जितना बिना सिरके इन्सानका शरीर।

और इस सब क्रियासे फ़ारिग होनेमें अमलको दस-एक मिनट और लग गये। यानी चालीस रुपयेकी प्राप्तिमे बीस मिनट नष्टकर अमल बाहर आया और सीढियोंकी ओर बढने लगा। भार्गवजीके कमरेके निकट उसे उनका शिथिल-सा स्वर सुनाई दिया, "ये लीजिये। पच्चीस है। आवश्यकता होनेपर फिर आइयेगा...सकोच बिल्कुल न कीजियेगा...अच्छा नमस्ते।"

कुछ क्षण बाद कमरेका दरवाजा खुला और युवती घबराई हुई-सी बाहर निकली। अमलके कदमोकी आहटसे चौंक उसने पीछे घूमकर देखा। अमलको देख उसका चेहरा एकबारगी पीला पड़ गया और वह बेसाख्ता झेंप गई। उसके चेहरेपर ग्लानि और कातरताके कुछ ऐसे भाव अङ्कित हो गये कि पहलेकी तरह वह झेंप अमलके चेहरेपर मुसकराहट न दौडा सकी। अमलने देखा, उसके कपडे और बाल आदि व्यस्त रूपमे थे। बिन्दी बिखर गई थी। चेहरेपर पसीनेकी बूँदे चमक आई थीं और ओठ खुश्क हो गये थे। अमलको अपनी ही ओर देखता पाकर मारे शर्मके उसकी गर्दन नीचे झुक गई। वह वही ठिठकी खडी रह गई। न आगे बढ़ी, न पीछे हटी।

अमलको लगा, जैसे अब वह रो देगी।

और अमलको न जाने क्या हुआ? उसका क्रोध, उसकी घृणा, उसका आक्रोश-तिरस्कार सब बह गया। अत्यन्त स्निग्ध भावसे मुसकराता हुआ वह आगे बढा और उस युवतीके बिल्कुल नजदीक खड़ा हो गया।

युवतीने बहुत साहसकर गर्दन ऊपर उठाई। उसके मुँहसे आश्चर्ययुक्त स्वरमे केवल इतना ही निकला, "आप!... .."

अमलने उसी प्रकार मुसकराते हुए कहा, "आपका हमपेशा हूँ। मुझे सब पता है। अभी-अभी हम लोग अपनी आत्माएँ शैतानके पास बेचकर आये है। मैने चालीस रुपयेमे अपनी आत्मा बेची है और आपने

शायद पचीसमें। मेहनत और शरीर तो बाहरी खोल है—बिकी आत्मा ही है। आप बेकार रंज कर रही है। हम लोग इस बिक्रीके लिए मजबूर थे। फिर ये रंज क्यों? मुझे देखिये, मैं तो बिल्कुल ठीक हूँ। आप ग्लानि और दुःखका ये भाव मनसे हटा दीजिये। हमारा कोई दोष नहीं है। दोष इस दोषपूर्ण व्यवस्थाका है जो व्यक्तिको ईमानदारीसे जीवन व्यतीत नहीं करने देती.. उसके श्रमका उचित मूल्य नहीं चुकाती। खैर अब हटाइये। मनको स्वस्थ करनेकी कोशिश कीजिये। आखिर हम लोगों के लिए इसके अलावा कोई चारा भी तो न था..."

युवती कुछ न बोली। केवल बड़े-बड़े आँसू उसकी आँखोंसे निकल नीचे गिरने लगे।

गैलरीमे कुछ गुनगुनाहट सुन और उसमे अमलका स्वर साफ पहचान कर भार्गवजी कुछ सशंकित भावसे दरवाजा खोल बाहर आये। गैलरीमें कोई न था। आगे बढ उन्होंने देखा, और हैरतसे उनकी आँखे खुलीकी खुली रह गईं—अमल युवतीको सहारा दिये नीचे सीढियाँ उतर रहा था ..

हमारे सुरुचिपूर्ण हिन्दी प्रकाशन

उर्दू शायरी

१.	शेर-ओ-शायरी	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८)
२.	शेर-ओ सुखन [भाग १]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८)
३.	शेर-ओ-सुखन [भाग २]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३)
४.	शेर-ओ-सुखन [भाग ३]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३)
५.	शेर-ओ-सुखन [भाग ४]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३)
६.	शेर-ओ-सुखन [भाग ५]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३)

कविता

७.	वर्द्धमान [महाकाव्य]	श्री अनूप शर्मा	६)
८.	मिलन-यामिनी	श्री बच्चन	४)
९.	धूपके धान	श्री गिरिजाकुमार माथुर	३)
१०.	मेरे बापू	श्री हुकमचन्द्र बुखारिया	२॥)
११.	पञ्च-प्रदीप	श्री शान्ति एम० ए०	२)

ऐतिहासिक

१२.	खण्डहरोंका वैभव	श्री मुनि कान्तिसागर	६)
१३.	खोजकी पगडण्डियाँ	श्री मुनि कान्तिसागर	४)
१४.	चौलुक्य कुमारपाल	श्री लक्ष्मीशङ्कर व्यास	४)
१५.	कालिदासका भारत [भाग१-२]	श्री भगवतशरण उपाध्याय	८)
१६.	हिन्दी जैन साहित्य-परिशीलन १-२	श्री नेमिचन्द्र शास्त्री	५)

नाटक

१७.	रजत-रश्मि	श्री डा० रामकुमार वर्मा	२॥)
१८.	रेडियो नाट्य शिल्प	श्री सिद्धनाथ कुमार	२॥)
१९.	पचपनका फेर	श्री विमला लूथरा	३)
२०.	और खाई बढती गई	श्री भारतभूषण अग्रवाल	२॥)
२१.	तरकश के तीर	श्रीकृष्ण एम० ए०	३)

ज्योतिष

२२.	भारतीय ज्योतिष	श्री नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	६)
२३	करलक्खण [सामुद्रिकशास्त्र]	प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदी	।।।)

कहानियाँ

२४.	संघर्षके बाद	श्री विष्णु प्रभाकर	३)
२५	गहरे पानी पैठ	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२।।)
२६.	आकाशके तारे : धरतीके फूल	श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	२)
२७.	पहला कहानीकार	श्री रावी	२।।)
२८.	खेल-खिलौने	श्री राजेन्द्र यादव	२)
२९.	अतीतके कम्पन	श्री आनन्दप्रकाश जैन	३)
३०.	जिन खोजा तिन पाइयाँ	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२।।)
३१.	नये बादल	श्री मोहन राकेश	२।।)
३२.	कुछ मोती कुछ सीप	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२।।)
३३.	कालके पंख	श्री आनन्दप्रकाश जैन	३)
३४.	नये चित्र	श्री सत्येन्द्र शरत्	३)
३५	जय-दोल	श्री अज्ञेय	३)

उपन्यास

३६.	मुक्तिदूत	श्री वीरेन्द्रकुमार एम० ए०	५)
३७.	तीसरा नेत्र	श्री आनन्दप्रकाश जैन	२।।)
३८.	रक्त-राग	श्री देवेशदास	३)
३९.	संस्कारोंकी राह	राधाकृष्ण प्रसाद	२।।)

संस्मरण, रेखाचित्र

४०.	हमारे आराध्य	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
४१.	संस्मरण	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
४२.	रेखाचित्र	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	४)
४३.	जैन जागरणके अग्रदूत	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५)

सूक्तियाँ

४४. ज्ञानगङ्गा [सूक्तियाँ] — श्री नारायणप्रसाद जैन — ६)

४५. शरत्‌की सूक्तियाँ — श्री रामप्रकाश जैन — २)

राजनीति

४६. एशियाकी राजनीति — श्री परदेशी साहित्यरत्न — ६)

निबन्ध, आलोचना

४७. जिन्दगी मुसकराई — श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' — ४)

४८. सस्कृत साहित्यमे आयुर्वेद — श्री अत्रिदेव 'विद्यालङ्कार' — ३)

४९. शरत्‌के नारी-पात्र — श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी — ४॥)

५०. क्या मै अन्दर आ सकता हूँ ? — श्री रावी — २॥)

५१. बाजे पायलियाके घुँघरू — श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' — ४)

५२. माटी हो गई सोना — श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' — २)

दार्शनिक, आध्यात्मिक

५३. भारतीय विचारधारा — श्री मधुकर एम० ए० — २)

५४. अध्यात्म-पदावली — श्री राजकुमार जैन — ४॥)

५५. वैदिक साहित्य — श्री रामगोविन्द त्रिवेदी — ६)

भाषाशास्त्र

५६. संस्कृतका भाषाशास्त्रीय अध्ययन — श्री भोलाशकर व्यास — ५)

विविध

५७. द्विवेदी-पत्रावली — श्री बैजनाथ सिंह 'विनोद' — २॥)

५८. ध्वनि और संगीत — श्री ललितकिशोर सिंह — ४)

५९. हिन्दू विवाहमे कन्यादानका स्थान — श्री सम्पूर्णानन्द — १)

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी